भारतीय शासन-विकास

(१६००–१९३६)

लेखक

डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० (लन्दन)

रीडर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९३६

[मूल्य १।।।)

PRINTED AND PUBLISHED BY K. MITTRA
AT THE INDIAN PRESS, LTD., ALLAHABAD

भूमिका

प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने समाज और देश की संस्थाओं और शासन-विधान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर ले। इससे उसके ज्ञान की ही वृद्धि नहीं अपितु आत्म विश्वास, व्यवहार-कुशलता और नैतिक दृष्टि का भी विकास होता है। इन्हीं कारणों से विद्यार्थियों के शिक्षा-क्रम में भी कुछ न कुछ किसी न किसी रूप में देश के शासन-विधान की शिक्षा देना उचित समझा गया है। कहीं तो उसको इतिहास की शिक्षा के अन्तर्गत कर लिया गया है और कहीं वह एक स्वतंत्र विषय रक्खा गया है। सी० पी० के शिक्षा-विभाग में तो मध्य श्रेणियों (middle) में ही उसको अच्छा स्थान दिया गया है। यू० पी० में भी इस ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।

अभी तक विद्यार्थियों एवं साधारण शिक्षित लोगों के काम की हिन्दी में बहुत ही थोड़ी पुस्तकें हैं। अतएव किसी नयी पुस्तक की आवश्यकता सिद्ध करने की चेष्टा करना अनावश्यक है। जितनी ही अधिक पुस्तकें लिखी जायँ उतना ही अच्छा है। नये नये दृष्टिकोणों से देखने से अधिकाधिक लाभ होने की सम्भावना है।

प्रस्तुत पुस्तक सी० पी० के शिक्षा-क्रम के अनुसार लिखी गयी है। इस क्रम के अनुसार लिखी हुई पुस्तक हिन्दी में ही नहीं बल्कि अँगरेज़ी में भी लेखक को देखने को नहीं मिली। भारत के आधुनिक शासन का ऐतिहासिक विकास, शासन-यंत्र की रचना और उसका संचालन किसी एक पुस्तक में नहीं मिलता। यद्यपि इन तीनों विषयों के समन्वय में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य पैदा हुई तथापि प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ। एक खासा ढाँचा तैयार हो गया है जिसमें कि अनुभव के अनुसार काट-छाँट होती

रहेगी। आशा है कि इस विषय की पाठ्य पुस्तकों की कमी को यह कुछ न कुछ पूरा करेगी।

इस पुस्तक की रचना का उद्देश मुख्यत: वर्णनात्मक है। किसी प्रकार की आलोचना करने के पहले यह आवश्यक है कि पाठक को वस्तु का ठीक ठीक ज्ञान हो जाय। शासन आदि राजनीतिक संस्थाओं की आलोचना इतनी सरल नहीं है जितनी कि साधारण लोग समझते हैं। उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले संस्थाओं के विकास और वास्तविक रूप का ज्ञान हो। इस पुस्तक में इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है। आरम्भिक दशा में इतना ही काफ़ी है। इसको समझ लेने पर अपने अपने दृष्टिकोण से पाठक स्वयं विचार और आलोचना कर सकेंगे।

इस पुस्तक की रचना में लेखक को श्री हरिश्चन्द्र संघी, बी० ए० एल्-एल्० बी० से बहुत सहायता मिली है। सामग्री जमा करने, उसे ठीक ठीक जमाने और प्रूफ़ आदि देखने में आपने अत्यंत उत्साह, परिश्रम और कुशलता दिखायी है। इसके लिए लेखक उनका कृतज्ञ है।

इस पुस्तक में कुछ न कुछ त्रुटियाँ और दोष अवश्य ही रह गये होंगे। यदि सावधान और विज्ञ पाठक उनकी ओर लेखक का ध्यान आकर्षित करने की कृपा करेंगे तो वह उन पर सादर विचार करेगा और अनुग्रहीत होगा।

हिस्ट्री डिपार्टमेंट
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
१७—६—३६

रामप्रसाद त्रिपाठी

भारतीय शासन-विकास

विषय-सूची

पहिला अध्याय — ईस्ट इंडिया कंपनी का युग — १-२२ —

दूसरा अध्याय — २३-४० —

भारतीय शासन विकास

पहला अध्याय

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का युग

पश्चिमी एशिया और दक्षिण-पूर्वीय योरप में तुर्कों के आधिपत्य जमने से योरप में बड़ी सनसनी फैल गयी क्योंकि एशिया के साथ उसका जो व्यापार था वह अस्त-व्यस्त होने लगा। इटली तुर्कों के आतंक से क्षीण और तेजहीन हो गया। किन्तु योरप के पश्चिमी तट के निवासियों का उत्साह बढ़ गया और उनको भारत पहुँचने के लिए कोई दूसरा मार्ग खोजने की धुन सवार हुई। अन्त में पुर्तगाल की अध्यक्षता में वास्को डिगामा ने अफ़्रीका का चक्कर पूरा करके भारत का पता सन् १४९८ में लगा लिया।

सोलहवीं शताब्दी भर भारत एवं हिन्दसागर में पुर्तगाल वालों की तूती बोलती रही। एशिया के व्यापार से उसकी अभूत पूर्व श्री वृद्धि हुई जिससे उसकी शक्ति भी बहुत बढ़ गई। पुर्तगाल की तरह स्पेन ने अमरीका में ख़ूब सफलता प्राप्त की। इन दोनों रोमन केथोलिक राज्यों की व्यापार द्वारा शक्ति और वैभव बढ़ते देख उत्तरी योरप के प्रोटेस्टेंट राज्यों में भी उत्साह बढ़ने लगा जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे डच, अँग्रेज़ और फ़्रांसीसी आदि भी सामुद्रिक व्यापार के क्षेत्र में आ गये। इन नई शक्तियों के आने से पुर्तगाल का आधिपत्य टूटने लगा। इनमें भी

आपसी ईर्षा-द्वेष बढ़ने लगा जिसका अन्त में परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष से सबको हटाकर अंग्रेज़ों ने अपना आधिपत्य जमा लिया।

अंग्रेज़ों ने यद्यपि पहले भी भारत में पहुँचने के कुछ प्रयत्न किये थे किन्तु उनको सफलता नहीं हुई। कुछ अंग्रेज़ स्थल मार्ग से भारत में आये और उन्होंने यहाँ का जो वृत्तान्त सुनाया उससे इँगलैण्ड में अधिक उत्साह बढ़ा। कुछ सौदागरों ने सन् १५९९ में मिलकर चन्दा करके एक ख़ासी पूँजी इकट्ठी कर ली और इंगलैंड की महारानी एलिज़ेबेथ से प्रार्थना की कि उनको ईस्ट इन्डीज़ में व्यापार करने का अधिकार-पत्र प्रदान किया जाय। सन् १६०० के अन्तिम दिवस को उनको अधिकार मिल गया। इस व्यापार समिति का नाम "The Governor and Company of Merchants of London trading into the East Indies." निश्चित हुआ और उसे १५ वर्ष के लिए व्यापार करने का अखण्ड अधिकार दे दिया गया। यह व्यापारी कम्पनी एक गवर्नर और चौबीस सदस्यों की थी।

अनेक अड़चनों और विरोध के होने पर भी इस कम्पनी ने अपने व्यापारी जहाज़ नौ बार भेजे। यद्यपि कुछ जहाज़ टूटे-फूटे, किन्तु व्यापार में कम्पनी को लाभ ही हुआ। इसी कम्पनी की ओर से केप्टन हाकिन्स आया था जिसने सन् १६०८ में सूरत में भारत के साथ अंग्रेज़ी व्यापार स्थापित करने का सबसे पहला व्यवस्थित प्रयत्न किया। वह मोग़ल सम्राट जहाँगीर से मिला और सूरत में अंग्रेज़ों के रहने की आज्ञा प्राप्त कर ली। किन्तु पुर्तगाल वालों के विरोध से यह आज्ञा रद्द हो गई।

चार वर्ष बाद (१६१२) केप्टेन बेस्ट कम्पनी के जहाज़ लेकर सूरत आया। उसने पुर्तगाल वालों को हराकर अंग्रेज़ों का महत्व ऐसा बढ़ा दिया जिससे उनको सूरत में अपनी फैक्टरी बनाने की आज्ञा सम्राट से मिल गई। बस उसी समय से जो भारत का अंग्रेज़ों से सम्बन्ध स्थापित

हुआ वह दिनों दिन बढ़ता और गहरा होता गया। यद्यपि पोर्चुगीज़, डच और फ्रेंच लोगों ने अंग्रेज़ों को हानि पहुँचाने और उनके पैर उखाड़ने में कोई कसर लगा न रखी किन्तु अपने साहस और अदम्य उत्साह के कारण अन्त में उन्हें विजय प्राप्त हुई।

केप्टेन वेस्ट के दो तीन वर्ष बाद केप्टेन डाउनटन ने पोर्चुगीज़ वाइ-सराय को गहरी शिकस्त दी जिसमें पोर्चुगीज़ों का महत्त्व गिर गया। उन्हें अंग्रेज़ों का लोहा मानना पड़ा। वे धीरे धीरे पीछे हटने लगे और अंग्रेज़ बढ़ने लगे। धीरे धीरे अंग्रेज़ों ने सूरत के अलावा अपनी एजेंसियाँ अहमदा-बाद, बुरहानपुर, अजमेर और आगरे में स्थापित कर दीं। इस सफलता से उत्साहित होकर कम्पनी ने सर टामस रो को राजदूत बनाकर जहाँगीर के दरबार में भेजा। उसने इस बात का प्रयत्न किया कि अंग्रेज़ों से मोग़ल सम्राट सन्धि कर ले किन्तु अनेक कारणों से उसे सफलता न हुई। तथापि उसने अंग्रेज़ों की मर्यादा मुग़ल सम्राट की दृष्टि में ऊँची कर दी। सर टामस रो ने भारत की परिस्थिति देखकर अंग्रेज़ों को जो परामर्श दिया वह महत्त्व का था। उसने लिखा है कि अंग्रेज़ों को पोर्चुगीज़ और डच लोगों का अनुकरण न करना चाहिए। राज्य, सैनिकबल आदि बढ़ाने की चेष्टा करने के कारण ही उनकी अवनति हो रही है, और उनकी सम्पत्ति का क्षय हो रहा है। अंग्रेज़ों को चाहिए कि वे एकचित्त से शान्तिमय व्यापार में लगे रहें और राजनैतिक झगड़ों और राज्यस्थापन आदि के प्रलोभनों में न पड़ें। सर टामस रो की निर्धारित नीति का अवलम्बन अंग्रेज़ लोग लगभग सत्तर वर्ष तक करते रहे।

यद्यपि पोर्चुगीज़ लोगों की ओर से अंग्रेज़ों को भय कम हो गया था किन्तु डच लोग उनको बहुत तंग करते थे। हिन्दसागर के टापुओं पर वे अपना अधिकार पूरी तौर पर रखना चाहते थे। अंग्रेज़ भी पैर जमाना चाहते थे इसीसे झगड़ा होता था। किन्तु सन् १६२३ में अम्बोयना नगर में जो अंग्रेज़ी कर्मचारियों की हत्या की गई उसका यह प्रभाव हुआ कि

अंग्रेजों ने हिन्दसागर के टापुओं से ध्यान हटाकर अपनी पूरी शक्ति भारतीय व्यवसाय बढ़ाने में ही लगादी। इससे उन्होंने भारत में शीघ्रता के साथ उन्नति करना आरंभ कर दिया।

सर टामस रो की निर्धारित नीति पर अंग्रेज़ १६८६ तक चलते रहे। इस काल (१६१२–८६) में उन्होंने अपना व्यवसाय अच्छी तरह बढ़ा लिया। भारत के पश्चिमी तट के अलावा उन्होंने पूर्वी तट पर भी अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर लिये। सन् १६११ में केप्टेन हिपन ने मसुलीपट्टम में कोठी क़ायम की। बारह वर्ष तक तो यहाँ अच्छा व्यापार चला किन्तु फिर ऐसा घटा कि उसको छोड़ने की आवश्यकता पड़ गई। अन्त में पूर्वी तट का व्यापारिक केन्द्र चेन्नापटम (मद्रास) में क़ायम किया गया जिसको सन् १६४० में फ़्रांसिस डे ने चन्द्रगिरि के राजा से लिया। यहाँ पर उसे संगीन कोठी बनाने की आज्ञा मिल गई। यही फ़ोर्ट सेंटजार्ज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह क़िला अंग्रेज़ों का सबसे पहला क़िला भारतवर्ष में बना।

मसुलीपट्टम के उत्तरी भाग में भी खोजते हुए कार्टराइट नामक एक अंग्रेज़ उड़ीसा पहुँचा। सन् १६३३ में हरिहरपुर और बालासोर में उसने व्यापार जमाया। सन् १६५० में बंगाल के सूबेदार ने कम्पनी को हुगली में अपनी कोठी बनाने की आज्ञा दे दी। कुछ समय के बाद उन्होंने क़ासिम बाज़ार और पटना में भी कोठियाँ बनालीं। उड़ीसा और बंगाल में कम्पनी को अधिक व्यापारिक सफलता नहीं हो सकी किन्तु किसी न किसी प्रकार वे वहाँ पर अड़े ही रहे।

सन् १६६० से १६८० तक का समय कम्पनी के लिए स्वर्णयुग के समान सिद्ध हुआ। इस काल में उसको व्यापार से अच्छा लाभ हुआ। इंगलैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय की भी उस पर कृपादृष्टि रही। उसने सन् १६६८ में कम्पनी को केवल १० पौण्ड मालगुज़ारी पर बम्बई दे दिया। कम्पनी ने पश्चिमी तट का केन्द्र सूरत से हटाकर बम्बई में स्थापित कर

दिया। इस काल में कम्पनी का डच लोगों से भी झगड़ा न रहा क्योंकि वे फ़ांसीसियों से लड़ने में दत्तचित्त थे।

किन्तु इस काल में सबसे मार्के की बात जो हुई वह यह है कि इंगलैंड के राजा ने कम्पनी को क़िला बनाने एवं उसकी रक्षा करने, सैनिकों को भर्ती करने, लड़ाई के जहाज़ रखने, सिक्का डालने, और फ़ौजदारी एवं दीवानी कानून के अनुसार अंग्रेज़ों पर न्याय करने के अधिकार प्रदान कर दिये। यही नहीं, भारत में प्राप्त अंग्रेज़ी रियासत का शासन करने के लिए कम्पनी इंगलैंड के राजा की प्रतिनिधि नियुक्त कर दी गई। इसके अलावा उसको युद्ध ठानने अथवा सन्धि करने, और ईसाइयों को छोड़कर अन्य लोगों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया। इन्हीं अधिकारों से भारत में अंग्रेज़ी शासन और विधान का सूत्रपात होता है। इन्हीं से कम्पनी को वे अधिकार प्राप्त हो गये जिनके बल पर कम्पनी ने अपना शासन भारतवर्ष पर धीरे धीरे ऐसा जमाया कि वे इस देश के स्वामी हो गये।

व्यापार और आत्मशक्ति की वृद्धि से कम्पनी के भावों और आदर्शों में भी परिवर्तन होने लगा। इसके सिवा भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थिति की भीषणता ने भी उनके विचारों पर प्रभाव डाला। मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के समय में दक्षिण में बड़ा विप्लव और उथल पुथल हो रहा था। शासन के बन्द ढीले हो रहे थे। लूट मार का बाज़ार गर्म था। ऐसी दशा में अपनी रक्षा करने के लिए एवं सामयिक परिवर्तन से लाभ उठाने के लिए कम्पनी को भी अपनी नीति के बदलने की आवश्यकता जान पड़ने लगी। उन्होंने सर टामस रो की नीति का परित्याग करना उचित समझा और सर्वतोमुखी उन्नति के विधान का आश्रय लेना हितकर समझा।

सर जोशिया चाइल्ड ने जो इस समय कम्पनी का सबसे प्रधान और प्रभावशाली डाइरेक्टर था, स्पष्ट लिख दिया कि यद्यपि कम्पनी का मुख्य ध्येय व्यापारिक लाभ है तथापि अब समय आ गया है कि वह व्यापार के

अलावा शासन की नीति एवं शासन विधान की ओर विशेष ध्यान दे। उसकी सम्मति में कम्पनी को यह चाहिए कि वह ऐसे शासन सम्बन्धी एवं सैनिक विधान की रचना करे और आमदनी की सूरतें निकालने और बढ़ाने की ऐसी युक्ति निकाले जिसकी सहायता से व्यापार में घाटा अथवा विघ्न पड़ने पर भी अंग्रेज़ी साम्राज्य की नीव दृढ़ता के साथ स्थायी रूप से रखी जा सके। इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो गया कि व्यापार के अलावा रियासत पैदा करने एवं राज्य बढ़ाने का ध्येय भी कम्पनी के सामने आ गया। इस प्रकार सर टामस रो की नीति का अन्त और नये आदर्श और नई नीति का आरम्भ हो गया।

उपर्युक्त नीति को व्यावहारिक रूप देने में दो कठिनाइयाँ पड़ीं। पहली तो यह कि ब्रिटेन में उसके अखण्ड व्यापारिक अधिकार के विरुद्ध आन्दोलन क़रीब पचास वर्ष से चल रहा था, और उसके मुक़ाबिले की कम्पनियाँ बन रही थीं जिनमें कि सबसे प्रमुख 'न्यू ईस्ट इण्डिया कम्पनी' और 'स्काटलैंड की कम्पनी,' थीं। इन आन्दोलनों से कम्पनी का ध्यान और धन संशय में फँसा रहता था। दूसरी कठिनाई यह थी कि यद्यपि मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब के चारों ओर आपत्ति, उपद्रव और विप्लव के तूफ़ान उमड़ रहे थे किन्तु फिर भी उसका प्रताप, उसकी शक्ति और उसका शासन इतना जर्जरित नहीं हो पाया था कि कम्पनी अपनी मनमानी कार्यवाही कर सके। उसके पास सिवा सामुद्रिक व्यापार को अस्त-व्यस्त कर देने के और कोई साधन न थे। यद्यपि अपने प्राप्त अधिकारों और व्यापार की रक्षा और वृद्धि करने की आशा से कम्पनी ने औरंगज़ेब से युद्ध छेड़ दिया किन्तु शीघ्र ही अपनी निर्बलता का अनुभव कर सन्धि करने में ही हित समझा।

किन्तु सन् १७०८ तक ये दोनों कठिनाइयाँ दूर हो गईं। सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु हो गई जिससे मुग़ल साम्राज्य का पतन शीघ्रता पूर्वक होने लगा और शासन की डोर ढीली पड़ गई। उधर प्रतिस्पर्धी

कम्पनियों की समस्याओं को सुलझाकर और उनमें समझौता कराके सन् १७०८ में अर्ल गोडाल्फिन ने एक संयुक्त कम्पनी की संस्थापना कर दी जिसमें पुरानी कम्पनी का व्यक्तित्व और विस्तृत रूप में प्रस्फुटित हो गया। इस संयुक्त संस्था का नाम "United Company of merchants trading to the East Indies." हुआ। बस यही कम्पनी भविष्य में सन् १८५७ तक व्यापार एवं शासन का कार्य करती रही यद्यपि उसके अधिकारों में समय समय पर बहुत कुछ परिवर्तन होते रहे।

सन् १६९४ में एक और भी ध्यान में रखने योग्य घटना हुई। इस सन् के पहले व्यापार का ठेका आदि देने का अधिकार इंगलैंड के राजा ही के हाथ में था किन्तु सन् १६९४ में हाउस ऑफ़ कामन्स ने वह अधिकार राजा से हटाकर अपने हाथ में ले लिया। यह घटना इस लिए महत्त्व की है कि उस समय से पार्लमेंट का सम्बन्ध कम्पनी से क़ायम हो गया और वह भविष्य में बढ़ता गया। पार्लमेंट ने आरम्भ में कम्पनी के अधिकारों और उसकी नीति में विशेष हस्तक्षेप नहीं किया किन्तु धीरे धीरे वह तटस्थ न रह सकी।

इस कम्पनी का इतिहास सुभीते के लिए तीन अंकों में विभाजित किया गया है। पहला अंक अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक चलता है। इसमें कम्पनी मुख्यत: व्यापार में ही लगी रही। दूसरा अंक अठारहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर रेग्युलेटिंग एक्ट (१७७३) तक। इसमें कम्पनी के राज्य का विस्तार होता है। उसका व्यापारिक कार्य गौण होना और शासन कार्य प्रधानता प्राप्त करता है। तीसरा अंक १७७३ से सन् १८५८ तक चलता है। इसमें कम्पनी मुख्यत: शासन कार्य ही करती है। बस ग़दर के बाद कम्पनी के युग का अन्त हो जाता है और नये युग का आरम्भ हो जाता है। तीनों अंकों पर क्रमश: कुछ स्पष्ट विचार करना उपयुक्त होगा।

पहला अंक—औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त मोग़ल राज्य अस्त-व्यस्त होने लगा। सूबों के सूबेदार धीरे धीरे स्वतंत्र हो गये। मराठों

की शक्ति दिनों दिन बढ़ने लगी, और कुछ नये राज्यों का भी संस्थापन हो गया। देश में शान्ति भंग हो गई और राजनैतिक वातावरण बिगड़ गया। ऐसी दशा देखकर अंग्रेज़ों ने भी अपना संगठन सँभालना और शक्ति संचय करना आरम्भ कर दिया। यहाँ यह बताना अनुचित न होगा कि सन् १६९० में अंग्रेज़ों ने सूतनूती में, जो आगे चलकर कलकत्ता हो गया अपना बंगीयकेन्द्र फिर से स्थापित किया। छः वर्ष के बाद उनको वहाँ क़िला बनाने की आज्ञा मिल गई। इसके दो वर्ष बाद उन्हें तीन गाँवों—सूतनूती, कालीघाट और गोविन्दपुर—की ज़िमीदारी मिल गई। सन् १७०० में बंगाल के व्यापार और प्रबन्ध का संचालन करने के लिए बंबई और कलकत्ता की तरह शासन स्थापित हो गया। इस केन्द्र का नाम फोर्ट विलियम रखा गया।

भारत में विप्लव देखकर कम्पनी ने फोर्ट विलियम क़िला और भी सुदृढ़ कर लिया। सन् १७१५ में उन्होंने अपने प्रतिनिधि देहली भेजकर मोग़ल सम्राट् फ़रुखसियर से कुछ फ़रमान भी प्राप्त कर लिए जिससे उनको कलकत्ता और मद्रास के आस-पास के कुछ गाँवों पर अधिकार मिल गया। कहते हैं कि इन फ़रमानों के द्वारा अंग्रेजों को मोग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत विधिपूर्वक स्थान मिल गया।

इस काल में अंग्रेज़ी व्यापार ने भी अच्छी उन्नति की। कलकत्ते का व्यापार और उसी के साथ जन-संख्या भी बढ़ी। यद्यपि समुद्री डाकुओं तथा अन्य कारणों से वम्बई की उतनी उन्नति नहीं हुई किन्तु फिर भी वहाँ की जन-संख्या कलकत्ते से दो तिहाई तक बढ़ी और उसकी सैनिक और नौ-शक्ति कलकत्ता और मद्रास से अधिक रही। बम्बई के अंग्रेज़ों के प्रयत्न से उन्हें पेशवा के राज्य में स्वतंत्र व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया। मद्रास ने भी अपनी रक्षा के साधन सुदृढ बना लिये। यद्यपि चारों ओर गोलमाल जारी रहा किन्तु अंग्रेज़ी तोपों की संरक्षा में मद्रास ने भी व्यापार और जन-संख्या में उन्नति की।

कलकत्ते और मद्रास की परिस्थिति कई अंशों में बम्बई से भिन्न थी। बम्बई में अंग्रेज इंगलैंड के राजा से प्राप्त स्वत्वों के बल पर शासन करते थे। वहाँ उन पर किसी देशी राजा का आधिपत्य न था। वे शासन करने में स्वतंत्र थे। किन्तु कलकत्ता और मद्रास में देशी राज्यों का आधिपत्य था। फल यह हुआ कि कलकत्ता और मद्रास के हिन्दी निवासियों पर देशी कानून और अंग्रेजों पर अंग्रेज़ी कानून लागू होते थे। इस प्रकार वहाँ "दुराज की रैयत" रहती थी और डबल गवर्नमेंट चलती थी। किन्तु बम्बई में यह बात न थी।

प्रथम अंक के समाप्त करने के पहिले यह अनुचित न होगा कि कम्पनी के शासन-यंत्र का भी विहंगावलोकन कर लिया जाय।

इंगलैंड में—जिन लोगों ने पूँजी के शेयर (हिस्से) लिए थे उनके समुदाय का नाम "कम्पनी" था। उनमें से जिनका शेयर ५०० पौण्ड था—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—उसे वादविवाद करने एवं वोट देने का अधिकार था। इन लोगों की संस्था का नाम "जनरल कोर्ट ऑफ़ प्रोप्रायटर्स" था। इसकी बैठक वार्षिक होती थी। यह संस्था प्रति वर्ष उन लोगों में से जिनका हिस्सा २००० पौण्ड से अधिक होता था चौबीस सदस्य चुन लेती थी। इन सदस्यों की संस्था "कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स" कहलाती थी। इसकी साल में चार बैठकें होती थीं। कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ही कम्पनी का संचालन करती थी। किन्तु उनके कार्यों को बदल देने अथवा रद्द कर देने का अधिकार कोर्ट ऑफ़ प्रोप्रायटर्स को था।

भारत में—बम्बई, मद्रास और सन् १६८१ के बाद कलकत्ता में भी पृथक् पृथक् शासन करने की संस्थाएँ थीं। यद्यपि इनका संगठन न्यूनाधिक एक-सा ही था किन्तु इनका आपस में एक दूसरे से कोई शासनिक संबंध न था। प्रत्येक अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र थी और हर एक का कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स से सीधा सम्बन्ध रहता था। प्रत्येक संस्था में एक प्रेसीडेन्ट (गवर्नर) और एक कौंसिल होती थी। काउन्सिल के सदस्य कम्पनी के

सीनियर कार्यकर्ता होते थे। गवर्नर प्राय: सबसे सीनियर कर्मचारी होता था। वह शासन का ही नहीं, किन्तु नगर की सेना का भी नेता होता था। काउन्सिल में बराबर वोट होने पर वह निर्णायक वोट देने का अधिकारी था यद्यपि प्रत्यक्ष में उसके अधिकार कम थे किन्तु उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत था। उसकी नियुक्ति सीधे कम्पनी से होती थी। देशी राज्यों से वही लिखा-पढ़ी करता था। गवर्नर और काउन्सिल संयुक्त रूप से शासन करते थे। निर्णय बहुमत से होता था और उसी पर आचरण होता था। काउन्सिल के सदस्यों की संख्या १२ से १६ तक थी और उस की बैठक साप्ताहिक करने का आदेश था। जब तक काउन्सिल नहीं बैठती थी तब तक उसकी ओर से गवर्नर ही कार्य-संचालन करता था। काउन्सिल को प्रत्येक सदस्य ही नहीं किन्तु गवर्नर पर भी निगरानी रखने का अधिकार था। काउन्सिल के सदस्य प्राय: प्रत्येक विभाग के मुख्य कर्मचारी होते थे। इस काल में सर जोसिया चाइल्ड के आदर्श की भी कुछ पूर्ति होने लगी। कम्पनी की आय के नये साधन पैदा हो गये। यद्यपि ज़मीन की कमी से लगान तो अधिक न मिलता था किन्तु चुंगी, कर, मकानों पर टैक्स, तथा पान, तमाकू आदि के ठेकों से अच्छी आमदनी होने लगी।

दूसरा अंक—उपर्युक्त परिस्थित बहुत दिनों तक क़ायम न रह सकी। फ़्रांसीसियों ने देशी रियासतों के झगड़ों में हिस्सा लेना आरम्भ कर दिया जिससे उनका महत्त्व बढ़ने लगा। उनके बढ़ते प्रभाव को देख कर अंग्रेज़ों ने भी देशी राज्यों से सन्धि या विग्रह करना आवश्यक समझा। इस प्रकार सब से पहले मद्रास, फिर कलकत्ता और बम्बई की सरकार भी धीरे धीरे देशी राजनीति के भँवर में खिंच आईं। इसके अलावा योरप की राजनैतिक परिस्थिति का भी प्रभाव पड़ा जिससे पारस्परिक संघर्ष और भी तीव्र हो गया। इस द्वन्द्व का परिणाम आशातीत हुआ।

सन् १७५१ में क्लाइव ने अर्काट की रक्षा जिस सफलता के साथ की उससे अंग्रेज़ों का महत्त्व और उनका उत्साह बढ़ गया। तब से दस वर्ष

तक कम्पनी को सैनिक और नीतिक युद्ध करना पड़ा। किन्तु इन दस वर्षों में उन्होंने फ़्रांसीसियों की शक्ति तोड़ दी और अपना प्रभुत्व कुरामण्डल तट पर ही नहीं वरन् कर्नाटक और हैदराबाद तक में स्थापित कर लिया। इसी प्रकार बंगाल के सूबेदार सिराजुद्दौला से युद्ध छिड़ जाने का यह फल हुआ कि सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेज़ों का प्रभुत्व बंगाल, बिहार और उड़ीसा में क़ायम हो गया। कर्नाटक और बंगाल के नवाब अंग्रेज़ों के हाथ की पुतलियाँ हो गये। सन् १७६५ तक अंग्रेज़ी सेना अवध तक में जा पहुँची और उनका सम्बन्ध शाह आलम तक से हो गया। इन ऐन्द्रजालिक परिवर्तनों ने एक दम परिस्थित बदल दी जिससे भारत में ही नहीं किन्तु इंगलैंड में भी सनसनी और आतंक फैल गया।

इस काल की घटनाओं में सब से महत्त्व की बात इलाहाबाद की सन्धि है (१७६५)। इसके अनुसार कम्पनी को शाह आलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की "दीवानी" दे दी; और कम्पनी ने उसके बदले उसे छब्बीस लाख रुपये वार्षिक देने का वादा कर दिया। इस सन्धि में अन्य दोषों के अलावा सबसे चिन्त्य बात यह थी कि उससे उन तीनों सूबों में डबल गवर्नमेन्ट अर्थात् दुराजकता का विस्तार हो गया। अंग्रेज़ों को दीवानी मिलने के पहले बंगाल का सूबेदार ही शासन के प्रत्येक विभाग का ज़िम्मेदार था। सूबे का दीवान भी उसी की अध्यक्षता में काम करता था। किन्तु अंग्रेज़ों के हाथ में दीवानी चले जाने से उसका दीवानी अर्थात् मालगुज़ारी, आय-व्यय, एवं मालगुज़ारी के मुक़द्दमों आदि से कुछ सम्बन्ध न रह गया। उसके हाथ में केवल निज़ामत अर्थात् फौज और फौजदारी मुकद्दमे, और पुलीस के-से काम रह गये। किन्तु इस क्षेत्र में भी वह स्वतंत्र न था क्योंकि राजनीतिक अधिकार तो कम्पनी के हाथ में पहले ही चला गया था और वह सैनिक शक्ति में भी हस्तक्षेप करने लगी थी। इसका फल यह हुआ कि अधिकार तो कम्पनी के पास और ज़िम्मेदारी नवाब के मत्थे हो गई। नवाब का रोब दाब मिट्टी में मिल गया। बिना अधिकार के ज़िम्मेदारी

कैसे पूरी हो। और बिना जिम्मेदारी के अधिकार की निरंकुशता बढ़ती ही है। परिणाम यह हुआ कि न तो नवाब को, न कम्पनी को और न प्रजा ही को कोई लाभ हुआ। एक दूसरे पर बदइंतिज़ामी के इल्ज़ाम लगाते रहे। सब की कठिनाइयाँ और शिकायतें बढ़ गई। विलायत में भी कम्पनी की कठिनाइयाँ और समस्याएँ तीव्र हो गई। यद्यपि आरम्भ में उनके दुष्परिणाम इतने स्पष्ट दिखाई न दिये किन्तु धीरे धीरे उसका विकराल रूप सब पर प्रकट हो गया।

कम्पनी की अभूतपूर्व राजनीतिक उत्कर्ष से उन्मत्त हो कर कम्पनी के कर्मचारियों ने अपनी झोली भरनी और मनमानी करनी शुरू कर दी। फल यह हुआ कि कम्पनी के कर्मचारी तो अमीर हो गये और कम्पनी दरिद्र होने लगी। भारत में नई परिस्थिति के कारण फ़ौजें बढ़ गई, ताबड़तोड़ युद्ध होने लगे जिससे धन का अभूतपूर्व व्यय होने लगा। कम्पनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार में इतने दत्तचित्त हो गये कि कम्पनी का व्यापार ठंडा पड़ने लगा। सन् १७७२ में कम्पनी की आर्थिक परिस्थित बहुत बिगड़ गई और उसको क़रीब १३ लाख पौंड की कमी पड़ गई। इधर बंगाल में अराजकता के अलावा सन् १७७०–७१ में घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे बंगाल उजाड़ होने लगा और चारों ओर हाहाकार मच गया।

अन्त में पार्लमेन्ट के सामने यह सब मामला पहुँचा। लोग कहने लगे कि यह खूब रहा कि व्यापारिक संस्था राज्य करने लग गई! क्या आश्चर्य है कि देश में गोलमाल हो, कम्पनी दरिद्र हो किन्तु कर्मचारी धनाधीश हों। जब धन की कमी से कम्पनी ने पार्लमेन्ट से क़र्ज़ लेने की अर्ज़ी दी तब पार्लमेन्ट ने कम्पनी की परिस्थिति की जाँच पड़ताल करने के लिए एक "सेलेक्ट कमेटी" बनाई, इस जाँच से बड़े रहस्यों का पता चला। उस कमेटी की रिपोर्ट का यह फल हुआ कि पार्लमेन्ट ने कम्पनी के नियंत्रण के लिए सन् १७७३ में एक एक्ट बनाया जिसको "रेग्यूलेटिंग एक्ट" कहते हैं। पार्लमेन्ट ने कम्पनी को कर्ज़ तो दे दिया किन्तु उसके

आय-व्यय के जाँच करने एवं लाभ के वितरण के नियंत्रण के अधिकार अपने हाथ में ले लिये।

रेग्यूलेटिंग एक्ट—यह एक्ट बड़े महत्त्व का है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस एक्ट के द्वारा पार्लमेन्ट ने कम्पनी की शासन-प्रणाली को निर्धारित एवं नियंत्रित करने के लिए अपना अधिकार क़ायम कर दिया। दूसरा यह कि यह एक्ट उन महत्त्वपूर्ण एक्टों में सबसे पहला है जिनके द्वारा भविष्य में भारतवर्ष के शासन का निर्माण हुआ और जिनके द्वारा आगे चलकर भारत पर पार्लमेन्ट का पूरा अधिकार स्थापित हो गया। अब यह विचार करना चाहिए कि इसने तत्कालीन शासन यंत्र में क्या क्या परिवर्तन कर दिये।

इंगलैंड में—इस एक्ट के द्वारा कोर्ट आफ़ प्रोपायटर्स के सदस्यों में से उन्हीं को वोट देने का अधिकार रहा जिनका हिस्सा एक साल पहले से एक हज़ार पाउन्ड हो (इससे पहले ५०० पाउंड था)। कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के सदस्य एक साल के बदले चार साल के लिए चुने जाया करें जिससे उनके कार्यक्रम में अधिक स्थिरता और परिपक्वता हो सके। कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स का कर्तव्य हुआ कि वे भारत के गवर्नर जनरल और काउन्सिल के भेजे हुए पत्रों, राजनैतिक रिपोर्टों, आय-व्यय के चिट्ठों और सारे सैनिक और नीतिक मामलों से सम्बन्ध रखने वाले काग़ज़ों की प्रतियाँ पार्लमेन्ट के मंत्री विशेष को भेजा करें।

भारत में—पीछे लिखा जा चुका है कि मद्रास, कलकत्ता और बम्बई का पारस्परिक शासन-सम्बन्ध कुछ न था। प्रत्येक स्वतंत्र था। किन्तु इस एक्ट से कलकत्ता का गवर्नर, गवर्नर जनरल बना दिया गया और उसको मद्रास और बम्बई के सरकारों के सन्धि-विग्रह सम्बन्धी कार्यों के निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार दे दिया गया। गवर्नर-जनरल इस अधिकार को चार सदस्यों की काउन्सिल के साथ प्रयोग में ला सकता था। इस एक्ट के अनुसार गवर्नर-जनरल और उसकी काउन्सिल बंगाल, बिहार और

उड़ीसा का शासन करने के अलावा और प्रेसीडेन्सियों की राजनैतिक कार्यवाहियों का भी निरीक्षण और नियंत्रण करने लगी। प्रत्येक विषय काउन्सिल के बहुमत के अनुसार ही निर्णय होता, और बराबर वोट होनेपर गवर्नरजनरल को अपना निर्णायक वोट देने का अधिकार था। इस एक्ट से गवर्नरजनरल और काउन्सिल को यह भी अधिकार मिला कि वे ऐसे क़ानून, विधान और नियम बना सकें जिससे शासन का सुधार और साधारण जनता को लाभ हो, जो अंग्रेज़ी क़ानूनी सिद्धान्तों पर अवलम्बित हों किन्तु ये क़ानून, नियम आदि जब तक न्याय की सुप्रीम कोर्ट में रजिस्टर न हो जाने तब तक प्रचलित नहीं हो सकते थे।

इस एक्ट के द्वारा कलकत्ते में एक सुप्रीमकोर्ट की भी संस्थापना की गई जो बंगाल, बिहार और उड़ीसा में न्याय का कार्य देखे। इसमें चीफ जस्टिस के अलावा तीन और भी जज नियुक्त हुए जो विलायत में कम से कम पाँच वर्ष बैरिस्टरी कर चुके हों। इस कोर्ट को फौजदारी, दीवानी, नौ विभाग और धर्म विभाग के मामलों के निर्णय करने का अधिकार दे दिया गया। वे अपनी सहायता के लिए क्लर्क आदि नियुक्त कर सकते और ऐसे नियम और कार्यक्रम निश्चित कर सकते थे जिनसे न्याय करने में सहायता मिल सके।

इस एक्ट के द्वारा अनुचित लाभ और रिश्वतों के रोकने का भी प्रयत्न किया गया। गवर्नरजनरल, काउन्सिल के मेम्बर, चीफ जस्टिस और जजों की भारी तनख़्वाहें कर दी गईं। उदाहरण के लिए बंगाल के गवर्नर का वार्षिक वेतन पहले केवल ३०० पौंड और काउन्सिल के सदस्यों का अस्सी पौंड था किन्तु अब उनका वेतन क्रमशः २५००० और १०००० पौंड वार्षिक कर दिया गया। इसका उद्देश यह था कि वे आर्थिक चिन्ता अथवा प्रलोभनों से मुक्त हो जायँ।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष—यद्यपि एक्ट बनानेवालों का उद्देश्य सराहनीय और सुधारमूलक ही था किन्तु अनुभव एवं परिस्थिति का पूरा

ज्ञान न होने के कारण उसमें कुछ दोष रह गये जिनका आगे चल कर अनुभव हुआ। **पहला** दोष तो यह था कि एक्ट ने गवर्नर और उसकी काउन्सिल का सुप्रीम कोर्ट के साथ सम्बन्ध निश्चित रूप से स्थिर नहीं किया था जिसके कारण आगे चलकर बड़े झगड़े हुए। **दूसरा** यह था कि एक्ट ने यह निश्चय न किया कि सुप्रीम कोर्ट किस क़ानून का आश्रय ले। देश में हिन्दू, मुसलिम क़ानून प्रचलित थे और अंग्रेज़ अंग्रेज़ी क़ानून में दीक्षित थे। इस अनिश्चित दशा के कारण भी कठिनाइयाँ हुई। **तीसरा** किन्तु सब से भयंकर दोष यह था कि एक्ट ने गवर्नर जनरल को भी पहले के गवर्नरों की तरह काउन्सिल के अधीन कर दिया। सदस्यों के वोट बराबर होने पर ही गवर्नर अपना निर्णायक वोट दे सकता था। इसके सिवा उसके पास कोई ऐसे साधन न थे जिनसे वह अपनी इच्छा के अनुसार काउन्सिल से काम करा सके या उसपर दबाव डाल सके। सदस्यों में से एक को छोड़ कर अन्य लोगों को भारत की परिस्थिति का अनुभव और ज्ञान न था। वे अहमन्यता के कारण गवर्नर जनरल पर भी अपना रोब क़ायम करने के इच्छुक थे। ऐसी दशा में गवर्नर जनरल को पग-पग पर विरोध और अड़चनों का सामना करना पड़ता था जिससे कार्य संपादन में उसे बड़ी कठिनाइयाँ पड़तीं और झगड़े होते थे। **चौथा** दोष एक्ट में यह था कि कोर्ट आफ़ प्रोप्रायटर्स के वोट देने का अधिकार छोटे हिस्सेदारों के हाथ से निकल कर भारी हिस्सेदारों के हाथ में चला गया जिससे धनिकों का एक जत्था सा बन गया।

तीसरा अंक—उपर्युक्त दोषों का अनुभव होने पर उनके दूर करने के यत्न सोचे जाने लगे। सन् १७८१ में पार्लमेन्ट ने एक संशोधक एक्ट (Amending Act of 1781) पास किया जिसके द्वारा सुप्रीम कोर्ट का कम्पनी के बड़े कर्मचारियों और गवर्नर और काउन्सिल से सम्बन्ध, और अंग्रेज़ी छत्र-छाया में रहने वाली जनता पर लागू क़ानूनों का कुछ

निर्देश किया गया। माल के मामलों में गवर्नर और उसकी काउन्सिल के अधिकार स्थिर किये गये।

संशोधक एक्ट की लीपापोती से यथेष्ट सुधार न होने के कारण सन् १७८४ में एक बाक़ायदा एक्ट पार्लमेन्ट को पास करना पड़ा। इसको **पिट्स इंडिया एक्ट** कहते हैं। इसके द्वारा पार्लमेन्ट ने एक नई नियंत्रक संस्था की रचना की जिसका नाम "बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल" रखा गया। इस बोर्ड के सदस्यों की संख्या छः थी जो प्रिवी काउन्सिल के सदस्यों से चुने जाते थे। इनमें से दो अर्थ मंत्री (Chancellor of Exchequer) और एक सेक्रेटरी आफ़ स्टेट होता था। यह बोर्ड पार्लमेन्ट के मंत्रि मण्डल की ओर से कम्पनी के बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स के कामों की जाँच पड़ताल करता था। इस बोर्ड के संस्थापन के वाद कोर्ट आफ़ प्रोप्रायटर्स का कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के कामों के जाँचने का अधिकार एक प्रकार से जाता रहा। **बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल के द्वारा मंत्रिमंडल और मंत्रिमण्डल के द्वारा पार्लमेन्ट ने कम्पनी के कामों के निरीक्षण का अपना अधिकार और भी बढ़ा लिया और सुदृढ़ कर लिया।** बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल के सभापति का कर्तव्य था कि वह कम्पनी के हिसाव किताव का लेखा हर साल पार्लमेन्ट के सामने पेश करे। बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल मंत्रिमण्डल के वदलने पर बदल जाता था। नया मंत्रिमंडल अपनी ओर से उसका पुनः निर्माण करता था। बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल प्रायः अपने आदेश और परामर्श बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स के द्वारा ही भेजता और प्रकाशित करता था। किन्तु विशेष दशा में वह बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स के द्वारा न भेज कर एक कमेटी के ही द्वारा भारतीय सरकारों को आज्ञाएँ आदि भेज देता था। यह कमेटी केवल तीन सदस्यों की थी जिनको बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स ही चुनता था। इसका नाम था "सीक्रेट (गुप्त) कमेटी"। उपर्युक्त वर्णन से यह न समझना चाहिए कि बोर्ड के संस्थापन से कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स का महत्त्व और उसकी शक्ति जाती रही। अव भी नये प्रस्ताव करने और शासन के साधारण नियंत्रण में कोर्ट

का व्यावहारिक अधिकार बहुत कुछ था। वे अब भी कर्मचारियों की नियुक्ति करते थे यद्यपि इंगलैंड के राजा को यह अधिकार था कि वह जिसे चाहे हटा दे।

पिट्स एक्ट ने गवर्नर जनरल और काउन्सिल का मद्रास और बम्बई के गवर्नरों और काउन्सिलों से सम्बन्धों को और स्पष्ट कर दिया। उसमें यह साफ़ हो गया कि मद्रास और बम्बई की गवर्नमेन्टों के उन कामों का नियंत्रण, जिनसे देशी रियासतों से सम्बन्ध हो, संधि विग्रह से सम्बन्ध हो अथवा युद्ध काल में आय और सेना का प्रयोग हो, अथवा उन विषयों का जो कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स निर्देश करें, गवर्नर जनरल और उनकी काउन्सिल करेगी। इसी प्रकार गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के कामों का नियंत्रण कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स करेगा।

पिट्स एक्ट ने गवर्नर जनरल की काउन्सिल के सदस्यों की संख्या चार से घटा कर तीन कर दी जिनमें से एक कमान्डर-इन-चीफ़ होना था। इसी प्रकार मद्रास और बम्बई में भी गवर्नर की काउन्सिलों के सदस्यों की संख्या तीन निश्चित की गई जिनमें से एक सेनापति होता था।

पिट्स इंडिया एक्ट में एक भारी कमी रह गई थी। उसने गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के सम्बन्ध पहले ही ढंग के रहने दिये। किन्तु सन् १७८६ में एक दूसरा एक्ट पास किया गया जिसके द्वारा गवर्नर जनरल को विशेष अवस्था में काउन्सिल के बहुमत की अवहेलना करने का अधिकार दे दिया गया। इसके अलावा गवर्नर जनरल को प्रधान सेनापति (Commander in Chief) का भी पद ग्रहण करने की आज्ञा मिल गई।

१८१३ का एक्ट—बीस वर्ष बाद जब कम्पनी के ठेके के बढ़ाने का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ तब यह सवाल उठा कि कम्पनी द्वारा भारत-वर्ष में जीती हुई रियासत किसकी है। यह याद रखना चाहिए कि लार्ड वेलज़ली के समय में कम्पनी का राज्य वारन हेस्टिंग्ज़ के समय से बहुत बढ़

गया था। कम्पनी कहती थी कि उसके धन और कर्मचारियों द्वारा जीती गई भूमि पर शासन करने का अधिकार उनका ही है। यद्यपि आगामी बीस वर्षों के लिए शासन का अधिकार कम्पनी को फिर मिल गया किन्तु कम्पनी जिस सिद्धान्त पर ज़ोर देती थी उसको पार्लमेन्ट ने नहीं माना। **सन् १८१३ के एक्ट में उसने बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि राज्य और शासन करने का अधिकार निश्चय ही ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड के राजा का है अन्य का नहीं।** कम्पनी को शासन करने का अधिकार देना केवल राजा की इच्छा पर निर्भर है। वह चाहे दें अथवा छीन ले।

दूसरी बात जो इस एक्ट ने निश्चित की वह यह है कि इंगलैंड का यह कर्त्तव्य है कि वह ब्रिटिश राज्य में रहने वाली प्रजा के हितों का साधन और उनके सुख और उन्नति के उपाय करे। और इस हेतु वह ऐसे प्रयत्न करे जिससे प्रजा में लाभदायक ज्ञान का प्रचार और उनकी धार्मिक और आचरण की उन्नति हो। इस शुभ कार्य के लिए जो लोग भारत जाना चाहें उनको यथोचित सुविधाएँ दे।

तीसरी स्मरणीय बात जो इस एक्ट ने निर्णय की वह यह है कि भारत में व्यापार करने का ठेका केवल कम्पनी का न रहे। इसने प्रत्येक अंग्रेज को यह अधिकार दे दिया कि वह लाइसन्स लेकर भारत में स्वतंत्रता पूर्वक व्यापार करे। किन्तु चाय के और चीन के व्यापार का ठेका कम्पनी के ही हाथों में बीस वर्ष तक रहने दिया।

इस एक्ट ने कम्पनी द्वारा भारत से प्राप्त मालगुज़ारी (Revenue) के खर्च करने के कुछ सिद्धान्त निश्चित कर दिये। इसके अनुसार सब से पहले सेना का, फिर कम्पनी के कर्ज़ के सूद का और तदुपरान्त कर्म-चारियों के वेतनादि का ख़र्च आमदनी से निकालने के बाद और कामों पर ख़र्च किया जाय।

इस एक्ट ने कम्पनी के सैनिक और असैनिक कर्मचारियों की शिक्षा,

सुधार और धार्मिक आवश्यकताओं के लिए भी साधन निकालने का प्रयत्न किया।

सारांश यह कि इस एक्ट ने और कम्पनी का भारतीय व्यापार का ठेका भी तोड़ दिया। इंगलैंड के राजा के शासन करने के अधिकार को स्थापित करके शासन में सुधार करने की चेष्टा प्रकट की।

१८३३ का एक्ट—बीस वर्ष व्यतीत होने पर फिर सन् १८३३ में कम्पनी के ठेके का प्रश्न पार्लमेन्ट में आया। कुछ लोगों ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि कम्पनी के हाथ से शासन करने का अधिकार छीन लिया जाय। किन्तु अधिक वाद-विवाद होने पर भी सन् १८३३ के एक्ट द्वारा कम्पनी को शासन करने का अधिकार फिर बीस वर्ष के लिए दे दिया गया।

इस एक्ट ने कम्पनी के व्यापार का ठेका एक दम तोड़ दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि लोगों की पुरानी धारणा कि व्यापार और शासन एक ही संस्था के हाथ में होना सर्वथा अहितकर है, ज़ोर पकड़ गई थी। जब ठेका ही न रहा तो फिर किसी भी यूरोपियन को भारत में आने जाने, रहने अथवा व्यापार आदि करने में किसी प्रकार की रोक टोक न रही।

इस एक्ट में फिर स्पष्ट किया गया कि गवर्नर जनरल और काउन्सिल के सम्पूर्ण कार्यवाहियों के नियंत्रण, परिवर्तन अथवा रद्द कर देने का अधिकार पूर्ण रूप से सदैव पार्लमेन्ट के हाथ में है। पार्लमेन्ट को यह भी अधिकार है कि वह ब्रिटिश इन्डिया और उसके निवासियों के लिए जो क़ानून उचित समझे बना दे। गवर्नर जनरल जिन नियमों को बनावे और जिन्हें कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स रद्द न करे उनको पार्लमेन्ट के सामने रखना आवश्यक है। सारांश यह कि धीरे धीरे पार्लमेन्ट अपना पंजा कम्पनी पर कसती जाती थी और अपना अधिकार स्पष्ट करती और बढ़ाती जाती थी।

इस एक्ट ने गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के क़ानून बनाने

के अधिकार बढ़ा कर मद्रास और बम्बई सूबों की काउन्सिलों को और नीचे दबा दिया। इस एक्ट के पहले अपने अपने सूबे के शासन के लिए मद्रास और बम्बई के गवर्नर सकाउन्सिल क़ानून बना लिया करते थे। किन्तु इस एक्ट ने अखिल भारतवर्ष के लिए क़ानून बनाने का अधिकार गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल को दे दिया। इसके अतिरिक्त सारे आय व्यय का अधिकार भी गवर्नर जनरल एवं काउन्सिल को दे दिया गया जिसका प्रभाव यह पड़ा कि बम्बई और मद्रास की कौंसिलें कोई नया ख़र्च विना गवर्नर जनरल की आज्ञा के नहीं कर सकी थीं इससे गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल का महत्त्व और उसकी व्यापकता बढ़ गई, और शासन में अधिक केन्द्रत्व आ गया। इस समय से गवर्नर जनरल और काउन्सिल 'भारत सरकार' (Govt. of India) कहलाने लगीं।

सन् १८५३ का एक्ट—सन् १८५३ में एक एक्ट पास हुआ जिससे कम्पनी का शासन करने का अधिकार अनिश्चित काल के लिए अथवा यों कहिये कि जब तक पार्लमेन्ट छीन न ले तब तक, दे दिया गया। पहले की तरह कोई मियाद निश्चित नहीं की गई।

इस एक्ट से कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स में भी कुछ परिवर्तन किया गया। डाइरेक्टरों की संख्या चौबीस से घटा कर अठारह कर दी गई जिनमें से छः राजा की ओर से नियुक्त किये जाते थे। इस प्रकार पार्लमेन्ट ने कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के संगठन को भी ढीला और स्वानुकूल करने का प्रयत्न किया।

इस एक्ट ने कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स की शक्ति भी घटा दी। अभी तक ये लोग ही भारत के कर्मचारियों की नियुक्ति करते थे। इस अधिकार का उनको बड़ा मोह था और इसकी संरक्षा के लिए वे और बातों में दब कर चलते थे। किन्तु इस एक्ट ने यह भी छीन लिया। और भविष्य में कर्मचारियों का चुनाव परीक्षा विशेष के फल के अनुसार करने का विधान बना दिया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि रेग्यूलेटिंग एक्ट के समय (१७७४) से पार्लमेन्ट अपना हाथ बढ़ाती और कम्पनी के अधिकार घटाती चली जाती थी। सन् १८१३,१८३३ और १८५३ में भी यह आन्दोलन जारी रहा कि शासन का भार व्यापारियों अथवा किसी संस्था विशेष के हाथ में न रह कर पार्लमेन्ट के हाथ में आना चाहिए। इसी आन्दोलन तथा और कारणों से कम्पनी का व्यापारिक रूप बदल दिया गया। किन्तु इस पर भी संतोष न हुआ। कम्पनी के हाथ से शासन की डोर ले लेने की प्रबल इच्छा रखने पर भी पार्लमेन्ट हिचकिचा जाती थी। ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी भारी झोंके की बाट देख रही थी जिससे प्रेरित हो कर वह शासन भार अपने ऊपर लेले। यह झोंका लार्ड डलहौज़ी के समय की विलक्षण घटनाओं से आरम्भ हो कर भारतीय ग़दर के विकराल रूप में परिवर्तित हो गया। इससे सब चौंक पड़े, पार्लमेन्ट का आसन डोल गया और कम्पनी के शासन की जड़ ने ज़मीन छोड़ दी। इन भयंकर घटनाओं और भीषण परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि लार्ड पामर्स्टन ने सन् १८५८ में पार्लमेन्ट में एक बिल कम्पनी के शासन की इति श्री करने के लिए पेश किया। यद्यपि कम्पनी ने अपनी रक्षा के अनेक उपाय किये और बड़ी दलीलें पेश कीं किन्तु सब निष्फल हुईं और सन् १८५८ में एक महत्वपूर्ण एक्ट ने कम्पनी का अन्त कर दिया।

सन् १८५८ का एक्ट—इस एक्ट ने कम्पनी से शासन-कार्य लेकर इंगलैंड की महाराणी के हाथ में दे दिया। इस समय से उन्हीं के नाम से भारत का शासन होने लगा। इस कार्य की पूर्ति के लिए एक्ट ने 'बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल' और 'कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स' का भी अन्त कर दिया। उनका कार्य एक विशेष सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के हाथ में दे दिया गया जो सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फ़ार इन्डिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका वेतन भारत की आमदनी से देना निश्चित हुआ। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट का यह

कर्तव्य हुआ कि वह प्रति वर्ष भारत के आय-व्यय और उसकी मानसिक और आर्थिक दशा की रिपोर्ट पार्लमेन्ट के सम्मुख रखा करे।

सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की अध्यक्षता में उसकी सहायता के लिए इस एक्ट ने एक "काउन्सिल आफ़ इन्डिया" स्थापति की। इसके सदस्यों की संख्या १५ निश्चित हुई। "काउन्सिल आफ़ इन्डिया" का मुख्य कर्तव्य सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के सभापतित्व में भारत सम्बन्धी उन कामों का संचालन करना था जो इंगलैंड में किये जाते थे।

इस एक्ट ने कम्पनी की सम्पूर्ण सेना और जहाज़ी बेड़े को भी महा-राणी के अधिकार में कर दिया।

सन् १८५८ में कम्पनी का युग समाप्त हो कर नाटक के तीसरे अंक का पटाक्षेप हो गया। इसके बाद दूसरा युग आरम्भ हुआ गया जो अभी तक चल रहा है।

दूसरा अध्याय

भारत सचिव तथा उनकी काउन्सिल

पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि सन् १८५८ ईस्वी के एक्ट के अनुसार ब्रिटिश भारत के शासन की जिम्मेदारी ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकल कर इंगलैंड की पार्लमेंट के ऊपर आ गई। पार्लमेंट ने बोर्ड आफ़ कंट्रोल, बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स का अंत कर उनके स्थान पर इंगलैंड में, भारतीय शासन की देखरेख तथा नियंत्रण करने के लिये भारत सचिव तथा उसकी समिति बनाई। पार्लमेंट मंत्रिमंडल द्वारा शासन करती है। भारत सचिव का स्थान भी मंत्रिमंडल में रखा गया। मंत्रि-मंडल के बदल जाने पर भारत सचिव भी बदल जाता है। भारतीय समिति (India Council) तथा उपमंत्री, भारत सचिव की सहायता करते हैं। भारत सचिव अपने कार्यों के लिये ब्रिटिश पार्लमेंट के सन्मुख उत्तरदायी है, और इसी के ज़रिये पार्लमेंट भारतीय शासन की ज़िम्मे-दारी पूरी करती है।

पार्लमेंट ने भारतीय शासन-सुधार के संबंध में समय समय पर क़ानून बनाये जो क्रमशः सन् १८६१,१८९२,१९०९ तथा, १९१९ और १९३५ में बनाये गये। सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार ही अभीतक शासन प्रणाली संगठित है। किन्तु अब शीघ्र ही १९३५ के एक्ट के अनुकूल उसमें परिवर्तन कर दिया जायगा।

भारत सचिव और उसकी काउंसिल—सन् १९१९ के एक्ट के अनु-सार भारत सचिव, उसके सहायकों तथा उसके दफ्तर के अन्य कर्मचारियों

का वेतन इंग्लेंड की सरकार देती है। अतएव इनके वेतन का स्थान इंग्लैंड के वार्षिक आय-व्यय के चिट्ठे में रहता है। इससे पार्लमेंट के सदस्यों को भारतीय मामलों पर वादविवाद तथा प्रश्नादि करने का अच्छा अवसर मिल जाता है। इस तरह से भारत सचिव पार्लमेंट के एजेंट या प्रतिनिधि के रूप में ही कार्य करता है। इसकी सहायक काउंसिल को (India Council) इंडिया काउंसिल कहते हैं। इसकी उत्पत्ति सन् १८५८ के एक्ट द्वारा हुई। १८५८ के एक्ट के अनुसार इंडिया काउंसिल १५ सदस्यों की थी जिनमें से ७ कंपनी के डाइरेक्टर्स चुनते थे और शेष ८ बादशाह नियुक्त करते थे। इनमें से कम से कम ९ सदस्य ऐसे होते थे जो भारत में कम से १० वर्ष नौकरी कर चुके हों और जिन्हें विलायत वापिस लौटे १० वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। इनकी अवधि अनिश्चित थी किन्तु ये पार्लमेंट के द्वारा ही हटाये जा सकते थे। हर एक सदस्य को भारत के खजाने से १२०० पौंड वार्षिक वेतन मिलता था। सन् १८६९ के एक्ट द्वारा इंडिया काउन्सिल के सदस्यों की संख्या १५ से घटाकर १० तथा अवधि १० वर्ष कर दी गई। भारत सचिव को अधिकार दे दिया गया कि वह आवश्यकता पड़ने पर सदस्य नियुक्त कर सके। सन् १९०७ के एक्ट से भारत सचिव को सदस्यों की संख्या १४ तक बढ़ाने का अधिकार मिल गया। १० वर्ष के स्थान में अवधि ७ वर्ष कर दी गई तथा सदस्यों का वेतन १२०० पौंड प्रति वर्ष से घटाकर १००० पौंड प्रति वर्ष कर दिया गया। सन् १९०७ के बाद से इस समिति में भारतीयों को भी स्थान मिलने लगा।

सन् १९१९ के एक्ट ने इसके संगठन में पुनः परिवर्तन किया। इसके अनुसार इंडिया काउंसिल के ८ से १२ तक सदस्य होते हैं जिन्हें सम्राट् ५ वर्ष के लिये नियुक्त करते हैं। इस अवधि में वे केवल पार्लमेंट की दोनों सभाओं के ही द्वारा हटाये जा सकते हैं। आजकल इसमें ३ भारतीय हैं। एक्ट के अनुसार इंडिया काउंसिल के आधे सदस्य ऐसे होते हैं जो भारत

में कम से कम १० वर्ष रह चुके हों और जिन्हें भारत से वापिस आये ५ वर्ष से अधिक न हुए हों। सदस्यों का वेतन १२०० पौंड सालाना है। भारतीय सदस्यों को वेतन के अतिरिक्त ६०० पौंड सालाना दिया जाता है। इस काउंसिल की बैठक महीने में एक बार होना आवश्यक है। इसके सदस्य अपने अनुभव से भारतीय विषयों पर भारत सचिव को जानकारी कराते हैं, एवं अपने परामर्श द्वारा सहायता करते हैं।

इंडिया काउंसिल के अतिरिक्त भारत सचिव के दो सहायक मंत्री होते हैं जिनमें एक स्थायी (Permanent) होता है और दूसरा पार्लमेंटरी (Parliamentary) मंत्री कहलाता है। पार्लमेंटरी मंत्री का मुख्य कार्य भारत सचिव की ओर से पार्लमेंट में भारत संबंधी प्रश्नों का उत्तर देना है।

भारत सचिव के अधिकार—भारत सचिव को भारतीय शासन का निरीक्षण तथा नियंत्रण करने का पूरा अधिकार है। इसके अधिकारों को स्थूल रूप से ३ तरह से विभक्त कर सकते हैं—(१) शासन प्रबंध संबंधी, (२) धन संबंधी और (३) क़ानून संबंधी।

शासन सम्बन्धी अधिकार—एक्ट के अनुसार भारतीय शासन संबंधी नीति भारत सचिव निर्माण करता है। भारत सरकार भारत सचिव के आदेशों तथा आज्ञाओं को मानने के लिये बाध्य है। बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति में भारत सचिव सम्राट् को सलाह देता है। गवर्नर जनरल तथा उसकी प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यों की नियुक्ति भी इसी के परामर्श से सम्राट् द्वारा होती है। इसके अतिरिक्त प्रान्तों के गवर्नर, हाईकोर्ट के न्यायाधीश, पब्लिक सर्विस कमीशन आडीटर जनरल, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास के प्रधान पादरियों आदि बड़े बड़े कर्मचारियों की नियुक्ति भारत सचिव के ही परामर्श से होती है। इस प्रकार बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति में भारत सचिव का पूरा पूरा अधिकार है। इसके अतिरिक्त भारतीय शासन नियंत्रण में

इसका और भी कई प्रकार से अधिकार है। भारत सरकार को शासन संबंधी कार्यों की रिपोर्ट भारत सचिव के पास भेजनी पड़ती है। कई कार्यों के लिये तो भारत सचिव की अनुमति पहले ही ले लेनी पड़ती है जैसे युद्ध, संधि इत्यादि। आजकल प्रायः सभी कार्यों के लिए अनुमति लेनी पड़ती है। गवर्नर जनरल के द्वारा भारत सचिव प्रान्तीय सरकारों के कार्यों का भी निरीक्षण तथा नियंत्रण करता है। इस प्रकार शासन प्रबंध संबंधी मामलों में हर तरह से भारत सचिव निरीक्षण तथा नियंत्रण करता है।

धन सम्बन्धी अधिकार—सन् १९२० के पूर्व एजन्सी का कार्य, जैसे भारत सरकार के लिये माल-असबाब खरीदना, कर्ज़ा लेना, ठेके देना आदि भारत सचिव के ही हाथ में था, किंतु अब इस कार्य के लिये भारत सरकार की ओर से 'हाई कमिश्नर' नियत किया गया है। एजन्सी का काम भारत सचिव के हाथ में न होने पर भी उसके अर्थ संबंधी अधिकार महत्व-पूर्ण हैं। भारत सचिव अब भी बड़े कर्मचारियों के वेतन, पेंशन आदि एवं माल्गुज़ारी, और सैनिक व्यय और भारत के सम्राट् की हैसियत से सम्राट् की सम्पत्ति का नियंत्रण करता है। यदि कोई नया टैक्स लगाने या घटाने की आवश्यकता पड़ती है तो भारत सरकार के लिये भारत सचिव की अनुमति लेना अनिवार्य सा है।

क़ानून संबंधी अधिकार—भारत सरकार, व्यवस्थापिका सभा द्वारा बनाये हुए क़ानून को सम्राट् की स्वीकृति के लिये सम्राट् के पास भेजती है। यह स्वीकृति भारत सचिव ही सम्राट् की ओर से दिया करते हैं। यदि भारत सचिव किसी क़ानून को नामंज़ूर करें तो वह क़ानून जारी नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त भारतीय सरकार को हर एक क़ानून के संबंध की रिपोर्ट (Report) भारत सचिव के पास भेजनी पड़ती है। भारत सचिव की अनुमति बिना भारतीय व्यवस्थापिका कुछ विषयों— जैसे हाईकोर्ट को तोड़ना या नई निर्माण करना, हाईकोर्ट के सिवा अन्य

अदालत को किसी यूरोपियन के मृत्यु-दंड का अधिकार देना आदि—पर क़ानून नहीं बना सकती। इस प्रकार भारत सचिव का क़ानून निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण अधिकार है।

भारत सचिव और इंडिया काउंसिल—यह लिखा जा चुका है कि इंडिया काउंसिल का मुख्य कार्य भारत सचिव को अपने परामर्श से सहायता पहुँचाना था। बहुत ही गोपनीय तथा अत्यंत शीघ्रता के कार्यों को छोड़ कर प्रायः सब कार्य भारत सचिव इसी काउंसिल के साथ ही करता है। काउंसिल की बहुमति बिना उसे भारतीय आय को व्यय करने या भारतीय संपत्ति को बेचने एवं भारत के लिये ऋण लेने का अधिकार नहीं है। बड़े बड़े कर्मचारी (I.C.S.) की छुट्टी के नियम में परिवर्तन तथा हिन्दुस्थानियों को ऊँचे पदों पर नियत करने में भी काउंसिल की बहुमति अनिवार्य है। कुछ कार्य ऐसे भी हैं जिन्हें भारत सचिव अत्यंत आवश्यक समझ कर काउंसिल की सलाह बिना ही कर सकता है। ये विषय हैं—बाहिरी देशों से संधि या विग्रह तथा भारतीय रियासतों से संबंध रखने वाले। इसके अतिरिक्त भारत सचिव को अपनी काउंसिल के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार भी असाधारण परिस्थिति में है।

सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार इन्डिया काउन्सिल तोड़ दी जायगी उसके बदले भारत सचिव तीन से छः व्यक्तियों की समिति स्वयं नियुक्त कर सकेगा। उसको स्वतंत्रता है किचाहे वह प्रत्येक से अलाहदा २ अथवा एक साथ परामर्श ले और चाहे बिल्कुल सलाह न ले। इन सलाहकारों में से आधे ऐसे होना चाहिये कि जिन्होंने दस वर्ष या उससे अधिक समय तक भारत में सरकार की नौकरी की हो। भारत सचिव सलाहकारों की राय पर चलने को बाध्य न होगा केवल सराकारी नौकरी के मामलों में उसको बहुमत का आदर करना होगा इस परिवर्तन से सक्रेटरी आफ़ स्टेट का पहले की अपेक्षा अधिकार कुछ बढ़ जायगा।

वायसराय तथा गवर्नर जनरल और उनकी कार्यकारिणी–सचिव और मंत्री

(Counsellors and Ministers)

भारत में सम्राट् का मुख्य प्रतिनिधि तथा भारतीय सरकार का अधिपति 'वायसराय और गवर्नर जनरल' ही है। सम्राट् के मुख्य प्रतिनिधि की हैसियत से वह वायसराय कहलाता है, एवं भारतीय शासन यंत्र के प्रधान नियंत्रक और निरीक्षक होने के कारण गवर्नर जनरल कहलाता है। एक ही व्यक्ति वायसराय तथा गवर्नर जनरल है। वायसराय एवं गवर्नर जनरल* की नियुक्ति सम्राट् ५ वर्ष के लिये करते हैं। आवश्यकतानुसार अवधि में परिवर्तन भी हो सकता है। सम्राट् के प्रतिनिधि होने के कारण वायसराय के कुछ विशेष अधिकार भी हैं, जैसे अपराधियों को क्षमा करना, दरबार करना आदि। ये कार्य वायसराय गवर्नर जनरल की हैसियत से नहीं वरन् वायसराय की हैसियत से ही करता है।

गवर्नर जनरल के अधिकार—गवर्नर जनरल के अधिकारों को भी ३ अंगों में विभक्त किया जा सकता है। (१) शासन प्रबंध संबंधी, (२) क़ानून संबंधी तथा (३) धन संबंधी।

गवर्नर जनरल का मुख्य कर्तव्य देश में शान्ति रखना और भयंकर अशान्ति का दमन करना है। यह काम सरकारी नौकरों द्वारा किया जाता है। उनकी और उनके अधिकारों की रक्षा करना गवर्नर जनरल

***वायसराय की नियुक्ति भारतसचिव के परामर्श से** (*by warrant under sign manual*) **होती है। इनका वेतन २,५६०००) सालाना है।**

का काम है। गवर्नर जनरल शासन संबंधी अधिकार तीन प्रकार से काम में लाते हैं। वह प्रान्तीय गवर्नरों की नियुक्ति में साम्राट् को परामर्श देता है तथा अपनी प्रबंध-कारिणी समिति के उपसभापति तथा काउंसिल के सेक्रेटरियों को नियुक्त करता है। भारतीय व्यवस्थापिका सभा जिसे अपना सभापति चुनती है उसके लिये भी अंतिम स्वीकृति गवर्नर जनरल की ही होती है। गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी समिति की बैठक का समय तथा स्थान भी निर्धारित करता है। इसके सिवा व्यवस्थापिका सभा की बैठक बुलवाना, उसकी अवधि निश्चित करने तथा उसे भंग कर पुनः चुनाव करने एवं व्यवस्थापिका सभा में कुछ सदस्यों को नामज़द करने का भी उसी को अधिकार है। जिससे कि न्यून संख्यक समुदायों (Racial or Religious Communities) के हित की रक्षा हो सके।

व्यवस्थापिका सभा गवर्नर जनरल की अनुमति बिना धर्म संबंधी मामले पर क़ानून नहीं बना सकती, और न फ़ौज संबंधी मामलों पर ही अनुचित हस्तक्षेप कर सकती है। देशी रियासतों तथा अन्य देशों से संबंध रखने वाली बातों में तो गवर्नर जनरल का पूरा अधिकार है। रियासतों और राजाओं के अधिकारों और मर्यादा की रक्षा करना उसका विशेष कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों के उन कार्यों का जिनका संबध अन्य सूबों अथवा अखिल भारत से हो, निरीक्षण तथा आवश्यकता पड़ने पर नियंत्रण करना एवं प्रान्तीय व्यवस्थापिका के किसी क़ानून को रद्द करने या परिवर्तन करने का भी गवर्नर जनरल को अधिकार है। एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल व्यवस्थापिका के किसी भी क़ानून को मंजूर या नामंज़ूर कर सकता है। इसके सिवा गवर्नर जनरल का क़ानून संबंधी एक और महत्त्वपूर्ण अधिकार है। यदि उसकी राय में देश की शान्ति, रक्षा एवं सुव्यवस्थित शासन के लिये किसी क़ानून की आवश्यकता हो तो वह स्वयं वह क़ानून बनाता है जिसे

आर्डिनेंस कहते हैं। आर्डिनेंस की अवधि ६ माह तक रहती है किंतु यदि गवर्नर जनरल चाहे तो उसे रद्द भी कर सकता है।

सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल का कर्तव्य होगा कि वह भारत की आर्थिक साख की रक्षा करे जिससे अन्यान्य देशों में भारत की साख-रक्षा की धाक बिगड़ने न पाये। इसीलिये उसको अधिकार दिया गया है कि वह भारत को ऐसे काम न करने दे, जिससे बर्मा और ब्रिटेन के व्यापार पर ऐसे प्रतिबन्ध लगें जो दूसरों के मुक़ाबले में कठोर और असमान हों। आर्थिक विषयों पर परामर्श लेने के लिये यदि वह चाहे तो एक अर्थ सचिव (Financial Adviser) नियुक्त कर सकता है। उसकी अनुमति बिना धन व्यय या नये टेक्स से संबंध रखता हुआ कोई भी मसविदा (Bill) व्यवस्थापिका सभा में उपस्थित नहीं हो सकता। व्यवस्थापिका के बहुमत के विरुद्ध बजट का कोई भी भाग गवर्नर जनरल अपने ही विशेष अधिकार से पास कर सकता है।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति—१९१९ के एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति की संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ाई या घटाई जा सकती थी। आजकल इसकी संख्या ८ है। समिति के सदस्य सम्राट् ५ वर्ष के लिये ही नियत करते हैं, किंतु आवश्यकतानुसार इनकी अवधि में परिवर्तन हो सकता है। सन् १९०९ के पूर्व इसके सब सदस्य अंग्रेज़ ही थे। सन् १९०९ में लार्ड मार्ले ने, जो उस समय भारत सचिव थे, सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा (बाद में लार्ड सिन्हा) को इस समिति का सदस्य बनाया। लार्ड मार्ले के इस कार्य की अत्यंत तीव्र आलोचना हुई। आलोचकों का कथन था कि भारतवासी अभी इस योग्य नहीं हुए हैं कि वे इस उच्च पद को सँभाल सकें। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी अंदेशा था कि सरकार की गुप्त बातें भारतवासियों को ज्ञात हो जावेंगी। सर सत्येंद्र ने बड़ी योग्यता से कार्य कर दिखा दिया कि भारतवासी भी

चातुर्य के साथ कार्य कर सकते हैं। सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार कार्यकारिणी में भारतवासियों की संख्या बढ़ा कर कम से कम ३ कर दी गई थी। एक्ट के अनुसार समिति के कम से कम तीन सदस्य ऐसे होने अनिवार्य हैं जो १० वर्ष भारतवर्ष में सरकारी पद पर रह चुके हों। एक सदस्य (जिसे ला मेम्बर कहते हैं) इंग्लेंड वा आयर्लेंड का बैरिस्टर, या स्काटलेंड का एडवोकेट या भारतीय हाईकोर्ट में कम से कम १० वर्ष वक़ालत किया हुआ वक़ील होता है। भारत का जंगी लाट (कमान्डर-इन-चीफ़)* भी इस समिति का सदस्य हो सकता है और गवर्नर जनरल के बाद उसी का दर्जा है।

एक्ट के अनुसार भारत के मुल्की और फ़ौजी शासन प्रबंध, निरीक्षण तथा नियंत्रण, काउंसिल सहित गवर्नर जनरल में है। अतएव गवर्नर जनरल प्रायः सब कार्य काउंसिल के साथ ही करते हैं। इसकी बैठक प्रायः हर हफ़्ते हुआ करती है। गवर्नर जनरल काउंसिल के बहुमत को मान लेता है किन्तु किसी ख़ास महत्वपूर्ण विषय पर वह उसके विरुद्ध भी कार्य करने का अधिकारी है। अभी केन्द्रिक शासन सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार संगठित है किन्तु जब कभी भारत में फेडरेशन बन जायगा तब फेडरल गवर्नमेन्ट का संगठन सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार किया जायगा। सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल फेडरल व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों में से मंत्री चुना करेगा। उसे यह अधिकार रहेगा कि जब वह उचित समझे तब किसी मंत्री को पदच्युत कर दे। यदि कोई मंत्री छः महीने के भीतर चेम्बर अथवा व्यवस्थापिका सभा का सदस्य न हो सके तो उसे अपना पद त्याग देना पड़ेगा।

---

*१ कमांडर-इन-चीफ़ का वेतन १,००,०००) तथा कार्यकारिणी के प्रत्येक सदस्य का ८०,०००) वार्षिक वेतन है।

सन् १९३५ एक्ट के अनुसार फेडरेशन* बनने पर केन्द्रिक शासन में भी द्विविध शासन (Dyarchy) प्रणाली स्थापित की जायगी। सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर जनरल अपने कौन्सिलरों (Councillors) द्वारा करेगा। इनकी संख्या तीन से अधिक नहीं हो सकती। किन्तु जो विषय सुरक्षित (Reserved) नहीं है उनका प्रबन्ध गवर्नर जनरल मंत्रियों (ministers) द्वारा करेगा जिनकी संख्या दस से अधिक नहीं हो सकती। यथा संभव स्वेच्छानुसार सुरक्षित विषयों पर भी गवर्नर जनरल मंत्रियों की राय ले सकता है।

पहिले वायसराय की यह समिति एक बोर्ड के समान कार्य करती थी किन्तु लार्ड केनिंग के समय से समिति का प्रत्येक सदस्य एक बड़े विभाग† का प्रधान होता है। कार्यकारिणी समिति के प्रत्येक सदस्य की सहायता के लिये उसके विभाग के सेक्रेटरी और बड़े बड़े अनेक कर्मचारी होते हैं। इन सब के लिये एक बड़ा दफ़्तर है जिसे भारतीय सेक्रेटरियट (Imperial Secretariate) कहते हैं।

*** सम्भवतः सन् ४१ में भारतीय फ़ेडरेशन की स्थापना हो। देशी रियासतें और ब्रिटिश भारत समस्त देश से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों के लिए केन्द्रिक सरकार द्वारा सञ्चालित किये जायँगें।**

† **मुख्य मुख्य विभाग ये हैं—(१) परराष्ट्र** (Foreign Department), (२) **स्वदेश** (Home Dept.), (३) **अर्थ विभाग** (Finance Dept.), (४) **व्यापार तथा रेलवे** (Commerce & Railway Dept.), (५) **क़ानून** (Law), (६) **उद्यम, उद्योग और धंधे** (Industry & Labour), (७) **सैन्य** (Army), (८) **कृषि** (Agriculture), (९) **शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि** (Education, Health & Lands).

गवर्नर जनरल और भारत सचिव में संबंध—गवर्नर जनरल भारत सचिव की मातहती में है अतएव उसे भारत सचिव की आज्ञा तथा आदेशों का पालन करना पड़ता है। भारत सचिव का नियंत्रण गुप्त और प्रकट रूप से व्यापक है। भारत सचिव और गवर्नर जनरल में गुप्त पत्र व्यवहार बहुत अधिक हुआ करते हैं। आवश्यकतानुसार तार, टेलीफ़ोन के ज़रिये गवर्नर जनरल, भारत सचिव को ख़बरें दिया करता है। भारत सचिव इंग्लैंड के किसी विशेष राजनीतिक दल का अनुयायी होता है। यदि भारत सचिव और गवर्नर जनरल एक ही दल के अनुयायी न हुए, और उनके विचारों तथा नीति में मतभेद हुआ, तो इसका असर शासन प्रबंध पर भी पड़ता है। ऐसे स्थलों पर गवर्नर जनरल की परिस्थिति और भी विचित्र हो जाती है। एक ओर तो उसे भारत सचिव के आदेशों का पालन करना पड़ता है और दूसरी ओर भारतीय व्यवस्थापिका सभा को भी निबाहना पड़ता है।

प्रान्तों की रचना कब और कैसे हुई—भारतवर्ष विशाल देश है। शासन प्रबंध की सुविधा के लिये यह छोटे बड़े १७ प्रान्तों में विभक्त किया गया है। बड़े प्रान्त ११ हैं—बंबई, मद्रास, बंगाल, बर्मा* बिहार, उड़ीसा, आसाम, यू० पी०, सी० पी० और बरार, पंजाब, सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत। छोटे प्रान्त अभी ५ हैं—अंग्रेज़ी बलोचिस्तान, दिल्ली, अजमेर मारवाड़, कुर्ग और अंदमान निकोबार। पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत सन् १९३२ से, उड़ीसा और सिन्ध १९३६ से तथा अन्य प्रत्येक बड़ा प्रान्त सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार गवर्नर के आधीन है। छोटे प्रान्त चीफ़ कमिश्नर के आधीन हैं। सिन्ध

*** १९३५ के एक्ट के अनुसार बर्मा प्रांत भारत सरकार से अलग कर दिया गया है।**

और उड़ीसा प्रान्तों की रचना सन् १९३५ के एक्ट के द्वारा ही हुई है।

बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रेसीडेन्सी आरम्भ से ही बन चुकी थीं। मद्रास प्रान्त का आधुनिक रूप १७९९ में टीपू सुल्तान की पराजय से प्रायः निश्चित हो चुका था। तृतीय मराठा युद्ध (१८१८) के बाद बम्बई प्रान्त सिंध प्रदेश को छोड़ कर बन गया था। सन् १८१८ तक सिंध, पंजाब, बर्मा और आसाम के सिवा प्रायः समस्त भारत ईस्ट इंडिया कंपनी के राज्य या रक्षा में आ चुका था। कम्पनी का राज्य ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों प्रान्तों को विभक्त करने की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी। समय समय पर प्रान्तों की रचना होती गई जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

यू० पी०—सन् १८३३ के एक्ट के अनुसार आगरा प्रान्त (नार्थ-वेस्ट प्राविंस के नाम से) बना कर लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन किया गया। सन् १८५६ में अवध अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित कर एक चीफ़ कमिश्नर के आधीन किया गया। सन् १८७७ ईस्वी में अवध और आगरा प्रान्त मिलाकर लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन रखे गये। सन् १९०२ में इस प्रान्त का आधुनिक नाम पड़ा और सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार यह गवर्नर के आधीन हुआ।

पंजाब*—१८४९ ईस्वी में अंग्रेज़ों ने पंजाब जीत कर एक बोर्ड के आधीन रखा। कुछ समय बाद पंजाब चीफ़ कमिश्नर के आधीन हुआ। १८५९ में दिल्ली भी पंजाब में मिला दिया गया और चीफ़ कमिश्नर के स्थान पर लेफ़्टनेंट गवर्नर रखा गया। सन् १९१२ के दरबार के बाद

***पंजाब विजय के पहिले सिंध जीत कर बंबई प्रान्त में सम्मिलित कर लिया गया।**

दिल्ली अलग कर दिया गया। १९१९ के एक्ट के अनुसार पंजाब भी गवर्नर प्रान्त बनाया गया।

आसाम—सन् १८३६ से १८७४ तक यह प्रान्त बंगाल के साथ ही रहा। १८७४ में इसे पृथक् कर चीफ़ कमिश्नर के आधीन किया। १९०५ ई० में जब बंग भंग हुआ तब आसाम और पूर्वी बंगाल प्रान्त बना कर लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन रखा गया। सन् १९११ में पुनः आसाम पृथक् कर चीफ़ कमिश्नरी बनाया गया। १९१९ के एक्ट के अनुसार आधुनिक आसाम गवर्नर प्रान्त हुआ।

बिहार—यह १९०५ तक बंगाल का ही भाग रहा। १९०५ में पश्चिमी बंगाल बिहार और उड़ीसा पृथक् प्रान्त बना कर लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन हुआ किन्तु १९११ में बिहार और उड़ीसा अलग कर लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन रखे गये। १९१९ के एक्ट द्वारा यह भी गवर्नर प्रान्त बन गया। सन् १९३५ के एक्ट द्वारा कुछ ही दिन हुए उड़ीसा बिहार से अलाहदा कर दिया गया है।

बर्मा—सन् १८५२ में ईस्टइंडिया कम्पनी ने पेगू विजय किया। १८५२ से १८६२ तक पेगू, आराकान और टेनासिरम पृथक् रूप से एक एक कमिश्नर के हाथ में रहे जो सीधे भारतीय सरकार के निरीक्षण में थे। १८६२ में ये मिला कर दक्षिणी बर्मा के नाम से एक चीफ़ कमिश्नर के आधीन रखे गये। १८८६ ईस्वी में उत्तरीय बर्मा भी दक्षिणी बर्मा में मिला दिया गया और सन् १८९७ में बर्मा प्रान्त लेफ़्टनेंट गवर्नर के आधीन रखा गया। १९१९ के एक्ट के अनुसार बर्मा भी गवर्नर प्रांत बना। सन् १९३५ के एक्ट ने बर्मा को भारत से अलाहदा कर दिया। बर्मा को अब भारत से अलाहदा करने की योजना हो रही है।

सी० पी० और बरार—सन् १८१८ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने पेशवा को गद्दी से उतार कर सागर और दमोह ले लिया। उसी वर्ष नागपुर के युद्ध में अप्पा साहेब की हार हो गई। अप्पा साहेब ने संधि कर मंडला,

बैतूल, सिवनी तथा नर्बदा के कछार का भाग (नर्बदा वेली) अंग्रेज़ों को दे दिया। सन् १८२० में ये भाग जो सागर और नर्बदा वेली कहलाते थे गवर्नर जनरल के एक एजेंट के आधीन रखे गये। सन् १८१८ ई० में निमाड़ प्रान्त भी पेशवा ने अंग्रेज़ों को दिया था जो सन् १८२३ की संधि में सिंधिया से सदैव के लिये अंग्रेज़ों को मिल गया। सन् १८५३ ईस्वी में नागपुर के तृतीय राघोजी भोंसले की मृत्यु हो गई। भोंसले के कोई पुत्र न था अतएव नागपुर का राज्य जिसमें छत्तीसगढ़, छिंदवाड़ा तथा होशंगाबाद के कुछ भाग सम्मिलित थे ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया। सन् १८४४ में सिंधिया ने ग्वालियर की फ़ौज के व्यय के लिये हँडिया और हरदा के इलाक़े दिये जो १८६० में ब्रिटिश के पूर्णाधिकार में आ गये। १८६० ईस्वी में जीनाबाद मुंजरोद तथा बुरहानपुर का इलाक़ा भी सिंधिया से कम्पनी को सदैव के लिये प्राप्त हो गया।

सन् १८६१ ई० में सागर के साथ नागपुर प्रान्त युक्त कर दिया गया। १८६४ में निमाड़ भी इसी के साथ मिला कर मध्य प्रदेश प्रान्त निर्माण किया गया। सन् १९०२ में निज़ाम ने बरार अंग्रेज़ों को दे दिया। बरार को मध्यप्रदेश से युक्त कर आधुनिक मध्यप्रदेश और बरार बनाकर एक चीफ़ कमिश्नर के आधीन रखा गया। सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार मध्यप्रदेश और बरार भी गवर्नर प्रान्त हो गया।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत—सन् १९०१ में पंजाब के कुछ ज़िले मिला कर यह प्रान्त बनाया गया। सन् १९३२ में यह गवर्नर प्रान्त हुआ।

सिन्ध प्रान्त—सन् १९३५ के एक्ट के द्वारा बम्बई सूबे से हटाकर सिन्ध एक स्वतंत्र प्रान्त बना कर गवर्नर के अधीन किया गया है।

उड़ीसा—पहले यह बंगाल सूबे में था। सन् १९११ में उड़ीसा और बिहार मिलकर नया सूबा बना। किन्तु सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार उड़ीसा भी स्वतंत्र गवर्नर प्रांत बना दिया गया है।

ब्रिटिश बलोचिस्तान—१८७७ में चीफ़ कमिश्नर के आधीन रखा

गया। **कुर्ग** सन् १८३४ में ब्रिटिश राज्य में मिलाया गया था। पहिले इसका प्रबंध मैसूर का रेजिडेंट करता था किन्तु सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार यह चीफ़ कमिश्नर के आधीन है। **अजमेर मारवाड़** १८१८ ई० में ब्रिटिश अधिकार में आया। १९१९ के पहिले यह गवर्नर जनरल के एजेंट के हाथ में था। सन् १९ से इसका प्रबंध भी चीफ़ कमिश्नर करने लगा है। **अन्दमान निकोबार** के द्वीप भी एक चीफ़ कमिश्नर के आधीन हैं। **दिल्ली** सन् १९१२ के दरबार के बाद से चीफ़ कमिश्नर के आधीन है।

प्रान्तीय सरकार

बड़े प्रान्त १९१९ के एक्ट के अनुसार गवर्नर के आधीन हैं। अपने प्रान्त में गवर्नर के वैसे ही अधिकार हैं जैसे समस्त भारत में गवर्नर जनरल के। प्रेसीडेन्सी गवर्नरों की तथा अन्य प्रान्तों की नियुक्ति सम्राट् करते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि अन्य प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्ति में सम्राट् वायसराय से भी परामर्श लेते हैं। प्रेसीडेन्सी गवर्नरों तथा यू० पी० के गवर्नर का वेतन १,२८,०००) सालाना है। किन्तु प्रेसीडेन्सी गवर्नरों का (Personal Staff)* ख़ास कर्मचारी समूह अन्य गवर्नरों से अधिक है। पंजाब, बर्मा तथा बिहार और उड़ीसा के गवर्नरों को १,००,०००) सालाना, सी० पी० के गवर्नर को ७२,०००) सालाना तथा आसाम के गवर्नर को ६६,०००) सालाना वेतन मिलता है।

---

*प्रेसीडेन्सी गवर्नरों के ख़ास कर्मचारियों (Personal Staff) में एक फ़ौजी सेक्रेटरी, एक सरजन, प्राइवेट सेक्रेटरी तथा कई ए० डी० सी० होते हैं। अन्य प्रान्तों के गवर्नरों के पास फ़ौजी सेक्रेटरी, सरजन नहीं होते तथा ऐ० डी० सी० की संख्या भी कम है।

हर एक प्रान्त में गवर्नर की कार्यकारिणी समिति* है, जिनके सदस्यों की नियुक्ति सम्राट् करते हैं। कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की संख्या भिन्न भिन्न है। बंबई, मद्रास और बंगाल की कार्यकारिणी के ४ सदस्य हैं, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में १ तथा अन्य प्रान्तों में २ हैं। एक्ट के अनुसार कार्यकारिणी समिति का कम से कम एक सदस्य ऐसा होता है जो कम से कम १२ वर्ष तक भारत सरकार की उच्च नौकरी में रहा हो। आजकल इसमें प्रत्येक प्रान्त में हिन्दुस्तानी भी हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक व्यवस्थापिका सभा भी है जिनकी सदस्य संख्या एक सी नहीं है। जन संख्या अथवा विशेष परिस्थिति के कारण संख्या कम या अधिक है। सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार इन व्यवस्थापिका सभाओं में कम से कम ७० % सदस्य जनता द्वारा चुने हुए होते हैं और सरकारी सदस्यों की संख्या २० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। व्यवस्थापिका सभा के ग़ैरसरकारी निर्वाचित सदस्यों में से गवर्नर मन्त्री चुनते हैं। मध्यप्रदेश में २ मंत्री हैं। गवर्नर अन्य व्यक्ति को भी मंत्री बना सकता है किन्तु वह ६ मास से अधिक मंत्री के पद पर उसी हालत में रह सकता है यदि वह ग़ैरसरकारी निर्वाचिक सदस्य की हैसियत से व्यवस्थापिका सभा का सदस्य बन जाय।

सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को उन विषयों के शासन प्रबंध का अधिकार मिल गया है जो प्रान्त से ही संबंध रखते हैं, अतएव प्रान्तिक हैं। प्रान्तिक सरकार की ज़िम्मेदारी इन्हीं विषयों की है। प्रान्तिक विषय भी दो भागों में विभक्त हैं। एक तो रक्षित (Reserved) है

---

* बंबई, मद्रास, यू० पी० की कार्यकारिणी समिति के प्रत्येक सदस्य को ६४,०००); पंजाब तथा बिहार और उड़ीसा की कार्यकारिणी के प्रत्येक सदस्य को, ६०,०००); सी० पी० के सदस्यों को ४८,०००) तथा आसाम के सदस्यों को ४०,०००) सालाना वेतन मिलता है।

जिनका प्रबंध गवर्नर अपनी कार्यकारिणी द्वारा करता है। दूसरा भाग समर्पित (Transferred Subjects) कहलाता है, जिसका प्रबंध गवर्नर मंत्रियों द्वारा करता है। इन हस्तांतरित या समर्पित विषयों के प्रबंध एवं संचालन के लिए मंत्री व्यवस्थापिका सभा के निकट उत्तरदायी है। किन्तु कार्यकारिणी के सदस्य अपने विभागों के लिए गवर्नर के ही निकट जिम्मेवार हैं न कि व्यवस्थापिका के। इस प्रकार के द्विविध शासन को Dyarchy कहते हैं। मंत्री प्रायः हिन्दुस्तानी ही होते हैं। गवर्नर को इन्हें अलग कर देने का भी अधिकार है। मंत्रियों का वेतन कार्यकारिणी समिति के सदस्य के वेतन के बराबर ही रखा गया है। किन्तु व्यवस्थापिका सभा को उसका वेतन घटाने का पूरा अधिकार है। मंत्रियों तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की शासन प्रबंध में सहायता करने के लिए हर एक प्रान्त में बड़े बड़े दफ़्तर हैं जिन्हें प्रान्तीय सेक्रेटरियट (Provincial Secretariats) कहते हैं। प्रत्येक प्रान्त में कार्यकारिणी के सदस्य तथा मंत्री अपने अपने शासन विषयों के मुख्य पदाधिकारी होते हैं। उनके नीचे हर एक विभाग का एक प्रधान निरीक्षक होता है। इनकी सहायता के लिए सेक्रेटरी, उपसेक्रेटरी आदि अन्य कर्मचारी रहते हैं।

ऊपर वर्णन की हुई व्यवस्था सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार है। किंतु सन् १९३५ के एक्ट से उसमें भारी परिवर्तन होगा। केन्द्रिक शासन में तो १९३५ के एक्ट के अनुसार विधान जब ही बनेगा जब कि भारत में फेडरेशन कायम हो जायगा। किन्तु सूबों में सन् १९३७ में नया विधान चला दिया जायगा। सन् १९३५ के एक्ट ने सूबों में द्विविध शासन हटाकर उत्तर दायित्व शासन की स्थापना की है। इसके अनुसार सूबे का गवर्नर, जिसकी नियुक्ति सम्राट् करेगा, सूबे के शासन का पूर्णरूप से गवर्नर जनरल को ज़िम्मेदार होगा। सूबे का शासन गवर्नर मंत्रियों द्वारा करेगा न कि कार्यकारिणी समिति द्वारा जैसा कि

पहले था। मंत्रियों का चुनाव गवर्नर स्वयं करेगा और अपनी इच्छा के अनुसार उनको हटा भी सकेगा। हाँ कानूनी मामलों के लिए वह सूबे में एक एडवोकेट जनरल नियुक्त कर सकेगा। यद्यपि मंत्री लोग ही प्रत्येक विभाग का शासन करेंगे किन्तु गवर्नर का यह विशेष कर्तव्य रहेगा कि वह शान्ति भंग न होने दे, न्यून संख्यक समुदायों के हितों की रक्षा करे, राजकीय सेवकों की और उनके हकों की रक्षा करे, रियासतों की रक्षा करे एवं कानूनों को, कार्यरूप में लाने का प्रबन्ध करे। सूबे के ऐसे हिस्सों का जो खास कारणों से नये विधान के अन्तर्गत नहीं रखे गये, गवर्नर ही स्वयं प्रबन्ध करेगा।

मद्रास प्रान्त को छोड़ कर अन्य प्रान्त कमिश्नरियों में विभक्त हैं जिसके प्रधान को कमिश्नर कहते हैं। कमिश्नरियाँ ज़िलों में बटी हैं, ज़िले तहसीलों में और हर एक तहसील में कई गाँव रहते हैं। ज़िले के शासक को कहीं कहीं कलेक्टर और कहीं डिप्टी कमिश्नर कहते हैं। तहसील का प्रबंध तथा देख-रेख तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार करते हैं और इनकी मदद गाँवों के कोटवार, पटेल आदि करते हैं। इस प्रकार प्रान्तीय शासनयंत्र संगठित है।

तीसरा अध्याय

भारतीय व्यवस्थापिका सभा

आधुनिक व्यवस्थापिका सभा की जननी गवर्नर जनरल की वह काउन्सिल है जो सन् १८३३ के एक्ट के अनुसार निर्माण की गई थी। सन् १८३३ के पूर्व प्रत्येक प्रान्त में गवर्नर की कार्यकारिणी समितियाँ थीं जिन्हें अपने प्रान्त के लिए क़ानून भी बनाने का अधिकार था। १८३३ के पश्चात् समस्त ब्रिटिश भारत के लिए क़ानून बनाने का अधिकार काउन्सिल सहित गवर्नर जनरल को दे दिया गया। गवर्नर जनरल की इस काउन्सिल के सदस्यों की संख्या ४ रखी गई। इस समय से प्रान्तीय गवर्नर और उनकी कार्यकारिणी समिति से क़ानून बनाने के अधिकार ले लिये गये। प्रान्तीय कार्यकारिणी समितियाँ केवल प्रबंध कारिणी ही रह गई। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति शासन प्रबंध तथा क़ानून बनाना, दोनों कार्य करने लगी। कुछ ही वर्षों के उपरान्त सन् १८५३ में गवर्नर जनरल की काउन्सिल में ६ व्यक्ति और बढ़ाये गये*, जिनका कर्तव्य केवल क़ानून बनाने में गवर्नर जनरल की सहायता करना था।

सन् १८६१ में पार्लमेंट में एक काउन्सिल एक्ट पास कर १८५३

---

*नवीन ६ सदस्य इस प्रकार थे—बंगाल सुप्रीम कोर्ट का चीफ़ जस्टिस, १ जज, तथा बंबई, मद्रास, बंगाल और आगरा प्रांत की सरकार द्वारा नामज़द प्रत्येक प्रांत से एक एक सदस्य।

के प्रबंध के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। १८६१ का काउन्सिल एक्ट बहुत महत्त्व पूर्ण है। इसी समय से भारतीय शासन संबंधी सुधार (Constitutional Reforms) का आरंभ समझना चाहिए।

१८६१ के एक्ट ने क़ानून बनाने वाली सभाओं में ग़ैरसरकारी (Non Official) व्यक्तियों को भी सदस्य नियुक्त करने का नियम बनाया। देश के लिए क़ानून बनाने वाली सभा में देश के प्रतिनिधियों को स्थान दे कर देश की सम्मति प्राप्त करने का सिद्धान्त इसी समय से स्वीकृत हुआ। सन् १८६१ के पूर्व गवर्नर जनरल क़ानून बनाने में केवल अपनी कार्यकारिणी समिति तथा नामज़द किये हुए सरकारी अफ़सरों की ही राय लिया करते थे। कानून व्यवस्था करते समय हिन्दुस्थानियों के क़ानून के प्रति दृष्टिकोण को सामने लाने का कोई प्रयत्न न किया गया था। समिति के सदस्य विदेशी होने के कारण भारत के आचार-विचार, जाति संबंधी प्रश्न तथा अन्यान्य प्रथाओं से अनभिज्ञ रहते थे। वे इंग्लैंड के क़ानूनों तथा वहाँ की प्रथाओं में ही पले थे अतएव भारत के लिए क़ानून बनाने में वे अपने देश के ही रीति रिवाजों का आधार लेते थे। इंग्लैंड तथा हिन्दुस्थान के रहन-सहन, रीति रस्म, सामाजिक, धार्मिक आदि विचारों तथा संगठन में बड़ी असमानता होने के कारण उनके बनाये हुए क़ानून कभी कभी ऐसे बन जाते थे जो भारतीय दृष्टिकोण के अनुकूल न होते थे। अतएव देश में असंतोष बढ़ जाता था और शासन प्रबंध में कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थीं। इन बातों का अनुभव करके सरकार ने क़ानून व्यवस्था में भारतीय दृष्टिकोण का समावेश करने का प्रयत्न किया। इसी अभिप्राय से ही **क़ानून बनाने में ग़ैर सरकारी व्यक्तियों की सहायता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया।**

इसी समय से एक दूसरा महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त **शासन प्रबंध तथा व्यवस्थापिका सभा के कार्यों का पृथक्करण माना गया।** क़ानून बनाना

और प्रबंध करना दोनों मुख्य किन्तु भिन्न कार्य हैं। एक ही संस्था या व्यक्ति यदि क़ानून भी बनाये और प्रबंध भी करे तो राज्य संचालन सुव्यवस्थित तथा निष्पक्ष न होगा। प्रबंधकर्ता का मुख्य कार्य शासन प्रबंध करना ही है। अतएव वह क़ानून बनाने में भी प्रबंध कार्य को ही प्रधान समझकर उसकी ओर विशेष ध्यान रखेगा न कि प्रजा-हित की ओर। किन्तु क़ानून बनाने का मुख्य उद्देश्य प्रजा-हित ही है। क़ानून देश के हित के लिये, देशवासियों के सुख तथा अधिकारों के लिये ही बनाना उचित है। इसी कारण शासन प्रबंध के कार्यों से व्यवस्थापिका सभा के कार्यों को पृथक् करना उचित समझा गया।

अब यह विचारणीय है कि सन् १८६१ के एक्ट ने उपरोक्त दो सिद्धान्तों को कहाँ तक निबाहा, और क्या परिवर्तन किये।

सन् १८६१ के एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ४ से ५ कर दी गई। क़ानून बनाने में सहायता देने के लिए ६ के स्थान पर १२ सदस्य नियत किये गये जिनमें से कम से कम आधे सदस्य ग़ैर सरकारी होते थे। इनकी अवधि २ वर्ष निश्चित की गई। गवर्नर जनरल को ही इन सदस्यों को नामज़द करने का अधिकार दिया गया। जिस प्रान्त में इस व्यवस्थापिका सभा की बैठक होती उसका गवर्नर या लेफ़्टनेन्ट गवर्नर भी इसमें सम्मिलित किया जाता था। १८६१ के एक्ट ने मद्रास और बंबई के गवर्नरों तथा उनकी कार्यकारिणी समिति को अपने प्रान्त के लिए क़ानून बनाने के अधिकार पुनः दे दिये, जो सन् १८३३ के एक्ट के अनुसार छीन लिये गये थे। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को बंगाल तथा लेफ़्टनेन्ट गवर्नर के आधीन अन्य प्रान्तों में भी व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया।

सन् १८६१ के एक्ट के पास हो जाने के पश्चात् गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका सभा में कार्यकारिणी समिति के अतिरिक्त १२ नये सदस्य

नामज़द हुए। ग़ैरसरकारी सदस्य की हैसियत से कई हिन्दुस्थानियों को भी इस व्यवस्थापिका सभा में स्थान मिला तथा इन्हें क़ानून के विषय में हिन्दुस्थानियों के दृष्टिकोण से आलोचना करने का भी अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु इस व्यवस्थापिका सभा के अधिकार बहुत ही संकुचित थे और इनमें सरकारी सदस्यों की ही बहुसंख्या थी। व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास किया गया कोई भी मसविदा (Bill) बिना गवर्नर जनरल की स्वीकृति के क़ानून नहीं बन सकता था। सम्राज्ञी गवर्नर जनरल तथा व्यवस्थापिका सभा के एक्ट को रद्द भी कर सकती थी। यह सभा, मालगुज़ारी, कर्ज़, धर्म, फ़ौज या परराष्ट्र से संबंध रखता हुआ कोई भी मसविदा गवर्नर जनरल की अनुमति बिना, नहीं पेश कर सकती थी। सभा के सदस्यों को शासन प्रबंध संबंधी प्रश्न पूछने का या निवेदन पत्र आदि लेने या उन पर बहस करने का कोई भी अधिकार न था। इस तरह व्यवस्थापिका सभा के नामज़द सदस्यों को उन मामलों में जो उनके सामने उपस्थित होते थे, केवल राय देने या उनकी आलोचना करने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी समिति ही क़ानून बनाने में प्रधान थी।

१८६१ के एक्ट के अनुसार बंबई और मद्रास की व्यवस्थापिका सभा में कार्यकारिणी समिति के सदस्यों के अतिरिक्त एक एडवोकेट जनरल तथा कम से कम ४ और अधिक से अधिक ८ सदस्य नामज़द करने का अधिकार गवर्नर को दे दिया गया। इनमें से कम से कम आधे सदस्य ग़ैर सरकारी रखे गये। प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा प्रान्तीय मामलों से संबंध रखने वाले क़ानून बना सकती थी। किंतु कर्ज़, मालगुज़ारी, सिक्के, डाक, तार तथा आवागमन, ताज़ीरात हिन्द, ज़ाप्ता फ़ौजदारी को बदलने या धार्मिक, फ़ौजी, परदेशीय, कापी राइट आदि विषयों से संबंध रखने वाले मसविदे बिना गवर्नर जनरल से अनुमति लिए प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में पेश नहीं हो सकते थे। गवर्नर जनरल इनके क़ानूनों

को रद्द भी कर सकता था। इसी प्रकार की व्यवस्थापिका सभायें बंगाल, यू० पी०, पंजाब और बर्मा में क्रमशः १८६२, १८८६, १८९७ में बनीं।

१८६१ के एक्ट ने यद्यपि क़ानून निर्माण और शासन प्रबंध कार्यों को पृथक् करने तथा क़ानून बनाने में ग़ैर सरकारी सदस्यों को शामिल करने के उपरोक्त **दो सिद्धान्तों** को स्वीकार कर लिया किन्तु व्यवस्थापिका सभाओं का क्षेत्र संकुचित ही रहा। हिन्दुस्थानियों की संख्या तथा सदस्यों के अधिकार भी बहुत कम थे। ज्यों ज्यों समय बीतता गया व्यवस्थापिका सभाओं को बढ़ाना तथा उनके अधिकारों की वृद्धि करना आवश्यक समझा जाने लगा। सन् १८९२ में पुनः एक महत्त्वपूर्ण काउन्सिल एक्ट पास हुआ।

सन् १८६१ से ९२ तक देश में अनेक परिवर्तन हुए। शिक्षा का प्रचार बढ़ने से पढ़े लिखे व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाती थी। आवा-गमन के अनेकों नये सुभीते हो जाने से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान आसानी से आने-जाने लगे। भारत में समाचार पत्र पत्रिकाओं आदि की भी संख्या बढ़ गई। बहुत से हिन्दुस्थानी यूरोप, अमेरिका आदि विदेशों की सैर कर आये। इनके विचारों पर पाश्चात्य देशों का बहुत प्रभाव पड़ा। इन सब बातों से देश में राष्ट्रीयता के भावों की जाग्रति हुई। १८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य कई सोसाइटियाँ भी बनीं। इन संस्थाओं ने सुधारों के लिए आवाज़ उठाई। भारतीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या बढ़ाने एवं उसमें जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की बहुसंख्या रखने के लिए आन्दोलन मचा। यू० पी० और पंजाब प्रान्त में भी व्यवस्थापिका स्थापित करने की माँग हुई। व्यवस्थापिका सभाओं के अधिकारों तथा उनके सदस्यों को सरकार से शासन संबंधी मामलों पर प्रश्न करने का हक़ प्राप्त होने के लिए भी इन संस्थाओं ने आन्दोलन किया। लार्ड

उनको पूरा करने का प्रयत्न १८९२ में किया गया। अखिल भारतीय कांग्रेस की भी प्रायः यही माँगें थीं। यह सत्य है कि सुधार बहुत ही संकीर्ण रूप से हुए। देश को इससे अधिक सुधारों की आशा थी। व्यवस्थापिका सभाओं में ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या में इस सुधार के कारण कोई विशेप वृद्धि नहीं हुई।

शिक्षित वर्ग चाहता था कि व्यवस्थापिका सभा में जनता द्वारा चुने हुए सदस्यों की संख्या सरकार द्वारा चुने हुए सदस्यों से अधिक हो। वे सभा के अधिकार भी बढ़वाना चाहते थे। वे चाहते थे कि शासन यंत्र में भारतीयों को अधिक से अधिक स्थान मिले और वे ऊँचे ऊँचे पदों पर भी नियत किये जायँ। अतएव देश में अशांति फैलती ही रही। १९०९ ईस्वी तक शासन संबंधी कई परिवर्तन हुए। इस समय की नीति केन्द्रीय-करण (Policy of Centralisation) की थी। बंग-भंग के कारण भारतीय कांग्रेस का आन्दोलन और भी बढ़ा। रूस पर जापान की विजय होने के कारण भारतियों में जातीयता एवं आत्मगौरव की लहरें उठने लगीं। देश में राष्ट्रीयता के भावों की वृद्धि हो रही थी। कांग्रेस के दो दल हो गये—एक नरम दल (Moderates) और दूसरा गरम दल (Extremists)। बंगाल में आतंकवादियों और क्रान्तिकारियों (Terrorists & Anarchist) के दल की भी वृद्धि हुई। इन्हीं दिनों में मुसल्मानों ने भी अपना दल 'मुसलिम लीग' नाम से अलग क़ायम किया। सन् १९०६ में कांग्रेस ने स्वराज्य ही अपना लक्ष्य घोपित किया। इधर मुसल्मानों ने वायसराय लार्ड मिन्टो के पास एक डेपुटेशन ले जाकर प्रार्थना की। वे मुसल्मानों के लिए पृथक् निर्वाचन तथा कम संख्या में होने के कारण कुछ विशेप सुविधाएँ चाहते थे। इन्हीं सब कारणों से पार्लमेंट ने सन् १९०९ के मई मास में एक एक्ट बनाया जो १५ नवम्बर से जारी किया गया। इन सुधारों को 'मिन्टो मार्ले रिफ़ार्म्स' (Minto Morley Reforms) कहते हैं, क्योंकि उस समय लार्ड मिन्टो

भारत के वायसराय थे और लार्ड मार्ले भारत सचिव थे। सन् १८९२ के एक्ट से संख्या की वृद्धि अवश्य हुई थी। केन्द्रीय सभा में पहिले १० सदस्य थे जो सन् ९२ के एक्ट से १६ कर दिये गये थे। सन् १९०९ के एक्ट ने **१६ के स्थान पर** ६० सदस्य रखे। यह महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि संख्या की वृद्धि हो जाने से देश की अन्यान्य संस्थाओं तथा जातियों को भी हिस्सा मिलने लगा और अब अधिक संख्या में प्रतिनिधि आने लगे। किन्तु इस समय भी ग़ैर सरकारी सदस्यों की बहु संख्या न हुई।

सन् १९०९ का काउंसिल एक्ट—सन् १९०९ के एक्ट के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के ६० सदस्यों में से २५ निर्दिष्ट संस्थाओं द्वारा और ३५ गवर्नर जनरल द्वारा चुने जाने लगे। गवर्नर जनरल द्वारा नियत किये हुए सदस्यों में से २८ से अधिक सरकारी नौकर नहीं हो सकते थे। इस हिसाब से यद्यपि ग़ैर-सरकारी सदस्यों की संख्या देखने में सरकारी सदस्यों से अधिक थी किन्तु गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों के होने से बहुसंख्या सरकारी सदस्यों की ही रही। इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या में भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यों के अतिरिक्त बड़े प्रान्तों के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ५० तथा छोटे प्रान्तों की ३० रखी गई। प्रान्तीय सभाओं की विशेषता यह थी कि इनके **ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या सरकारी सदस्यों से अधिक थी**। किन्तु केवल बंगाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में ग़ैर सरकारी नामज़द सदस्यों को मिलाकर सरकारी सदस्यों की संख्या ग़ैर सरकारी चुने हुए सदस्यों से अधिक हो जाती थी।

इस एक्ट की **विशेषता सदस्यों के चुनाव का रूप है**। १८९२ के एक्ट से ही चुनाव का सिद्धान्त आरंभ हो चुका था, किन्तु वह सीधा (Direct) जनता द्वारा न था वरन् संस्थाओं द्वारा होता था। इस एक्ट के अनुसार

गैर सरकारी सदस्यों के चुनाव में गवर्नर जनरल तथा गवर्नर की स्वीकृति की आवश्यकता जाती रही। वे **निर्दिष्ट संस्थाओं अथवा सीधे जनता द्वारा ही चुन कर भेजे जाने लगे।**

इस एक्ट के चुनाव की दूसरी विशेषता यह है कि चुनाव में सरकार ने **धार्मिक दृष्टिकोण को प्राधान्य दिया** जिससे चुनाव में **हिन्दू और मुसलमानों के भेद कर दिये गये जो कि पहिले कभी नहीं थे।** पहले हिन्दू और मुसलमान आदि मिलकर वोट देते थे किन्तु अब हिन्दू वोटर अपने प्रतिनिधि और मुसलमान वोटर अपने प्रतिनिधि चुनने लगे। मुसलमान सदस्यों और हिन्दू सदस्यों की संख्या भी निर्धारित कर दी गई। इसके अलावा ज़मींदारों के लिए भी सदस्य संख्या निर्धारित कर उनके लिए ख़ास निर्वाचक संघ (Constituencies) बनाये गये। इस प्रकार इस एक्ट के अनुसार भिन्न भिन्न संस्थाओं, जातियों तथा ज़मींदारों के लिए निर्वाचक संघ बनाये गये और उनके सदस्यों की संख्या निश्चित कर दी गई।

सन् १९०९ के एक्ट ने व्यवस्थापिका सभा को कुछ और अधिकार दे दिये। अब व्यवस्थापिका सभाओं को बजट के ऊपर केवल बहस ही नहीं किंतु **आय-व्यय के कुछ निश्चित मामलों में प्रस्ताव पेश करने और वोट देने के भी अधिकार मिल गये।** सन् १८९२ के एक्ट ने बजट की सब मद्दों (Items) पर बहस करने का अधिकार नहीं दिया था। १९०९ के एक्ट के अनुसार भी कुछ मामले जैसे फ़ौजी व्यय, आयात कर (Customs) पर बहस आदि का अधिकार नहीं मिला, किंतु प्रश्न करने का क्षेत्र पहले से निश्चय ही बढ़ गया।

इस एक्ट के अनुसार सार्वजनिक मामलों में बजट के ऊपर बहस करने के समय के अतिरिक्त, अन्य अवसरों पर भी **प्रस्ताव पेश करने का अधिकार सभा को मिल गया।** प्रस्ताव पेश करने का अधिकार (Right to move resolution) सभा को पहिले नहीं था। इन

बातों के अतिरिक्त सार्वजनिक मामलों पर प्रश्न करने के अधिकार में, जो १८९२ में प्राप्त हो चुका था, और भी सुविधायें प्राप्त हो गई। अब शासकों के कार्यों पर भी प्रश्न एवं आलोचना करने का अधिकार मिल गया। प्रश्नों के साथ **उपप्रश्न** (Supplementary Questions) करने का अधिकार इसी एक्ट के अनुसार मिला।

व्यवस्थापिका सभा के क़ानून निर्माण संबंधी अधिकार प्रायः वही रहे जो सन् १८६१ में थे।

सन् १९०९ के सुधारों से भारतीय शासन यंत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उत्तरदायी शासन (Responsible Government) या स्वराज्य संस्थापन (Self Govt.) इस एक्ट का लक्ष्य नहीं था। लार्ड मार्ले ने स्वयं इस बात को अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट कर दिया था। इन सुधारों ने केवल व्यवस्थापिका सभा के ही सदस्यों की संख्या बढ़ाई थी तथा उन्हें कुछ ज्यादः अधिकार दे दिये थे। १९०९ के सुधारों ने चुनाव के संबंध में धार्मिक मतभेद कर हिन्दू और मुसलमानों को पृथक् किया और जमींदारों को अलग से भी निर्वाचन का अधिकार दिया। मुसलमानों तथा जमींदारों के साथ ख़ास रियायत करने वाली सरकार की इस नीति से देश में असंतोष और मतभेद बहुत फैल गया। कोई भी दल इन सुधारों से पूर्णतया सन्तुष्ट न था। हाँ, मुसलमान अवश्य इन सुधारों से कुछ संतुष्ट थे। किंतु फिर भी भारत और इंग्लैंड दोनों देशों में इन सुधारों की तीव्र आलोचना हुई। नरम दल के नेता जैसे पं० मदन मोहन मालवीय, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि लोगों ने भी असंतोष प्रकट करते हुए इन सुधारों का विरोध किया। भारतीय, और एंग्लो इंडियन समाचारपत्रों, जैसे स्टेट्समैन, पायनियर आदि ने भी निराशा प्रकट की।

सन् १९१४ में यूरोपीय महायुद्ध आरंभ हो गया। इस युद्ध के समय पुनः जातीयता और अधिकारों की चर्चा ज़ोर से उठी। महायुद्ध में भारतवर्ष ने धन जन आदि से सरकार की पूरी मदद की इससे प्रसन्न होकर

सम्राट् ने भारतवासियों की माँगों पर विचार करने तथा उन्हें यथासंभव पूरा करने का एक प्रकार से वादा कर दिया। भारत का शिक्षित समाज अखिल भारतीय नेशनल कांग्रेस आदि संस्थायें स्वराज्य (Homerule) एवं औपनिवेशिक (Colonial) ढंग के राज्य (Dominion Status) की माँग करने लगीं । कांग्रेस आन्दोलन ने पुनः ज़ोर पकड़ा। हिन्दू, मुसलमान, नरम और गरम दल मिलकर एक स्वर से स्वराज्य माँगने लगे। आन्दोलन की उग्रता, आपत्तिकाल और माँगों के औचित्य का विचार करके एवं महायुद्ध में भारतीयों द्वारा किये हुए बलिदानों का ध्यान रख, उनसे प्रसन्न होकर सन् १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की। इस घोषणा में कहा गया कि सम्राट् की नीति **भारतवर्ष को स्वशासन और उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन के लिये क्रमशः तैयार करना है।** इसके लिए प्रत्येक विभाग में भारतीयों को अधिकाधिक शामिल किया जाय। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई मंज़िलें तय करनी पड़ेंगी। प्रत्येक मंजिल पर पहुँचने का समय और उसके साधन निर्दिष्ट करने का अधिकार ब्रिटेन और भारत की सरकार के हाथों में रहेगा, क्योंकि भारत की प्रजा के उत्कर्ष और समृद्धि का भार उनके ही ऊपर है। भारत के शासन संबंध में अभी तक ऐसी घोषणा नहीं हुई थी। इसका महत्त्व यह है कि सरकार ने भारतवासियों को उत्तरदायित्व पूर्ण स्वशासन देना स्वीकृत कर उनकी माँगों के औचित्य को स्वीकार कर लिया।

उपरोक्त घोषणा के पश्चात् भारत सचिव माननीय मान्टेग्यू भारत की परिस्थिति समझने तथा जाँचने के लिए भारत में आये। उन्होंने देश के नेताओं तथा अन्यान्य संस्थाओं एवं दलों के प्रधानों से और सरकारी अफ़सरों से मिलकर जाँच की। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी रिपोर्ट निकाली जिसे Montague Chemsford Report कहते हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटिश पार्लमेंट में एक बिल उपस्थित किया गया जो पास होने के बाद Government of India Act of 1919 कहलाया।

सन् १९१९ का एक्ट—सन् १९१९ के एक्ट ने महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। ऊपर कहा जा चुका है कि इस समय सरकार की नीति बदल गई थी और सरकार का लक्ष्य भारत में स्वशासन एवं उत्तरदायी शासन स्थापित करना ही गया था। अतएव १९१९ के द्वारा जो परिवर्तन हुए वे इसी लक्ष्य का ध्यान रख कर हुए।

पिछले परिच्छेदों में आपने पढ़ा होगा कि भारत का आधुनिक शासन यंत्र इसी एक्ट पर स्थित है। इस एक्ट की प्रधान विशेषता **प्रान्तों में द्विविध शासन 'डायर्की'** (Dyarchy) स्थापित करना है। प्रान्तीय सरकार के संगठन का वर्णन करते हुए पिछले परिच्छेदों में बताया जा चुका है कि प्रान्तों में कुछ विषयों का शासन प्रबंध गवर्नर अपनी कार्यकारिणी के साथ करता है और कुछ विषयों का शासन गवर्नर मंत्रियों द्वारा व्यवस्थापिका सभा के साथ करता है। प्रान्तों में मंत्री व्यवस्थापिका सभा के निकट उत्तरदायी हैं। इस तरह सरकार ने १९१९ के अनुसार **उत्तरदायी शासन** (Responsible Govt.) का आरंभ प्रान्तों से ही किया। अभी तक उत्तरदायी शासन की ओर सरकार का लक्ष्य ही न था। ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय सरकार में उत्तरदायी शासन का आरंभ नहीं किया गया यह केवल प्रान्त से ही निश्चित हद में ही आरंभ किया गया। सन् १९१९ के एक्ट द्वारा उत्तरदायी शासन का आरंभ ब्रिटिश काल के इतिहास में महत्त्वपूर्ण विशेष घटना है।

प्रान्तीय सरकारों के अधिकार धीरे धीरे बढ़ते ही जा रहे थे। उनकी जिम्मेदारी और कार्यक्षेत्र भी विस्तृत हो रहा था। केन्द्रीय सरकार ने उन्हें प्रान्तीय आय व्यय के भी कुछ अधिकार दे दिये थे। १९१९ के एक्ट ने साफ़ तौर से प्रान्तीय और केन्द्रीय विषय अलग कर दिये। अब प्रान्तीय तथा केन्द्रीय नियन्त्रण और आय व्यय स्पष्ट रूप से निर्धारित हो गये हैं।

भारतीय व्यवस्थापिका के संगठन में भी विशेष महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अभी तक केवल एक ही व्यवस्थापिका सभा थी। १९१९ के

एक्ट के अनुसार इंग्लैंड की तरह दो सभाएँ बनाई गई। ऊँची सभा (Upper House) को राज्यपरिषद (Council of State) कहते हैं, और दूसरी सभा या पुरानी व्यवस्थापिका सभा 'लेजिस्लेटिव असेंबली' (Legislative Assembly) कहलाती है। काउन्सिल ऑफ़ स्टेट या राज्य परिषद विद्या, सार्वजनिक कार्यों में अनुभव प्राप्त तथा उच्च समाज के प्रतिनिधित्व के लिए ही विशेष रूप से निर्माण की गई है। इसके सदस्यों की संख्या ६० रखी गई जिनमें से ३४ चुने हुए तथा २६ गवर्नर जनरल द्वारा नामजद किये जाते हैं। इन नामजद सदस्यों में से २० से अधिक सरकारी सदस्य नहीं हो सकते। चुनाव का अधिकार माली हालत के अनुसार (Property Qualification) ही रखा गया है; अतएव धनाढ्य व्यक्ति ही मत दे सकते हैं। राज्यपरिषद की अवधि का समय ५ वर्ष है।

१९१९ के एक्ट द्वारा व्यवस्थापिका सभा में ६० से संख्या बढ़ाकर १४४ कर दी गई जिनमें से १०४* जनता द्वारा चुने हुए ग़ैर सरकारी प्रतिनिधि तथा ४० नामज़द सदस्य हैं। चुनाव के संबंध में १९०९ के एक्ट के ही अनुसार धर्म और जाति के सिद्धान्त पर निर्वाचक संघ बनाये गये हैं। ४० सदस्यों में से २६ से अधिक सरकारी सदस्य नहीं हो सकते। वायसराय कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को किसी एक सभा का सदस्य नामज़द कर देता है। कार्यकारिणी का वह सदस्य जो लेजिस्लेटिव असेंबली में नामजद किया गया हो काउन्सिल ऑफ़ स्टेट का सदस्य नहीं हो सकता। वह केवल लेजिस्लेटिव असेंबली ही में वोट

---

* १०४ निर्वाचित में से ५२ सार्वजनिक या ग़ैर मुसलमान, ३० मुसलमान, २ सिक्ख, ७ जमींदार, ९ यूरोपियन, ४ व्यापारिक मंडल (Indian Chamber of Commerce)

देने का अधिकारी है। काउन्सिल ऑफ़ स्टेट में यद्यपि वह वोट नहीं दे सकता किंतु वह उसमें जाकर अपने विचार प्रकट कर सकता है। इसी प्रकार जो काउन्सिल ऑफ़ स्टेट का सदस्य नियुक्त हो चुका है वह लेजिस्लेटिव असेंबली में केवल भाषण दे सकता है, वोट नहीं। असेंबली की अवधि साधारणतया ३ वर्ष रखी गई है किन्तु उसे आवश्यकतानुसार गवर्नर जनरल बढ़ा या घटा भी सकता है। इस प्रकार **भारतीय व्यवस्थापिका की दोनों सभाओं में निर्वाचित सदस्यों की बहुसंख्या रखी गई।** यह इस एक्ट की दूसरी विशेषता है।

प्रत्येक बड़े प्रान्त में जो गवर्नर के आधीन है केवल एक ही व्यवस्थापिका होती है यद्यपि केन्द्र में दो सभायें हैं।

इस एक्ट के द्वारा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई। पहिले कार्यकारिणी सदस्य के अतिरिक्त अधिक से अधिक ५० सदस्य रहते थे किन्तु अब जन संख्या के अनुसार ५३ से १३९ सदस्य हैं। एक्ट के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं में कम से कम ७० प्रतिशत ग़ैर सरकारी सदस्य रखे गये।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं की अवधि भी साधारणतया ३ वर्ष के लिये ही रखी गई किन्तु गवर्नर को अवधि बढ़ाने या घटाने का अधिकार है।

राज्यपरिषद (Council of State) के अधिकार भी लगभग वही हैं जो लेजिस्लेटिव असेंबली के हैं यद्यपि महत्त्व लेजिस्लेटिव असेंबली का ही अधिक है। असेंबली के अधिकारों में १९१९ के एक्ट द्वारा कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हाँ, विदेश जाने और विदेशी माल देश में आने के 'कर' के संबंध में कुछ अधिक अधिकार अवश्य मिल गये। अब व्यवस्थापिका सभा को भारत की आयात-निर्यात कर नीति, (Tariff-Policy) इंग्लैंड तथा ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापार के साथ ख़ास रियायत रखते हुए, निर्धारित करने का हक मिल गया है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के अधिकारों में द्विविध शासन के आरंभ होने से विशेष परिवर्तन हो गया है। प्रान्तीय लेजिस्लेटिव काउंसिल हस्तांतरित (Transferred) प्रान्तीय मामलों में क़ानून बनाती है। गवर्नर उसी व्यक्ति को मंत्री बनाता है जिसके अनुयायी प्रान्तीय लेजिस्लेटिव काउंसिल में बहुतायत से होते हैं। मंत्री काउंसिल के निकट उत्तरदायी होते हैं। सन् १९१९ के एक्ट में १९१७ की घोषणा के आधार पर एक बात यह रखी गई कि दस वर्ष बाद ब्रिटिश पार्लमेंट भारतीयों की परिस्थिति जांचने के लिये एक कमीशन नियत करेगी। इसी के अनुसार सन् १९२७ में साइमन कमीशन का आगमन हुआ। कई कारणों से नियत समय के दो वर्ष पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने इसकी नियुक्ति कर दी।

१९१९ के एक्ट ने यद्यपि कुछ अंशों में उत्तरदायी शासन (Responsible) आरंभ कर दिया, तथापि प्रजा इन सुधारों से संतुष्ट न हुई। प्रजा को अधिक आशायें थीं। एक्ट ने उन्हें बहुत ही कम सुधार दिये। नरम दल वालों ने असंतोष दर्शाते हुए भी सुधारों को स्वीकार कर लिया किन्तु गरमदल वाले चुप न रह सके। अतएव राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ता ही रहा। सन् १९२१ में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन ने बहुत ज़ोर पकड़ा। सन् १९१९ के सुधार भी जारी न किये जा सके। किन्तु अंत में सन् १९२१ में नई व्यवस्थानुकूल शासन प्रणाली आरंभ हुई।

जनता द्वारा निर्वाचन का क्रमविकास—उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि भारतीय व्यवस्थापिका का आरंभ १८५३ से हुआ। उस समय ६ सदस्य नामज़द हुए। १८६१ के एक्ट से १२ में से ६ ग़ैर सरकारी सदस्य नियुक्त हुए। १८९२ के एक्ट के अनुसार

---

*इसका विस्तृत वर्णन अगले परिच्छेद में देखिए।

१६ में से १० ग़ैर सरकारी थे जिनमें ५ प्रतिनिधि रूप से जाने लगे। १९०९ के एक्ट से ६० में से २५, तथा १९१९ के एक्ट से १४४ में से १०४ ग़ैर सरकारी सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होकर जाने लगे। इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में भी धीरे धीरे प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती गई। १९१९ के एक्ट के अनुसार आजकल ७०% जनता द्वारा चुने हुए सदस्य रहते हैं।*

प्रश्न करने, प्रस्ताव एवं बिल पेश करने के अधिकार—शासन संबंधी सार्वजनिक कार्यों पर प्रश्न करने का अधिकार सन् १८९२ के एक्ट से मिला। १९०९ में उपप्रश्न (Supplementary Questions) करने का अधिकार केवल प्रश्नकर्त्ता को ही मिला। प्रश्न की सूचना कुछ दिन पहिले दे देनी पड़ती है। नियत समय पर उन प्रश्न का उत्तर कार्य-कारिणी का सदस्य या मंत्री या उनके सेक्रेटरी देते हैं। १९१९ के एक्ट से कोई भी सदस्य प्रश्न पर उपप्रश्न कर सकता है।

प्रश्न पूछने के अधिकार के साथ ही प्रस्ताव करने का भी अधिकार १९०९ के एक्ट से ही मिला। बजट के ऊपर कोई भी सदस्य उन मद्दोंके संबंध में, जिनपर बहस करने का व्यवस्थापिका को अधिकार है, १५ दिन पूर्व सूचना दे कर प्रस्ताव कर सकता है। सार्वजनिक विषयों पर भी इसी प्रकार प्रस्ताव पेश हो सकते हैं, और वोट भी लिया जा सकता है। किन्तु इन अधिकारों पर कुछ बंधन भी है। सभापति को प्रस्ताव मंजूर करने या नामंजूर करने का अधिकार है।

क़ानून का मसविदा याने बिल पेश करने का अधिकार सन् १९१९ के एक्ट के द्वारा केवल केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं के ही सदस्यों को दिया गया। इस प्रकार के बिल को Private members bill

---

*सदस्य संख्या का विस्तृत वर्णन परिशिष्ट में देखिए।

सकते हैं। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को यह अधिकार नहीं है। वे केवल प्रस्ताव ही पेश कर सकते हैं। सन् १९२२ से सन् २८ तक इस प्रकार के ९५ बिल केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में पेश हुए जिनमें केवल १५ पास हो कर क़ानून बने। बिल उपस्थित करने में भी पहले नोटिस देना पड़ता है। सदस्य केवल उन्हीं विषयों पर बिल पेश कर सकते हैं जिनके विषय में व्यवस्थापिका को क़ानून बनाने का अधिकार है।

उत्तरदायी शासन तथा प्रान्तों में डायर्की—यह बताया जा चुका है कि सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रान्तों में द्विविध शासन स्थापित हुआ और इसी रूप में उत्तरदायी शासन का आरंभ भारतवर्ष के ब्रिटिश काल के इतिहास में आरंभ हुआ।

सन् १८६१ के एक्ट के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं को प्रान्त के लिये क़ानून बनाने का अधिकार मिल गया था। फिर भी इन्हें कुछ मामलों में गवर्नर जनरल की स्वीकृति पहले ही ले लेनी पड़ती थी और हर एक क़ानून के बन जाने के बाद तो गवर्नर जनरल की मंजूरी आवश्यक थी। केन्द्रीय सभा को समस्त देश के लिये क़ानून बनाने का अधिकार था। प्रान्तीय सरकारें जो क़ानून चाहती थीं उनकी सूचना केन्द्रीय सरकार को दे देती थीं। वह या तो स्वयं क़ानून बनाती थी या प्रान्तीय सभा को बनाने की मंजूरी दे देती थी। धीरे धीरे यह एक प्रथा सी हो गई और केन्द्रीय सरकार ने उन विषयों पर जो केवल प्रान्त से ही संबंध रखते थे हस्तक्षेप करना प्रायः बंद कर दिया। सन् १९१९ के एक्ट द्वारा प्रान्तों को अपने क्षेत्र में स्वतंत्रता दे दी गई। प्रान्त की व्यवस्थापिका सभाएँ अपने प्रान्त के लिये क़ानून बनाने लगीं। किन्तु गवर्नर जनरल को यह अधिकार रहा कि वह किसी विशेष कारण से प्रान्तीय क़ानून को रद्द कर दे। १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रान्तों से ही उत्तरदायी शासन आरंभ किया गया है। व्यवस्थापिका सभा के ग़ैर सरकारी सदस्यों में से ही

गवर्नर मंत्री चुन कर नियत करता है, जो व्यवस्थापिका सभा के निकट उत्तरदायी होते हुए अपने विभाग का कार्य देखते हैं*।

ऊपर लिखा जा चुका है कि सन् १९३५ के एक्ट द्वारा प्रान्तों (सूबों) में उत्तरदायी शासन की प्रणाली (Provincial autonomy) की स्थापना अधिकांश में कर दी जायगी।† इसके अलावा मद्रास, बम्बई, बंगाल, यू० पी०, बिहार और आसाम में केन्द्रिक विधान के अनुसार दो व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना होगी। अन्य सूबों में यथा पूर्व एक ही व्यवस्थापिका सभा रहेगी जो (Legislative Assembly) कहलावेगी। जहाँ दो सभायें होंगी वहाँ एक का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली और दूसरी का लेजिस्लेटिव काउन्सिल होगा। लेजिस्लेटिव असेम्बली में सदस्य धर्म और जाति के अनुसार चुने जायँगे—जैसे मुसलमान, सिख, देशी ईसाई, एँग्लोइन्डियन, यूरोपियन, दलित समुदाय। लेजिस्लेटिव काउन्सिल में सदस्यों की संख्या कम होने के कारण सब हितों के प्रतिनिधियों का पहुँचना कठिन है। अतएव गवर्नर को अधिकार दे दिया गया है कि मत विशेष की कमी को स्वयं कुछ सदस्यों की नियुक्ति करके पूरी करदे। उसमें स्त्रियों को भी स्थान दिया जायगा।

लेजिस्लेटिव असेम्बली की अवधि तीन वर्ष की होगी, किन्तु लेजिस्लेटिव काउन्सिल भंग न की जायगी। उसके तिहाई सदस्य तीन वर्ष पूरे होनेपर हट जाया करेंगे और उनके स्थान पर दूसरे आ जायेंगे।

---

* प्रान्तीय विषय तथा मन्त्रियों द्वारा शासन प्रबन्ध का विस्तृत वर्णन चौथे अध्याय में देखिये।

† सर ओटो नीमर कमीशन रिपोर्ट ने पहली अप्रेल १९३७ में प्रान्तों में नवीन शासन प्रणाली आरम्भ करने का मत प्रकट किया है। इसे भारत सचिव ने स्वीकार कर लिया है।

सूबे की व्यवस्थापिका सभाओं में जो बिल पास होंगे वे गवर्नर की स्वीकृति के लिए रक्खे जायँगे। वह चाहे स्वीकृति दे चाहे न दे और चाहे तो गवर्नर जनरल के पास स्वीकृति के लिए भेजदे। गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिलने पर भी सम्राट् को अधिकार है कि बारह महीने के भीतर उसे रद करदे।

चुनाव के नियम—ऊपर कहा जा चुका है कि चुनाव का सिद्धांत सन् १८९२ के सुधारों ने उपस्थित किया था। एक्ट में यद्यपि चुनाव के विषय में कोई धारा नहीं थी किन्तु सरकार का अभिप्राय Indirect Election द्वारा ही काउंसिलों के ग़ैर सरकारी मेंबरों को नियत करना था। अतएव १८९२ के क़ायदों के अनुसार म्यूनिसिपेलिटी, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड आदि लोकल संस्थाओं के ग़ैर सरकारी सदस्यों को प्रान्तीय सभा के लिये प्रतिनिधि चुनने का हक़ दे दिया गया था। इन चुने हुए प्रतिनिधियों के नाम सरकार की मंज़ूरी के लिये भेज दिये जाते थे। इसी प्रकार प्रान्तीय सभायें केन्द्रीय सभा के लिये चुनती थीं और उत्तीर्ण व्यक्तियों के नाम गवर्नर जनरल के पास भेजती थीं। मिन्टो मार्ले रिफ़ार्म्स ने खुल्लम खुल्ला 'जनता द्वारा चुनाव' (System of Direct Election) आरंभ किया। सन् १९०९ के सुधारों ने तीन प्रकार के निर्वाचक संघ बनाये (१) सार्वजनिक (General) जिनमें प्रान्तीय व्यवस्थापिका के या डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड म्यूनिसिपेलिटी आदि लोकल संस्थाओं के ग़ैर सरकारी सदस्य थे। (२) वर्ग विशेष (Class Electorates) जिनमें (अ) ज़मींदार (ब) मुसलमान निर्वाचक संघ तथा (३) ख़ास या विशेष निर्वाचक संघ (Special Electorates) जैसे यूनिवर्सिटी, चेम्बर आफ़ कामर्स, प्रेसीडेन्सी कारपोरेशन आदि थे इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के चुनाव के लिये भी व्यवस्था की गई। सन् १९१९ के एक्ट ने क़रीब ७३ लाख व्यक्तियों को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया था। यह संख्या भारत की जन संख्या का क़रीब $\frac{१}{३३}$ भाग है। इसीके अन्तर्गत

तीन लाख पन्द्रह हज़ार स्त्रियाँ भी थीं। १९३५ के सुधारों से वोटरों की संख्या तीन करोड़ पचास लाख हो जायगी जिनमें क़रीब ६० लाख स्त्रियाँ होंगी।

१९१९ के एक्ट के अनुसार निर्वाचक संघ पुराने ही प्रकार से रहे किन्तु कुछ जातियों को कहीं कहीं अलग निर्वाचन दे दिया गया। इसके अतिरिक्त चुनाव के लिये शहर और देहात का भी भेद कर दिया गया। चुनाव के संबंध में एक बात ध्यान देने की और है, प्रत्येक प्रान्त में वोटरों के नियम एक से नहीं हैं। किन्तु जो चुनाव में भाग नहीं ले सकते उनके नियम सब प्रान्तों में एक से है। ये व्यक्ति चुनाव में भाग नहीं ले सकते—(१) जो ब्रिटिश भारत के निवासी न हों (२) अदालत द्वारा पागल करार दिया गया हो (३) जिन्हें किसी फ़ौजदारी के अपराध (Criminal Offence) में ६ महीना या अधिक की सज़ा मिली हो वे ५ वर्ष तक वोट नहीं दे सकते (४) स्त्रियाँ (५) २१ वर्ष की अवस्था से कम व्यक्ति।[१] किन्तु प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को स्त्रियों तथा जो ब्रिटिश भारत के निवासी नहीं हैं उनको वोटर बनाने के नियम निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। इसके अनुसार प्रायः सब प्रान्तों में अब स्त्रियाँ भी वोट के अधिकार पा गई हैं। भारतीय व्यवस्थापिकाओं के लिये भी स्त्रियों को अधिकार प्राप्त हो चुका था, किन्तु १९३५ के सुधारों ने स्त्री वोटरों की संख्या बीस गुनी बढ़ा दी है।

काउंसिल आफ़ स्टेट (राज्यपरिषद)—इसके चुनाव के लिये वोट देने का अधिकार ऊँची आमदनी या धन पर है। वही व्यक्ति वोटर हो

---

[१] **१९३५ के सुधार ने** Federal Council of State **के सदस्य की अवस्था कम से कम तीस वर्ष की और** Federal Assembly **के सदस्य की अवस्था पच्चीस वर्ष निश्चित करदी है।**

सकता है जो १०,०००) से २०,०००)* की आमदनी पर इनकमटेक्स देता हो या कम से कम ७५०) से ५,०००) सालाना लगान देता हो। इसके अलावा सार्वजनिक कार्यों में अनुभव प्राप्त, म्यूनिसिपल कमेटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमेन, यूनिवर्सिटी सीनेट के सदस्य या जिन्हें सरकार द्वारा विद्वत्ता के लिये उपाधियाँ मिली हैं, सार्वजनिक निर्वाचक संघ (General Constituency) के वोटरों में अपना नाम लिखा सकते हैं।

भारतीय व्यवस्थापिका (Lagislative Assembly)—इसके चुनाव में मत देने का अधिकार उन्हीं को है जो (१) कम से कम १५) से २०) तक सालाना म्यूनिसिपेलिटी को कर देते हैं या (२) ऐसे मकान में रहते हैं या मकान के मालिक हैं जिनका १८०) सालाना किराया हो, या (३) कम से कम १०००) से ५०००) तक आमदनी पर इनकमटेक्स देते हों या (४) कम से कम ५०) से १५०) तक सालाना सरकारी लगान देते हैं। हर एक प्रान्त में एक सा नियम नहीं है। इसके अनुसार भारतवर्ष में वोटरों की पहले से संख्या बढ़ गई किन्तु फिर भी यह असेंबली के लिये केवल ४ % ही है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के लिये वोट देने का अधिकार—हर एक प्रान्त में भिन्न भिन्न नियम हैं। १९१९ के अनुसार सार्वजनिक निर्वाचक संघ (General Constituency) के लिये प्रायः ये थे—(१) चुनाव के कम से कम १२ माह पहिले उस स्थान का निवासी हो और (२) कम से कम (अ) ३)† सालाना म्यूनिसिपल टेक्स देता हो, या (ब) ३६)

---

* बंगाल, बिहार और उड़ीसा के मुसलमानों के लिये बहुत कम आमदनी रखी गई थी। पंजाब के मुसलमानों के लिये सबसे कम १०,०००) आमदनी पर टेक्स रखा गया।

† मध्यप्रदेश के भिन्न भिन्न जिलों में वार्षिक लगान या मालगुजारी ३०) से ५०) तक है।

वार्षिक किराये के मकान में रहता हो या (स) शहर में २०००)* पर इनकमटेक्स देता हो या गाँवों में १०) से ५०) तक सरकारी लगान* देता हो।

चूँकि हर एक सूबे की परिस्थिति में भेद है अतएव नए सुधार के कुछ नियमों में एक सूबे में दूसरे सूबे से भिन्नता भी है। जैसे, बम्बई में वही आदमी अपने निवास स्थान में साल में कम से कम १८० दिन रहा हो वही वोट दे सकेगा। किन्तु मद्रास में १२० दिन ही काफ़ी समझे गये। इसी प्रकार अन्य बातों में भी कुछ विभिन्नता है। नये सुधार (१९३५) में उन स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला है जिनके पास या तो निजी जायदाद है या जायदाद वालों की सधवा अथवा विधवा स्त्रियाँ हैं, या शिक्षिता हैं, या फौजी या पुलिस के अफ़सरों की स्त्रियाँ या माताएँ हैं।

एक जानने योग्य बात नए सुधारों में यह भी है कि पहले वोट देने का अधिकार अधिकांश में ग्राम वासियों के पक्ष में था किन्तु अब नगर निवासियों का पक्ष पहले की बनिस्बत अधिक मजबूत कर दिया गया है। इसका प्रभाव आगे चलकर महत्त्व पूर्ण होने की आशा है।

ज़मींदारों के लिये ५००) सालाना से ५०००) सालाना लगान का नियम है। यूनिवर्सिटी से हर एक स्नातक (Graduates) जिसे स्नातक हुए ७ वर्ष का समय बीत चुका है वोट देने का अधिकारी है। अन्य ख़ास संस्थाओं के सदस्यों को—जैसे चेम्बर आफ़ कामर्स, मिलमालिकों का एसोसियेशन आदि—भी अलग से सदस्य चुनने का अधिकार मिला।‡

---

*कुछ वर्षों से १०००) सालाना आमदनी पर इनकमटेक्स लगने लगा था अतएव चुनाव में कहीं कहीं उन्हें भी अधिकार मिल गये।

‡ Percentage of people enfranchised.

चुनाव के लिये उम्मीदवार होने के लिये भी कुछ नियम हैं। उम्मेदवार का नाम वहाँ की वोटर लिस्ट में अवश्य होना चाहिए* जहाँ से वह खड़ा रहा हो तथा उनकी उम्र २५ वर्ष से अधिक हो। इस स्थान पर १९३५ के एक्ट द्वारा चुनाव संबंधी होने वाले परिवर्तन का उल्लेख अनुचित न होगा।

ऊपर लिखा जा चुका है कि भारतीय फ़ेडरेशन स्थापित होने पर भी केन्द्र में दो व्यवस्थापिका सभायें रहेंगी। उस समय तक आधुनिक भारतीय व्यवस्थापिकाएँ ही कार्य करेंगी। भारतीय फ़ेडरेशन में सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार 'काउंसिल आफ़ स्टेट' तथा 'फ़ेडरल असेंबली स्थापित होंगी।

फ़ेडरल काउंसिल आफ़ स्टेट—इसमें ब्रिटिश भारत के १५६ प्रतिनिधि और देशी रियासतों के अधिक से अधिक १०४ प्रतिनिध रहेंगे। यह स्थायी होगी; इसे भंग करने का अधिकार गवर्नर जनरल को नहीं रहेगा। विधान के अनुसार इसके एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद हट जावेंगे जिनकी पूर्ति नवीन निर्वाचन द्वारा होगी। अतएव सर्व प्रथम ब्रिटिश भारत के एक तिहाई प्रतिनिधि ३ वर्ष के लिये, एक तिहाई ६ वर्ष के लिये और एक तिहाई ९ वर्ष के लिये चुने जावेंगे।

काउंसिल आफ़ स्टेट की जनरल, सिख वं मुस्लिम सीटके निर्वाचन के हेतु गवर्नर प्रान्त तथा चीफ़ कमिश्नर प्रान्त अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में (Territorial Constituencies) में बाँट दिये जावेंगे। यह निश्चय कर दिया गया है कि सिख सदस्य के लिये केवल सिख वोटर और मुस्लिम सदस्य के लिये केवल मुस्लिम वोटर ही वोट दे सकेंगे। इसी प्रकार दलित जाति (Depressed Class) के सदस्यों को चुनने का

---

*Residential **(निवास) नियम केवल बंबई, पंजाब और सी० पी० में है।**

अधिकार केवल उसी जाति के वोटरों को होगा। काउंसिल आफ़ स्टेट की जनरल सीट के लिये होने वाले निर्वाचन में कोई यूरोपियन, एंग्लो इंडियन या भारतीय ईसाई भी वोट न दे सकेगा।

सन् १९३५ के एक्ट में फ़ेडरल काउंसिल आफ़ स्टेट के निर्वाचकों की योग्यता का केवल एक साधारण संकेत है। इसका विस्तृत रूप से बाद में निर्णय होगा। किन्तु इसके निर्वाचन की योग्यता का एक प्रधान आधार संपत्ति होगी।

फेडरल असेंबली—इसमें ब्रिटिश भारत के २५० प्रतिनिधि होंगे। इनका चुनाव सिंगल ट्रांसफ़रेवल वोट द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation by means of the Single transferable vote) के सिद्धान्तानुसार होगा। किसी भी सूबे के लिये फ़ेडरल असेंबली में जितनी सीटें निर्धारित की गई हैं उनके लिये जनरल, सिख और मुस्लिम प्रतिनिधि चुनने का अधिकार क्रमशः उन्हीं लोगों को होगा जो प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेंबली में जनरल, सिख एवं मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र की ओर से मेम्बर चुने जा चुके होंगे।

दलित जाति के प्रतिनिधित्व के लिये १९ सीटें सुरक्षित की गई हैं। पूना पैक्ट के अनुसार १९३५ के एक्ट में इनके निर्वाचन की ख़ास व्यवस्था की गई है। प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेंबली में प्रतिनिधि भेजने के लिये दलित जाति के वोटर पहले प्रत्येक सीट के लिये ४ सदस्य चुनेंगे। ये ही ४, प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेंबली के उम्मेदवार हो सकेंगे। इनमें जिसको सबसे अधिक वोट मिलेंगे वही प्रान्तीय व्यवस्थापिका का सदस्य हो सकेगा। फ़ेडरल असेंबली के लिये, प्रान्तीय असेंबली के दलित जाति के सदस्य पहले प्रत्येक सीट के लिये ४ उम्मेदवार चुनेंगे। ये ही फ़ेडरल असेंबली के उम्मेदवार हो सकेंगे, और जिस प्रकार जनरल सीटों के लिये अन्य लोग सिंगल ट्रांसफ़रेवल वोट द्वारा चुने जावेंगे उसी प्रकार दलित जाति के प्रतिनिधियों का भी चुनाव होगा।

फ़ेडरल असेंबली में महिलाओं के लिये ९ सीटें सुरक्षित हैं। ब्रिटिश भारत की महिला प्रतिनिधियों के लिये महिलाओं का एक निर्वाचक संघ (Electoral College) स्थापित किया जायगा जिसमें प्रान्तीय असेंबली की महिला सदस्य होंगी। इस निर्वाचक संघ को ही महिला सदस्य चुनने का अधिकार होगा। नियमानुसार फ़ेडरल असेंबली में कम से कम दो मुस्लिम और एक ईसाई महिला का आना अनिवार्य है।

फ़ेडरल असेंबली के एंग्लोइंडियन, ईसाई, और यूरोपीयन प्रतिनिधियों के लिये भी क्रमशः निर्वाचक संघ होंगे जिनमें इन्हीं जातियों के प्रान्तीय असेंबली के सदस्य होंगे। वे ही नियमानुसार फ़ेडरल असेंबली के सदस्य चुनेंगे। वाणिज्य-व्यवसाय, ज़मींदार एवं मज़दूरों के लिये निर्वाचन की व्यवस्था की जा रही है, जिसके अनुसार उनका निर्वाचन होगा।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका तथा मताधिकार

ऊपर लिखा जा चुका है कि नवीन विधान के अनुसार मतदाताओं की संख्या लगभग ४ गुनी बढ़ जावेगी। आधुनिक काल में नागरिक के अधिकारों में शासन व्यवस्था के हेतु व्यवस्थापिका में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार महत्त्वपूर्ण है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका के आगामी चुनाव जो सन् ३७ के आरंभ में होने वाले हैं नये विधान के अनुसार ही होंगे। अतएव मताधिकार का विषय विशेष महत्त्व रखता है। अतः मत देने की योग्यता संबंधी नियमों का उल्लेख करना आवश्यक है। नवीन विधान के अनुसार भी यद्यपि निर्वाचन एवं मताधिकार की योग्यता संबंधी नियम एक से नहीं हैं किन्तु फिर भी उनके आधार एवं सिद्धान्त एक ही हैं। नवीन विधान के अनुसार संपत्ति के आधार के अतिरिक्त शिक्षा संबंधी योग्यता का भी अधिकार रक्खा गया है। नीचे कुछ मुख्य मुख्य प्रान्तों के मताधिकार एवं निर्वाचन संबंधी नियम दिये जाते हैं।

बंगाल—निवास संबंधी योग्यता के अतिरिक्त जो व्यक्ति पिछले वर्ष में कम से कम ४२) सालाना किराये वाले मकान का मालिक या किरायेदार हो; या जो इन्कम टेक्स देता हो; या जो सन् ३२ के बंगाल मोटर विहिकल्स एक्ट के अनुसार टेक्स देता हो; या जिसका नाम पिछले वर्ष के कलकत्ता कार्पोरेशन के म्यूनिसिपल असेसमेंट बुक अथवा लाइसेंस रजिस्टर या अन्य किसी रजिस्टर में दर्ज हो, कि उसने उस साल के लिये प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से कार्पोरेशन को टेक्स या फ़ीस दी हो; या उसने पिछले वर्ष और उस साल के लिये कम से कम ।।) रोडसेस या ।=) चौकीदारी टेक्स या यूनियन टेक्स दिया हो, वह व्यक्ति वोटर होने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति कम से कम फ़ाइनल मिडिल स्कूल पास कर चुका है, वह भी वोटर हो सकता है।

महिलाओं की योग्यता संबंधी नियम—सम्राट् के सेना विभाग के भूतपूर्व अफ़सर, नान कमीशन अफ़सर, या सैनिक की पेन्शन पाने वाली माता या विधवा वोटर हो सकती है। १५०) सालाना किराये के मकान की मालिक, या ३००) सालाना के किरायेदार या २४) सालाना म्यूनि-सिपल टेक्स देने वाले व्यक्ति की पत्नी को भी वोट देने का हक़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिस स्त्री ने मिडिल परीक्षा पास की है वह भी वोटर होने की अधिकारिणी है।

बिहार—निवास संबंधी योग्यता के अतिरिक्त जो व्यक्ति इन्कम टेक्स देता हो या १।।) म्यूनिसिपल टेक्स या ।।=) चौकीदारी टेक्स देता हो वह सन्थल परगना के अतिरिक्त अन्य टेरिटोरियल संघ का वोटर हो सकता है। जमशेदपुर नोटिफ़ाइड एरिया के अन्दर जिसके पास २४) सालाना किराये की ज़मीन या मकान हो वह उस एरिया की वोटर लिस्ट में नाम दर्ज करा सकता है। जो प्रान्त के अन्य स्थानों में ६) सालाना भाड़ा या ३) सालाना लोकल सेस देते हों या सन्थल परगना में ६) सालाना किराया

देने को वोट देने के हक़दायी हैं। इसके अतिरिक्त मिडिल परीक्षा पास व्यक्ति को भी वोट देने का अधिकार है।

महिलाओं के लिये नियम—जो इन्कम टेक्स देती हों या ३) सालाना म्यूनिसिपल टेक्स, या २॥) सालाना चौकीदारी टेक्स देती हों, या १४४) सालाना किराये की ज़मीन या मकान जिनके क़ब्ज़े में जमशेदपुर नोटिफ़ाइड एरिया में हो, वोटर हो सकती हैं। जो स्त्री साक्षर हैं या सैनिक या भूतपूर्व रिटायर्ड अफ़सर की पेंशनयाफ़्ता माता या पत्नी हों, वोट दे सकती हैं।

यू० पी०—निवास संबंधी योग्यता के अतिरिक्त जिस व्यक्ति पर पिछले वर्ष १५०) आमदनी पर म्यूनिसिपल टेक्स बाँधा गया था; या जो २४) भाड़े के मकान मालिक या किरायेदार हों; या तो ५) सालाना लगान की ज़मीन के मालिक हों या १०) मालगुज़ारी लगान देते हों या जो अवध में ऐसी ज़मीन के प्रोप्रायटर या अंडरप्रोप्रायटर हों जिसके लिये ५) सालाना मालगुज़ारी देनी पड़ती हो या जो अपर प्रायमरी परीक्षा पास कर चुका हो, वोट देने का अधिकारी है।

महिलाओं के लिये नियम—सैनिक या अफ़सर की पेंशनयाफ़्ता माता या विधवा; या उस व्यक्ति की पत्नी जो ३६) सालाना भाड़े के मकान मालिक या किरायेदार हो; या २००) आमदनी पर म्यूनिसिपल टेक्स, या २५) सालाना लगान देता हो, या वह काश्तकार जो ५०) सालाना मालगुज़ारी लगान देता हो, या जिस पर पिछले वर्ष इन्कम टेक्स लगाया गया था; या जो परमेनेंट टेन्योर होल्डर या आगरा टेनेंसी एक्ट १९२६ के अनुसार निश्चित मालगुज़ारी देने वाला आसामी है। इसके अतिरिक्त जो स्त्री साक्षरता की योग्यता रखती हो वोटर हो सकती है।

सी० पी० और बरार—निवास संबंधी योग्यता के अतिरिक्त जो २५) की हैसियत पर म्यूनिसिपल टेक्स देता हो; या जिसने इन्कमटेक्स दिया हो; या जो ऐसे स्टेट या महाल का मालिक या ठेकेदार हो जिसका

लगान या कामिल-जमा ७) से कम नहीं है; या जो 'सीर' ज़मीन या खुद-काश्त का मालिक या ठेकेदार अथवा मालिकमक़बूज़ा या रैयत की हैसियत से खुदकाश्त या सीर ज़मीन जोतता है जिसका लगान या मालगुज़ारी ७) है या हो सकती है; या जो बरार में रैयत की हैसियत से ज़मीन जोतता है जिसका लगान ७) से कम नहीं है; या जो कम से कम ३) सालाना किराये के माकान का किरायेदार या मालिक हो या जो वतनदार पटेल या वतन-दार पटवारी के ओहदे पर काम करता है, या रजिस्टर्ड देशमुख, देशपंडिया या लम्बरदार है, या जो कम से कम फ़ाइनल मिडिल स्कूल परीक्षा पास है, वह व्यक्ति वोट देने का अधिकारी है।

महिलाओं के लिये नियम—सम्राट् की या निज़ामसरकार की सेना के सैनिक या अफ़सर की पेंशनयाफ़्ता विधवा या माता, या प्राइमरी स्कूल सर्टिफ़िकेट प्राप्त, या वह स्त्री जिसके पति ऐसी योग्यता रखते हों कि नियमानुसार उनकी पत्नी वोटर होने की अधिकारिणी हो सकती है।

इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी परिस्थिति के अनुसार नियम बनाये गये हैं। प्रत्येक प्रान्त में सरकारी नौकरी से रिटायर्ड पेंशनयाफ़्ता या डिसचार्ज अफ़सर, नानकमीशण्ड अफ़सर या सैनिक भी टेरिटोरियल निर्वाचित क्षेत्र में वोटर हो सकते हैं। प्रत्येक प्रान्त में वोटर की अवस्था २१ वर्ष या अधिक होना अनिवार्य है।

चौथा अध्याय

प्रबंधकार्य तथा केन्द्रिक एवं प्रान्तीय विषय

(Executive Govt. Central & Provincial Subjects.)

सन् १७७३ ईस्वी में ब्रिटिश पार्लमेंट ने ईस्टइंडिया कम्पनी के राज्य का शासन व्यवस्थित करने के अभिप्राय से 'रेग्युलेटिंग एक्ट' बनाया। इस समय भारतवर्ष में कम्पनी का राज्य बंबई, मद्रास तथा बंगाल प्रेसीडेंसियों में विभक्त था। प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में एक गवर्नर* था जो अपने प्रान्त का शासन अपनी कार्यकारिणी समिति की सहायता से ही किया करता था। रेग्युलेटिंग एक्ट के अनुसार वारेन हेस्टिंग्ज़ बंगाल का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ जिसके आधीन अन्य दो प्रेसीडेंसियाँ भी कर दी गई। इसकी सहायता के लिये ४ सदस्यों की एक समिति बनाई गई जिसका बहुमत मानने के लिये गवर्नर जनरल बाध्य था। यद्यपि बंगाल का गवर्नर समस्त भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया, किन्तु मद्रास तथा बंबई प्रेसीडेन्सी के भीतरी शासन प्रबंध का उत्तरदायित्व उसके ऊपर न था। सन् १७७३ ईस्वी से ही गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी (Executive Council) का इतिहास आरंभ होता है।

---

*प्रेसीडेन्सी गवर्नर की कार्यकारिणी में १०–१६ तक सदस्य होते थ। गवर्नर कार्यकारिणी का बहुमत मानने के लिये बाध्य था। शासन प्रबंध आदि हर एक विषय के लिये प्रेसीडेन्सी सरकार सीधे इंग्लैंड में कम्पनी के डायरेक्टर्स के ही निकट उत्तरदायी थीं।

सन् १७८४ ईस्वी में कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या घटाकर ३ कर दी गई। वारेन हेस्टिंग्ज़ के शासन काल में गवर्नर जनरल तथा कार्यकारिणी में बहुधा मतभेद रहने के कारण राज्य संचालन में अनेकों बाधाएं आती थीं अतएव सन् १७८६ ईस्वी में गवर्नर जनरल को. घोर परिस्थिति में आवश्यकता पड़ने पर कार्यकारिणी के बहुमत की अवहेलना करने का अधिकार दे दिया गया। लगभग ५० वर्षों तक इसी प्रकार राज्य संचालन होता रहा। इन ५० वर्षों में पंजाब तथा सिन्ध के अतिरिक्त प्रायः समस्त भारत कंपनी के राज्य या उसकी संरक्षा में आ चुका था। इतने बड़े राज्य का सारा भार गवर्नर जनरल पर ही था। वही अपनी कार्यकारिणी की सहायता से, देश के लिए क़ानून बनाता तथा शासन प्रबंध किया करता था। सन् १८३३ के एक्ट के अनुसार केवल क़ानून बनाने में सहायता देने के लिए कार्यकारिणी समिति में एक और सदस्य नियत करने की व्यवस्था की गई। नियमानुसार यह कंपनी का नौकर नहीं हो सकता था। इस सुधार से कुछ विशेष लाभ न हुआ। अतएव सन् **१८५३ में प्रबंधकार्य तथा क़ानून बनाने के कार्य पृथक् कर दिये गये** एवं कार्यकारिणी के चौथे सदस्य को समिति की प्रत्येक बैठक में भाग लेने तथा वोट देने का अधिकार देकर, उसे पूर्ण सदस्य बना लिया। सन् १८३३ के एक्ट के अनुसार प्रेसीडेन्सी गवर्नर तथा कार्यकारिणी से क़ानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया था। अतएव अब सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत का राज्य-संचालन काउन्सिल सहित गवर्नर जनरल के ही हाथ में आगया। इस प्रबंध से भी संतोष-जनक परिणाम न हुआ, अतः सन् १८६१ में पुनः काउन्सिल एक्ट पास हुआ जिससे प्रेसीडेन्सी सरकारों को प्रान्तीय विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार वापिस कर दिया गया और गवर्नर जनरल की काउन्सिल के सदस्यों की संख्या ५ कर दी गई। इन पाँच सदस्यों में से कम से कम ३ ऐसे रखे गये जिन्हें भारत सरकार की नौकरी करते कम से कम १० वर्ष

हो गये हों: और एक सदस्य इंग्लैण्ड का बैरिस्टर होता था। कमांडर-इन-चीफ़ को भी समिति का विशेष सदस्य बनाने का अधिकार भारत सचिव को दे दिया गया। गवर्नर जनरल तथा कार्यकारिणी समिति को यह भी अधिकार दे दिया गया कि यदि वे चाहें तो अपने सारे अधिकार गवर्नर जनरल को दे सकें। इस एक्ट से गवर्नर जनरल को शासन प्रबंध की सुविधा के लिए नियमादि भी बनाने का अधिकार मिल गया। लार्ड कैनिंगने इसी अधिकार का प्रयोग कर पृथक् पृथक् विभाग बनाने और साधारण बातों को निपटाने का हर एक विभाग के अधिकारी को अधिकार दे दिया।

सन् १८७० ईस्वी से प्रान्तीय सरकारों को कुछ विभागों के प्रबंध तथा उनके आय-व्यय का अधिकार दे दिया गया। इसी समय से प्रान्तीय-तथा केन्द्रीय विषय (Subjects) अलग करना आरंभ हुआ। धीरे धीरे प्रान्तीय सरकारों के अधिकार बढ़ते गये जिससे उनकी ज़िम्मेदारी और कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत होता गया, तथा केन्द्रीय सरकार का भी भार हलका होने लगा। सन् १८७४ ईस्वी में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में पब्लिक वर्क्स विभाग का एक सदस्य बनाकर कार्यकारिणी समिति की संख्या ५ से ६ कर दी गई। किन्तु लार्ड कर्ज़न के समय में इस सदस्य की अनावश्यकता प्रतीत होने लगी। व्यापार की उन्नति के कारण व्यापार और उद्योग विभाग के सदस्य की अधिक आवश्यकता जान पड़ी। अतः कार्यकारिणी में (Public Works Department) पब्लिक वर्क्स के मेम्बर के स्थान पर उद्योग और व्यापार (Commerce, Trade & Industry) का सदस्य नियुक्त हुआ। कार्यकारिणी के सदस्यों का उत्तरदायित्व पृथक् रूप से न था। यह कार्यकारिणी समिति ही अपने कार्यों के लिए समष्टि रूप से उत्तरदायिनी (Jointly Responsible) थी। यह सिद्धान्त किसी क़ानून या एक्ट के अनुसार नहीं वरन् एक प्रथा का रूप है। सन् १८९५ में एक अवसर पर इसका आधार लिया गया था और उसी समय से यह प्रथा दृढ़ होती गई।

सन् १९१२ में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बंगाल प्रान्त गवर्नर के आधीन किया गया और उसकी सहायता के लिए कार्यकारिणी समिति (Executive Council) स्थापित की गई। सन् १९१२ में ही 'बिहार और उड़ीसा' लेफ़्टनेन्ट गवर्नर प्रान्त बनाया गया और वहाँ भी कार्यकारिणी समिति स्थापित की गई। उसी वर्ष दिल्ली दरबार के बाद भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते से उठकर दिल्ली आगई।

सन् १९१९ के पूर्व प्रान्तीय सरकारों को यद्यपि कुछ विभाग प्रबंध करने के लिए समर्पित कर दिये गये थे किन्तु फिर भी प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के एजेंटों के ही समान थीं। सिद्धान्त के अनुसार प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विषयों का निश्चित रूप से पृथक्करण नहीं हुआ था। केंद्रीय सरकार प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं का भी नियंत्रण आदेश भेजकर करती थी।

किंतु सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रान्तों में द्विविध (Dyarchy) शासन संगठित किया गया। प्रान्तों की जिम्मेदारी शासन संबंधी कुछ विभागों को प्रान्तों के सुपुर्द कर देने से स्थिर हो गई। वायसराय की कार्यकारिणी में भी कुछ परिवर्तन कर दिये गये। अब आवश्यकतानुसार समिति के सदस्यों की संख्या निर्धारित करने का नियम बना दिया गया।

प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विषय

मुख्य मुख्य विषय जो प्रान्तों को दे दिये गये हैं इस प्रकार हैं—(१) स्थानीय स्वराज्य जिनमें म्यूनिसिपेलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, इंप्रूवमेंट ट्रस्ट आदि का प्रबंध सम्मिलित है। (२) स्वास्थ्य संबंधी विषय, अस्पताल तथा डॉक्टरी शिक्षा। (३) तीर्थ स्थान। (४) शिक्षा। शिक्षा के संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय एवं राजकुमारों के कालेज आदि संस्थाएँ प्रान्तीय नियंत्रण के बाहर हैं।

(५) सार्वजनिक निर्माण कार्य जिसमें प्रान्तीय सरकार की इमारतें, अजायब घर प्राचीन इमारतें या खण्डहर आदि, सड़कें, नदी आदि के पुल म्युनिसिपैल्टिटी की हद में स्थित ट्राम गाड़ियाँ आदि सम्मिलित हैं। (६) कृषि, तथा कृषि कार्य संबंधी संस्थाएँ जैसे कृषि कालेज, फ़ार्म आदि। (७) पशु-स्वास्थ्य संबंधी अस्पताल आदि संस्थाएँ। (८) कोआपरेटिव सोसाइटियाँ। (९) आबकारी अर्थात् मादक वस्तुओं का बनाना, बेचना आदि। (१०) रजिस्ट्रेशन विभाग। (११) धार्मिक इमारतें आदि जो जनता के लिए हों। (१२) उद्योग तथा व्यवसाय की उन्नति तथा औद्योगिक शिक्षा संबंधी संस्थाएँ। (१३) मापतौल नियंत्रण। (१४) खाने पीने के पदार्थों की शुद्धता का निरीक्षण करना, तथा (१५) नाटक सिनेमा आदि का निरीक्षण।

उपर्युक्त प्रान्तीय विषय समर्पित विषय (Transferred Subjects) या हस्तान्तरित विषय कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी प्रान्तीय विषय है जिनका प्रबंध तथा नियंत्रण प्रान्तीय सरकार अर्थात् गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी करती है। ऐसे प्रान्तीय रक्षित विषय (Reserved Subjects) ये हैं—(१) सिंचाई विभाग जिसमें नहरों, नदियों नालों आदि का प्रबंध शामिल है। (२) मालगुज़ारी बन्दोबस्त, जिसमें मालगुज़ारी नियत करना, मालगुज़ारी संबंधी क़ानून स्थिर करना, कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स विभाग, खेती की उन्नति तथा उसके लिए ऋण आदि का बन्दोबस्त करना, सरकारी मालगुज़ारी या ज़मीन आदि का प्रबंध सम्मिलित है। (३) दुर्भिक्षनिवारण (Famine Relief)। (४) ज़मीन ख़रीदना (Land Acquisition)। (५) न्याय का प्रबंध करना। प्रान्तीय सरकारों के आधीन हाईकोर्ट, चीफ़ कोर्ट या जुडीशियल कमिश्नर की अदालतें नहीं हैं अतएव इनके प्रबंध आदि में प्रान्तीय सरकारें हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। इनके अलावा अन्य अदालतों पर प्रान्तीय सरकार का थोड़ा बहुत अधिकार है। (६) प्रान्तीय क़ानून की रिपोर्ट

(Provincial Law Report)। (७) सरकारी खानों (Mines) की उन्नति करना भी प्रान्तीय सरकारों के आधीन है। किंतु इनके नियमादि में भारत सचिव के आदेशों का अनुसरण अनिवार्य है। (८) उद्योग संबंधी विषय जैसे कारखानों, मजदूरी के प्रश्न, बिजली, वायरलेस गैस आदि का निरीक्षण तथा नियंत्रण। (९) बंदरगाहों का प्रबंध। (१०) पुलिस जिसमें प्रान्त की रेलवे पुलिस भी है। (११) केन्द्रीय सरकार के आदेशों के अतिरिक्त समाचार पत्र, पुस्तकों तथा छापाखाने का नियंत्रण। (१२) जेल तथा कैदियों का प्रबंध। प्रान्तीय सरकार को स्टेट प्रिजनर्स के विषय में अधिकार नहीं है। (१३) प्रान्तीय सरकारी प्रेस आदि का नियंत्रण। (१४) प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओं के चुनाव आदि का प्रबंध। (१५) डाक्टरी आदि व्यवसायों की योग्यता संबंधी नियमादि। (१६) स्थानीय संस्थाओं की आय व्यय का निरीक्षण। (१७) प्रान्तीय सरकारी नौकरियों का निरीक्षण आदि। (१८) प्रान्तीय सरकारों के ऋण लेने के नियमानुसार प्रान्त के लिए कर्ज़ आदि का प्रबंध। (१९) प्रान्तीय क़ानूनों की अवहेलना करने के अपराध में दंड के नियमादि बनाना तथा अन्य ऐसे विषय जो केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में होते हुए भी केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रान्तीय सरकार को प्रबंध के लिए दे दिये जावें। इन सब विषयों का नियंत्रण तथा उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकार पर है। इनका प्रबंध तथा शासन गवर्नर अपनी कार्य-कारिणी समिति के ही द्वारा करता है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका के निकट वह उपरोक्त रिज़र्व विषयों के लिए उत्तरदायी नहीं है।

केन्द्रीय सरकार जिन विषयों का निरीक्षण तथा नियंत्रण स्वयं करती है उन्हें केन्द्रीय विषय (Central Subjects) कहते हैं। उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) देशरक्षा, इसमें सेना विभाग के सब हिस्से जल सेना, थल सेना, हवाई जहाज़ी बेड़ा आदि शामिल हैं।

२. देशी रियासतों तथा परराष्ट्रों से ब्रिटिश भारत के संबंध का निरीक्षण करना तथा उन मामलों का प्रबंध करना।

३. आवागमन के साधन जैसे रेल, हवाई जहाज़ तथा जलमार्ग का नियंत्रण एवं प्रबंध। (४) समुद्र में स्थित प्रकाश गृहों (Light Houses) का प्रबंध करना। (५) तार, डाकखाने, टेलीफोन, वायरलेस का प्रबंध एवं नियंत्रण। (६) आयात निर्यात कर (Customs) विदेश जाने या विदेश से आने वाली आबकारी की वस्तुओं पर कर लगाना, नमक, आमदनी आदि पर टेक्स वसूल करना तथा अन्य महसूल आदि जिनसे केन्द्रीय सरकार का कोष भरता है, निर्धारित करना। (७) देश के लिए दीवानी, फौज़दारी कानून आदि बनाना, (८) व्यापार, इंन्श्योरेन्स कम्पनी, बैंक, व्यापारी कंपनी तथा अन्य संस्थाओं का नियंत्रण। (९) अफ़ीम की पैदावारी तथा उसे भारतवर्ष या विदेश में भेजने तथा बेचने का निरीक्षण। (१०) आविष्कार आदि का नियंत्रण। (११) कापी राइट, (१२) पेट्रोल, बारूद मिट्टी के तेल आदि की देखरेख। (१३) धार्मिक विषयों का निरीक्षण। (१४) **समस्त भारतीय** नौकरियाँ (Imperial Services)। (१५) पब्लिक सर्विस कमीशन। (१६) विदेशों में भारतीयों का निरीक्षण। (१७) कला, साहित्य तथा प्राचीन वस्तुओं का नियंत्रण। (१८) आविष्कार आदि के लिए भारतीय सरकार द्वारा स्थापित संस्थाओं का प्रबंध। (१९) हथियार, गोला बारूद तथा सरकारी **खज़ानों** का प्रबंध, सिक्के, नोट आदि का प्रवन्ध, भारतवर्ष के लिए कर्ज़ लेना तथा अन्य आर्थिक विषय आदि के अतिरिक्त अन्य ऐसे विषय जो प्रान्तीय सरकारों को पृथक्‌रूप से नहीं दिये गये है, इन सबका शासन, प्रबंध, निरीक्षण नियंत्रण आदि केन्द्रीय सरकार ही करती है।

सन् १९३५ के एक्ट ने सूबों में द्विविध शासन का अन्त करके उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी। इसके अनुसार हस्तान्तरित और संरक्षित विभागों का भेद हटा दिया गया है और सभी विषयों का नियंत्रण

सूबों के मंत्रियों के हाथों में सुपुर्द कर दिया गया है। अब प्रत्येक सूबा अपने आन्तरिक मामलों में स्वाधीन-सा होगा। किन्तु उसे यह अधिकार नहीं रहेगा कि वह ऐसी नीति या विधानों की रचना करे जिससे केन्द्रिक शासन की नीति या विधानों में बाधा पड़े। उन विषयों में जो केन्द्रिक शासन के अधीन हैं सूबे को उसीके आदेशों के अनुकूल चलना पड़ेगा। ऐसा न होने से भारत की एकता और उसका शासन अस्त व्यस्त हो जा सकता है।

वायसराय तथा कार्यकारिणी समिति—यह बताया जा चुका है कि वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य एक एक विभाग के मुख्य एवं प्रधान अधिकारी होते हैं। वायसराय महोदय ही अपनी कार्यकारिणी समिति के सभापति तथा परराष्ट्र विभाग और राजनैतिक विभाग के प्रधान अध्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त कार्यकारिणी के सदस्य इस प्रकार हैं—

सेना का मेम्बर (Army Member), स्वदेश मेम्बर (Home Member), अर्थ सचिव (Finance Member), क़ानून का मेम्बर (Law Member), व्यापार का मेम्बर (Commerce Member), शिक्षा, ज़मीन तथा स्वास्थ्य का मेम्बर (Member in-charge of Education, Health & Lands), तथा उद्योग एवं मज़दूरी का मेम्बर (Member in-charge of Industries & Labour)*।

सन् १९३५ के एक्ट ने उपर्युक्त विधान बदल दिया। संरक्षित विषयों को छोड़ अन्य विषय मंत्रियों के हाथ में दे दिये जायँगे। मंत्रियों की संख्या

---

*इन विभागों का विस्तृत वर्णन "शासन प्रबंध के विभाग केन्द्रीय तथा प्रान्तीय गवर्नमेंट" शीर्षक छठवें अध्याय में देखिए।

सन् १९२१ के पहिले यू० पी०, पंजाब, सी० पी०, बर्मा, तथा आसाम में कार्यकारिणी समिति नहीं थीं। केवल गवर्नर ही शासन प्रबंध किया करता था।

दस से अधिक न होगी। इनके चुनाव करने और हटा देने का अधिकार गवर्नर जनरल के हाथ में रहेगा। प्रत्येक मंत्री को व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होना आवश्यक होगा। यदि कोई मंत्री नियुक्त करने से छः महीने तक व्यवस्थापिका सभा का सदस्य न हो सके तो उसे अपना पद त्याग देना पड़ेगा। साधारणतः गवर्नर जनरल का कर्तव्य होगा कि वह मंत्रियों की राय के अनुसार काम करे किन्तु विशेष स्थिति आने पर वह चाहे तो मंत्रियों की राय न माने और अपनी राय के अनुकूल चले। गवर्नर जनरल को आदेश है कि जहाँ तक हो सके वह मंत्रियों और सचिवों (Counsellors) की संयुक्त राय लेकर काम किया करे।

प्रान्तीय कार्य-कारिणी समिति

सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार सन् १९२१ में कार्य शुरू हुआ। एक्ट के अनुसार मद्रास, बंबई तथा बंगाल प्रान्त में ४ सदस्य हैं। इनमें दो हिन्दुस्थानी तथा २ यूरोपियन हैं। अन्य प्रान्तों में २ सदस्य हैं। प्रथा के अनुसार इन प्रान्तों में भी एक हिन्दुस्थानी तथा एक यूरोपियन सदस्य है। केवल पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में एक ही सदस्य की कार्यकारिणी है। एक्ट के अनुसार कार्यकारिणी के सदस्यों में कम से कम एक सदस्य ऐसा होना अनिवार्य है जो भारत सरकार की नौकरी में कम से कम १२ वर्ष रहा हो। कार्यकारिणी के सदस्य साधारण तौर से ५ वर्ष के लिए नियुक्त होते हैं। इस समिति का हर एक सदस्य प्रान्तीय व्यवस्थापिका का सरकारी सदस्य होता है।

प्रान्त की कार्यकारिणी की बैठकों में गवर्नर ही अध्यक्ष का आसन ग्रहण करता है। यदि किसी प्रान्त की कार्यकारिणी समिति में मतभेद हो तो साधारण तौर से बहुमत का ही पालन किया जाता है। वायसराय की कार्यकारिणी के समान इसका भी संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) है। व्यवस्थापिका सभा केवल इनके कार्यों की आलोचना

तथा शासन संबंधी विषयों पर प्रश्न ही कर सकती है। सभा को इनके वेतन तथा अवधि घटाने या बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है।

मंत्री

यह लिखा जा चुका है कि हर एक प्रान्त में हस्तान्तरित या समर्पित विषयों (Transferred Subjects) का प्रबंध गवर्नर मंत्रियों की ही राय से करता है। प्रत्येक प्रान्त मे मंत्रियों की एक सी संख्या नहीं है। बंबई, मद्रास, बंगाल, यू० पी० और पंजाब में तीन, सी० पी०, बिहार उड़ीसा, आसाम और बर्मा में २ तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में एक मंत्री है। गवर्नर अपने प्रान्त के मंत्रियों को व्यवस्थापिका के चुने हुए सदस्यों में से ही नियुक्त करता है। यदि कोई मंत्री छः महीने तक व्यवस्थापिका सभा का सदस्य न हो सके तो उसे अपना पद त्याग करना पड़ेगा। १९३५ के एक्ट के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि मंत्री चुना हुआ ही सदस्य हो। गवर्नर द्वारा नामज़द सदस्य भी मंत्री हो सकेगा। सिद्धान्त के अनुसार मंत्री गवर्नर द्वारा ही अलग भी किये जाते हैं। किंतु वास्तव में व्यवस्थापिका के निकट मंत्री का उत्तरदायित्व होने के कारण उसकी अवधि व्यवस्थापिका के प्रभाव पर भी निर्भर रहती है।

मंत्रियों की संख्या कम और समर्पित विषय अधिक होने से एक मंत्री के ज़िम्मे कई विभाग कर दिये गये हैं। प्रत्येक प्रान्त में मंत्रियों के विभाग एक से नहीं हैं और न इनका नाम ही एक सा है। उदाहरण के लिए मद्रास प्रान्त में तीन मंत्री हैं जो 'मिनिस्टर फ़ॉर एजुकेशन एन्ड लोकल सेल्फ गवर्नमेंट'; 'मिनिस्टर फ़ॉर पब्लिक हेल्थ' और 'मिनिस्टर फ़ॉर डेव्लपमेंट' कहलाते हैं। पंजाब के तीन मंत्रियों के नाम 'मिनिस्टर फ़ॉर लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट' (जिसमें पब्लिक हेल्थ भी शामिल है) 'मिनिस्टर फ़ॉर एग्रिकल्चर' (जिसमें कोआपरेशन और पब्लिक वर्क्स भी है) तथा 'मिनिस्टर फ़ॉर एजुकेशन' (जिसमें उद्योग भी शामिल है) हैं। किसी अवसर पर किसी मंत्री के न होने से उसका कार्य दूसरे मंत्री को सौंप दिया जाता है,

पर दूसरा मंत्री बना दिया जाता है। कभी कभी मंत्री की अनुपस्थिति में गवर्नर ही उसके विभाग को अपने हाथ में ले लेता है। यदि मंत्री न मिलें तो वाइसराय को अधिकार है कि वह उन समर्पित विषयों को भारत सचिव की अनुमति से रक्षित विषयों की श्रेणी में रख दे।

उपर्युक्त व्यवस्था सन् १९३५ के एक्ट ने बदल दी। सूबों में उत्तरदायी शासन को स्थापित करने के कारण इसने संरक्षित और समर्पित विषयों के भेद को हटा दिया। अब सब विभाग मंत्रियों द्वारा नियंत्रित होंगे। इसका परिणाम यह होगा कि गवर्नर की कार्यकारिणी समिति पहले की तरह अलाहदा न रहेगी और उसके सदस्य अब मंत्री लोग ही रहेंगे। मंत्रियों की समिति का नाम "काउन्सिल आफ मिनिस्टर्स" (Council of Ministers) होगा।

मंत्रियों का उत्तरदायित्व

मंत्रियों का उत्तरदायित्व पृथक् रूप से है या एक साथ इसके विषय में १९१९ का एक्ट स्पष्ट नहीं है। एक्ट के अनुसार समर्पित विषयों में गवर्नर अपने मंत्रियों की सलाह से कार्य करता है। अतएव कभी कभी कहीं कहीं मंत्रिमंडल ने 'एक साथ उत्तरदायित्व' का सिद्धान्त पाला है और कहीं कहीं नहीं। आशा है कि नवीन व्यवस्थापिका सभाओं के मंत्री संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) के अनुकूल काम करेंगे।

यह लिखा जा चुका है कि मंत्री व्यवस्थापिका के ग़ैर सरकारी चुने हुए सदस्यों में से होते हैं। बिना धन के मंत्री शासन प्रबंध नहीं कर सकते। धन के लिए व्यवस्थापिका की स्वीकृति अनिवार्य है। इस अवसर पर व्यवस्थापिका मंत्री के कार्यों की तीव्र आलोचना करती है। वह मंत्री के माँगे हुए धन में कमी या बढ़ती भी करने में समर्थ है। व्यवस्थापिका को मंत्री का वेतन घटाने का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त वह मंत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखकर मंत्री की परिस्थिति

डावाँडोल कर सकती है। इन्हीं कारणों से तथा इसी प्रकार मंत्री व्यवस्थापिका के निकट उत्तरदायी है।

एडवोकेट जनरल—१९३५ के एक्ट के अनुसार प्रत्येक सूबे में एक एक एडवोकेट जनरल सूबे के गवर्नर द्वारा नियुक्त किया जायगा। उसका काम गवर्नर को क़ानूनी मामलों में सलाह देना होगा। उसका वेतन और नियुक्ति की अवधि गवर्नर की इच्छानुसार होगी।

प्रान्तीय कार्यकारिणी एवं मंत्रियों के विषय में जानने के पश्चात् प्रान्त के गवर्नर के विषय में जानना भी उचित है। यह बताया जा चुका है कि रक्षित विषय का प्रबंध तथा शासन कार्यकारिणी की सहायता से तथा समर्पित विषयों का शासन मंत्रियों के द्वारा गवर्नर करता है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि गवर्नर क्या केवल कार्यकारिणी तथा मंत्रियों की सलाह से ही कार्य करता है या स्वयं भी उसे कुछ अधिकार है। यदि कार्यकारिणी समिति से गवर्नर की राय न मिली तो क्या वह उसकी सम्मति पर ही चलने के लिए वाध्य है। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए गवर्नर के अधिकारों को जानना आवश्यक है।

गवर्नर

गवर्नर अपने प्रान्त का अधिपति है। एक्ट के अनुसार वह कार्यकारिणी के सदस्यों तथा मंत्रियों के कार्यों का निरीक्षण करता है। गवर्नर कार्यकारिणी का सभापति होता है। यदि उसकी सम्मति में जनता की भलाई के विरुद्ध या न्याय तथा क़ानून के विपरीत कार्यकारिणी का मत है तो वह कार्यकारिणी के बहुमत की अवहेलना कर सकता है। समर्पित विषयों के संबंध में गवर्नर मंत्रियों को सदैव सलाह देता रहता है। किंतु मंत्रियों के कार्यों में प्रायः वह हस्तक्षेप नहीं करता। एक्ट के अनुसार गवर्नर को गहन परिस्थिति उपस्थित होने पर मंत्रियों की सलाह की अवज्ञा करने का भी अधिकार है। गवर्नर कार्यकारिणी का कर्णधार है। प्रान्त के लिए उसके शब्द अंतिम शब्द है। वह प्रान्त का अधिपति एवं

सर्वप्रधान है। अन्य कर्मचारी प्रान्त के शासन संबंध में सदैव उसकी जानकारी करते रहते हैं। वह दोनों ओर (मंत्री और कार्यकारिणी) के गुप्त से गुप्त मामलों से भिज्ञ रहता है। गवर्नर स्वयं बड़ा नीतिज्ञ, दूरदर्शी तथा विद्वान होता है। अतएव यद्यपि शासन कार्य कार्यकारिणी के सदस्य और मंत्री ही सँभालते हैं तथापि वास्तविक शासन संचालन में गवर्नर का बहुत प्रभाव पड़ता है। सन् १९३५ के एक्ट में भी काउन्सिल आफ़ मिनिस्टर्स और गवर्नर के सम्बन्ध में उपर्युक्त सिद्धान्त प्रचलित रहेगा। विशेष परिस्थिति अथवा आवश्यकता आ जाने पर गवर्नर अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करने और प्रबन्ध करने का अधिकारी रहेगा। सूबे के उन विभागों का शासन जो पिछड़े हुए निश्चित किये जायँगे (Back ward area) गवर्नर बिना मंत्रियों के परामर्श किये स्वयं करेगा।

जिला तथा ज़िले का शासन प्रबंध

मद्रास प्रान्त को छोड़कर अन्य प्रान्तों के शासन की सुविधा के लिए विभाग कर दिये गये हैं जिन्हें कमिश्नरी कहते हैं। कमिश्नरी का प्रधान कर्मचारी कमिश्नर है। कमिश्नर का कार्य डिवीज़न के ज़िलों के प्रबंध का निरीक्षण करना तथा डिवीज़न के संबंध में प्रान्तीय सरकार को रिपोर्ट करना है। प्रत्येक डिवीजन अर्थात् कमिश्नरी में ज़िले हैं जिनका प्रधान कर्मचारी या ज़िलाधीश डिपुटी कमिश्नर या कलेक्टर कहलाता है।

कलेक्टर शब्द का प्रयोग वारेन हेस्टिंग्ज़ के समय में भी था। उस समय कंपनी को बंगाल की दीवानी का प्रबंध करने के लिए प्रान्त को छोटे छोटे हिस्से में बाँटना पड़ा था। प्रत्येक हिस्से में लगान वसूल करने के लिए कंपनी का एक प्रधान कर्मचारी था जिसे कलेक्टर कहते थे। उसी समय से कलेक्टर का प्रधान कार्य लगान संबंधी ही है। धीरे धीरे कलेक्टर के कार्यों की संख्या बढ़ती गई और उसी क्रम से उसके अधिकारों की भी वृद्धि होती गई।

ज़िले का शासन प्रबंध कई विभागों द्वारा होता है। प्रत्येक विभाग

का एक एक प्रधान कर्मचारी प्रत्येक ज़िले में है। यों तो प्रत्येक विभाग अपने विभाग के प्रान्तीय प्रधान के हाथ में है किन्तु फिर भी ज़िलाधीश को इन सबका निरीक्षण करने का अधिकार है। अतएव सब विभाग अपने कार्यों की रिपोर्ट डिपुटी कमिश्नर को किया करते हैं।

ज़िले के शासन प्रबंध का उत्तरदायित्व डिपुटी कमिश्नर पर है। डिपुटी कमिश्नर को अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए कई प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। ये कार्य उसकी दुहरी हैसियत से संबंध रखते हैं। डिपुटी कमिश्नर कलेक्टर की हैसियत से मालगुज़ारी वसूल करता है। इस संबंध में वह ज़िले के अन्य भागों में समय समय पर जाकर निरीक्षण भी करता है।

डिपुटी कमिश्नर के अधिकार तथा कर्तव्य

मालगुज़ारी वसूल करने के अतिरिक्त डिपुटी कमिश्नर को ज़िले के सम्पूर्ण शासन कार्य का भी नियंत्रण करना पड़ता है। प्रजा का सुख, शान्ति तथा उन्नति ही शासन का प्रधान उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे कई प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। इसी कारण डिपुटी कमिश्नर ज़िले का प्रधान मैजिस्ट्रेट भी बनाया गया है। मैजिस्ट्रेट की हैसियत से वह पुलिस का निरीक्षण करता है एवं सरकार के बनाये हुए नियमों का उल्लंघन करने वालों को दंड देता है। वह किसानों तथा मालगुज़ारों के झगड़ों का निपटारा करता है तथा ज़िले के अन्य मैजिस्ट्रेटों के कार्यों का निरीक्षण एवं नियंत्रण भी करता है। प्रजा के सुख के लिए दुर्भिक्ष के समय वह अकाल पीड़ित किसानों को सरकारी कोष से तक़ावी बाँटता है। वह जनता के लाभ के लिए सरकारी इमारतों, सड़कों, नहरों, पुलों आदि का भी प्रबंध करता है। इसके अतिरिक्त डिपुटी कमिश्नर स्थानीय संस्थाओं जैसे म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि का भी निरीक्षण करता है। तथा आवश्यकता पड़ने पर उचित सलाह आदि देकर सहायता पहुँचाता है। प्रजा के स्वास्थ्य के लिए अस्पताल, बगीचे आदि का प्रबंध तथा शिक्षा

के लिए स्कूलों, पुस्तकालयों आदि का प्रबंध व्यवस्थित करता है। उसे ज़िले के अस्पतालों, जंगल आदि अन्य विभागों का भी नियंत्रण करना पड़ता है। नाबालिग या अयोग्य व्यक्तियों की जायदाद की व्यवस्था करने वाले 'कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स' विभाग का भी प्रबंध डिपुटी कमश्निर के ही ज़िम्मे है। इस प्रकार वह ज़िले के संपूर्ण शासन की सुव्यवस्था का पूर्ण रूप से उत्तरदायी है। इसी कारण डिप्टी कमिश्नर को अपने ज़िले की हर एक बात से परिचित होना आवश्यक है।

सबडिवीज़न और तहसील तथा उन का शासन प्रबंध

शासन कार्य के लिए प्रत्येक ज़िला दो या अधिक भागों में विभक्त किया गया है जिन्हें 'सबडिवीज़न' तथा उसके प्रधान कर्मचारी को 'सबडिवीज़नल आफ़िसर' कहते हैं। अपने ताल्लुक़े या सबडिवीज़न की ज़िम्मेदारी यही पूरी करता है और ज़िले के प्रबंध में डिपुटी कमिश्नर की सहायता करता है। इसे भी डिपुटी कमिश्नर की तरह मैजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। इसी कारण इसे डिपुटी कलेक्टर या एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर कहते हैं।

सब डिवीज़न के अन्तर्गत तहसीलें हैं जिसका प्रधान कर्मचारी तहसीलदार होता है। तहसीलदार की सहायता के लिए नायब तहसीलदार क़ानूनगो, रेव्न्यू इंस्पेक्टर आदि होते हैं। इनका प्रधान कर्तव्य लगान वसूल करना एवं शान्ति बनाये रखना है। इन्हें भी मैजिस्ट्रेट के कुछ अधिकार दे दिए गये हैं। जिससे ये अपने इलाक़े का प्रबंध करते हैं। प्रत्येक तहसील में कई गाँव हैं जिनका प्रबंध लम्बरदार, कोटवार, पटेल तथा पटवारी करते हैं। इनका कर्तव्य सरकारी लगान वसूल कर सरकारी ख़जाने में जमा करना, सफ़ाई रखना, जन्म और मृत्यु की रिपोर्ट करना, किसानों और मालगुज़ारों के अधिकारों का रजिस्टर तथा खेतों आदि के नक़्शे रखना, तथा पुलिस की सहायता करना है।

शासन प्रबंध की सुविधा के लिए अनेकों विभाग बनाये गये हैं।

इन विभागों के लिए प्रत्येक ज़िले में एक एक मुख्य कर्मचारी रहता है। ज़िले का यह कर्मचारी अपने विभाग के ही प्रान्तीय प्रधान कर्मचारी के अधीन है। किन्तु फिर भी हर एक विभाग के निरीक्षण करने का अधिकार डिपुटी कमिश्नर को है। ये सब विभाग डिपुटी कमिश्नर को अपना कर्तव्य पालने में सहायता देते हैं। मुख्य मुख्य विभाग तथा उनके कर्मचारी इस प्रकार हैं—

ज़िले के अन्य मुख्य कर्मचारी एवं उनके कर्तव्य

पुलिस—डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेडेन्ट ऑफ़ पुलिस; अस्पताल—सिविल सर्जन; जेल—डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेंडेन्ट जेल; आबकारी—डिस्ट्रिक्ट एक्साइज़ आफ़िसर; जंगल—फ़ारेस्ट आफ़िसर; पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट—एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर; लैंड रिकार्ड—सुपरिन्टेंडेन्ट लैंड रिकार्ड; शिक्षा—डिपुटी इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स आदि।*

इनके अतिरिक्त न्याय विभाग के भी ज़िले में अनेकों कर्मचारी हैं। इस विभाग के प्रधान कर्मचारी को डिस्ट्रिक्ट जज या डिस्ट्रिक्ट एन्ड सेशन्स-जज कहते हैं। दीवानी अदालतों के अन्य कर्मचारी जो इसकी सहायता किया करते हैं सब जज और मुंसिफ कहलाते हैं। इन दीवानी अदालतों पर प्रान्त की बड़ी अदालत हाईकोर्ट का ही अधिकार है। इनके कार्यों में डिप्टी कमिश्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। इन विभागों के अतिरिक्त कुछ विभाग और हैं जो सीधे भारत सरकार के निरीक्षण में हैं। इनमें भी डिपुटी कमिश्नर हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इस प्रकार जिले का शासन संगठित है जिस पर विशाल भारत सरकार स्थित है।

---

* इन विभागों का तथा इनके कर्मचारियों के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन आगे के परिच्छेदों में दिया गया है।

पाँचवाँ अध्याय

गवर्नमेन्ट का आय-व्यय और बजट

सन् १८३३ से आर्थिक नियंत्रण, केन्द्रिक शासन (Central Government) के अधिकार में चला गया। उस समय से प्रायः जितनी आमदनी होती थी वह गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया के ही फ़ण्ड में जमा होती थी और उसके ख़र्च करने का अधिकार भी उसी के हाथ में था। यदि सूबों की सरकारों को कोई आवश्यकता पड़ती तो वे केन्द्रिक शासन से मांगते थे। सूबों की सरकारों के हाथ में केवल कुछ कर (Cess) वसूल करने और निर्दिष्ट विषयों पर ख़र्च करने का अधिकार रह गया था।

केन्द्रिक सरकार की आर्थिक परिस्थिति इतने पर भी अनेक कारणों से अच्छी न रही। उसका प्रबंध संतोष-जनक न था और फ़ौज पर ख़र्च भी बढ़ता जाता था। कई बार लड़ाइयाँ भी छिड़ती रहीं। परिणाम यह हुआ कि १८५७ तक सरकार के ऊपर कुल मिलाकर साठ करोड़ रुपये का क़र्ज़ लद गया। सन् १८६० तक आमदनी का आधा हिस्सा पुलिस और फ़ौज पर ही ख़र्च हो जाता था। नमक, आयात-निर्यात और स्टाम्प पर कर बढ़ाने पर भी कुछ काम न बना। अतएव इस समस्या के सुलझाने के लिए जेम्स विल्सन साहब सन् १८६० में विलायत से अर्थ सचिव (Finance Minister) बनाकर भेजे गये। उन्हीं के समय से आधुनिक आर्थिक संगठन और सुधार का आरंम्भ होता है। उनके समय के पहले सरकार की आमदनी के, मालगुज़ारी (Land Revenue),

नमक, आयात-निर्यात पदार्थों पर कर (Customs), स्टाम्प ड्यूटी, अफ़ीम और रजवाड़ों से प्राप्त कर आदि मुख्य साधन थे।

विल्सन साहब ने आकर यहाँ के हिसाब किताब रखने के ढंग में सुधार किया, फ़ौज का खर्च भी कुछ घटाया और इन्कम टैक्स पहले पहल पाँच वर्ष के लिए क़ायम किया। इन प्रयत्नों से उन्होंने बहुत कुछ मामला सँभाला। किन्तु कम्पनी से ब्रिटिश सरकार के हाथ प्रबंध आजाने से शासन को सुव्यवस्थित करने एवं उन्नति के साधनों के लिए चारों ओर से रुपये की माँग बढ़ती ही चली जाती थी। जो ज्यादः ज़ोर लगाता और आन्दोलन करता उसको अधिक और जो कम उसे कम मिलता था। आमदनी का उचित विचार सूबों को क्यों होने लगा उनका तो उससे कोई सरोकार ही न था। सूबों को किफ़ायत का भी कुछ ध्यान न था। किफ़ायत करने से उनको क्या लाभ था, यदि लाभ होता भी तो केन्द्रिक सरकार को होता। इस नोच खसोट से ऊबकर लार्ड मेयो ने सूबे की सरकारों को शिक्षा, पुलिस, मेडिकल विभाग का प्रबंध और उनसे प्राप्त आमदनी पर अधिकार दे दिया। किन्तु ये तो आमदनी के नहीं वरन् खर्च करने वाले विभाग थे। इनमें क्या गणनीय बचत हो सकती थी। इसलिए उन्होंने प्रान्तिक सरकारों को वार्षिक बँधी रक़म देना आरंभ कर दिया, (१८७०) और उनसे कह दिया कि यदि वे चाहें तो उस रक़म को क़िफ़ायत से खर्च करके जो कुछ बचावें वह दूसरे कामों में लगायें। यदि इस के अलावा धन की आवश्यकता पड़े तो वे स्वयं अपने यहाँ छोटे हलके टैक्स लगाकर प्राप्त करें। इस प्रथा से सूबों की सरकारों को क़िफ़ायत करने की उत्तेजना हुई और किसी काम में खराबी पैदा हुए बिना ही अन्य आवश्यक कामों के लिए कुछ खर्च निकलने लगा। इस तरकीब से केन्द्रिक सरकार की भी परेशानी और ज़िम्मेदारी हलकी हुई और सूबों की सरकारों को अपनी ज़िम्मेदारी का अनुभव होने लगा। इस संबंध में यदि दोष था तो यह था कि सूबों

की आवश्यकताओं का विचार करके रक़में नहीं दी गई थीं इससे कुछ सूबों को नुकसान रहा।

सन् १८७७ में लार्ड जान स्ट्राची साहब की राय से यह निश्चित किया गया कि सूबों को कुछ मद्दों की आमदनी पर अधिकार दे दिया जाय। तदनुसार सूबों को अपने सूबों से नशीली चीज़ों, स्टाम्प, अदालतों, और ज़मींदारी से प्राप्त कुछ आमदनी से ख़र्च करने का अधिकार दे दिया गया। इसी के साथ ही सूबों के ऊपर मालगुज़ारी (Land Revenue Dept.), मादक पदार्थों के विभाग (Excise Dept.), स्टाम्प विभाग, साधारण शासन प्रबंध (General Administration), स्टेशनरी, क़ानूनी अदालतों के ख़र्च उठाने की ज़िम्मेदारी भी रख दी गयी। इनसे प्राप्त लाभ अथवा इनके कारण हानि में केन्द्रिक और प्रान्तिक सरकार का आधा साझा निश्चित हुआ। इस प्रबंध में अच्छी सफलता हुई।

अतएव सन् १८८२ में केन्द्रिक सरकार से बँधी रक़म देने की प्रथा बिल्कुल उड़ा दी गई और सूबों के अधिकार में आमदनी के कुछ अधिक साधन दे दिये गये। इस नये प्रबंध के अनुकूल आमदनी के साधन तीन हिस्सों में विभक्त हो गये—पहला, इम्पीरियल (गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया) का; दूसरा सूबों का; और तीसरा, दोनों के साझे का। गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया के हिस्से में रहे मालगुज़ारी (Land Revenue), आयात निर्यात कर (Customs), डाकखाना और तारघर, रेलवे, अफ़ीम, नमक, रियासतों का पेशकश (Tributes), टकसाल आदि। सूबे की सरकार के हिस्से में अदालतें, पब्लिक वर्कस (Public Works) और शिक्षा-कर रहे। दोनों के साझे में रहे नशीले पदार्थ, लैसेन्स टेक्स, स्टाम्प, जंगलात और रजिस्ट्रेशन। इस प्रबंध के साथ ही गवर्नमेंट ने सूबों की सरकार को वचन दिया कि साधारणतः वह उनसे लड़ाई का ख़र्च न माँगेगी और दुर्भिक्ष पड़ने पर उनकी सहायता करेगी। इसके अलावा कमी पूरी करने के लिए गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया उनको

मालगुज़ारी से भी एक निर्धारित अंश देगी। यह प्रबंध हर पाँचवें वर्ष निर्धारित किया जायगा। यद्यपि हर पाँचवें साल गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया सूबे की बचत को हथियाती रही जिससे सूबों की सरकार को असंतोष रहता था और साझे की आमदनी के बटवारा करने में भी इन्डिया की सरकार और सूबों की सरकार में झगड़ा पड़ता था; किन्तु फिर भी यह प्रथा सन् १९०४ तक जारी रही।

सन् १९०४ में लार्ड कर्ज़न ने साझा बाँट के झगड़े को कम करने के लिए यह निश्चय किया कि सूबों की आमदनी की मद्दें गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया की आमदनी की मद्दों से बिल्कुल अलाहदा कर दी जायँ। और सूबों की सरकारों को अपनी मद्दों पर पूरा अधिकार दे दिया जाय, वे जो चाहें करें उनकी बचत पर कोई हाथ न लगाये। इस विधान से सूबे की सरकार को संतोष हुआ। उनको अपने मद्दों को किफ़ायत से ख़र्च करने की उत्तेजना और बचत से अन्य आवश्यक काम चलाने की आशा हो गई। उधर गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया का झगड़ा कटा और उसे भी अपनी आमदनी की स्थिरता से लाभ हुआ।

सन् १९१२ में लार्ड हार्डिञ्ज ने सूबों को अपना बजट बनाने का निर्विघ्न अधिकार दे दिया। इसके पहले सूबे के बजट में गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया हस्तक्षेप किया करती थी। इसके अलावा सूबों की आमदनी के मद्द पक्के ही नहीं कर दिये गये किन्तु कुछ और भी बढ़ा दिये गये।

सन् १९१९ में माँटेग्यू चेम्सफ़र्ड सुधार योजना के अनुसार गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया और सूबे की गवर्नमेंट के आय के साधन बिल्कुल पृथक् कर दिये गये। बहुत वाद-विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि केन्द्रिक शासन के अधिकार में आयात-निर्यात कर (Customs) इन्कम टैक्स, रियासतों से पेशकश रेल, डाकख़ाने, तार, व्यापक स्टाम्पों, अफ़ीम और नमक से प्राप्त कर रहें। और सूबों को मालगुज़ारी, सिंचाई, मादक द्रव्यों, जंगलात, अदालत की फ़ीस, रजिस्ट्रेशन फ़ीस, और कुछ साधारण मद्दों से प्राप्त

आमदनी पर अधिकार रहे। इसके अलावा प्रान्तिक सरकार को कुछ शर्तों के साथ सूबे के सुधार के लिए कर्ज़ लेने का भी अधिकार दे दिया गया।

सन् १९१९ की योजना से यथोचित संतोष न हुआ। इसके दो मुख्य कारण हुए। पहला तो यह कि सुधारों के कारण सूबों का ख़र्च बढ़ गया। दूसरा यह कि आमदनी की जो मद्दें सूबों को मिलीं वे लचीली और उन्नतिशील न थीं। यह दोष केन्द्रिक सरकार की आमदनी की मद्दों में न था। इन कठिनाइयों का विचार करके सन् १९३५ के सुधारों द्वारा यह तै हुआ कि केन्द्रिक सरकार की कुछ अन्य मद्दों की भी आमदनी सूबों की सरकार को दे दी जाय। कृषि के अलावा प्रत्येक सूबों से प्राप्त अन्य जायदादों (Capital value of the assets), उत्तराधिकार, बैंकों के स्टाम्प पर कर, जो फेडरल सरकार वसूल करके उस सूबे की सरकार को दे देगी। सूबे की आमदनी टेक्स (Income tax) का भी एक निर्धारित भाग सूबे को दिया जायगा, कारपोरेशन टेक्स (दस वर्ष तक), नमक, मादक पदार्थ, आयात-निर्यात (Import Export Duty) फेडरल सरकार वसूल करके या तो कुल या कुछ सूबे को दे दिया करेगी। जूट पर कर से किसी सूबे को जो आमदनी होगी उसका कम से कम आधा हिस्सा उस सूबे को दे दिया जायगा। इस प्रकार सूबों की आमदनी बढ़ाने की सूरत निकाली गयी है।

जानकारी के लिए केन्द्रिक और प्रान्तिक शासन की आय के साधनों पर कुछ अधिक विचार की अवश्यकता है। सुगमता के लिए उन पर पृथक् पृथक् विचार करना चाहिए।

केन्द्रिक शासन की आय

केन्द्रिक सरकार की आय के मुख्य साधनों में सबसे महत्त्व **आयात-निर्यात** कर का है क्योंकि इससे सबसे अधिक आमदनी होती है। सिपाही

विद्रोह के पहले आयात (Imports) कर ३॥) से ५) सैकड़ा उन सब चीज़ों पर जो जलमार्ग से भारत में आती थीं, वसूल किया जाता था। ग़दर के बाद यह दुगना कर दिया गया किन्हीं पदार्थों पर चौगुना भी कर दिया गया। फिर १८६४ में ३॥) प्रतिशत, १८७५ में ५) प्रतिशत हुआ, और १८८२ में उठा दिया गया। सन् १८८२ से १८९४ तक आयात पर कर न था। सन् १८९४ में आर्थिक आवश्यकताओं के कारण वह फिर ५) सैकड़ा के हिसाब से लगाया गया। किन्तु धीरे धीरे वह सन् १९२२-२३ में प्रायः १५) सैकड़ा और बाज़ शौक़ की चीज़ों पर ३०) सैकड़ा हो गया। कुछ चीज़ों में जैसे औज़ार (Machinery) मशीन; आदि पर पन्द्रह से कम भी है और कुछ पर तीस से भी अधिक है। निर्यात वस्तुओं में से जिन पर कर लगता है मुख्य हैं, जूट, चावल, चमड़ा और खाल। इस टैक्स से १९३३-३४ में सरकार को ४५ करोड़ सत्तर लाख की आमदनी हुई।

इन्कमटेक्स—यह टेक्स पहले पहल सन् १८६० में विल्सन साहब ने पाँच वर्ष के लिए क़ायम किया था ताकि सरकार की शोचनीय आर्थिक दशा सँभल जाय। उस समय दो सौ रुपये की आमदनी से पाँच सौ वाले तक पर २) सैकड़ा और उससे अधिक आमदनी पर ४) सैकड़ा पड़ता था।

यह स्मरण रखने योग्य बात है कि उस समय यह टैक्स ज़मीन की आमदनी पर भी था और दायमी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) वाले ज़िमींदारों तक को देना पड़ता था। सन् १८६२ में यह पाँच सौ की आमदनी के नीचे लगना बन्द हो गया और एक साल बाद इसकी दर ३) सैकड़ा कर दी गई। सन् १८६५ में यह बन्द हो गया। किन्तु आवश्यकता रहने के कारण १९६७ में लैसेन्स टैक्स के नाम से सब रोज़गार और धन्धों पर टेक्स लगाया गया। इसकी विशेषता यह थी कि अब की बार ज़मीन से आमदनी पर टेक्स नहीं लगाया गया। टेक्स की दर

भी पहले से कम रखी गई। इसी तरह इसमें उलट-फेर होते चले गये और ज़मीन की आमदनी पर भी टेक्स लगने लगा। सन् १८७२ में यह टेक्स हटा दिया गया और कह दिया गया कि अब वह न लगाया जायगा। किन्तु १८७७ में यह फिर लैसेन्स टैक्स के नाम से चला। १८७८ में यू० पी०, पंजाब, और उसके बाद बंगाल, मद्रास और बम्बई सूबों में यह फैल गया। किन्तु सब सूबों में एक सा विधान न था। कहीं कम और कहीं अधिक रहा। ज़मीन से आमदनी, सरकारी नौकर और धन्धेवाले (Professional Classes) इससे मुक्त थे। किन्तु सन् १८८६ से ज़मीन की आमदनी को छोड़ हर प्रकार की आमदनी पर, जो २०००) से कम न हो यह इन्कमटेक्स के नाम से २½ रु० सैकड़ा की दर से क़ायम कर दिया गया। किन्तु यह विधान स्थिर न रहा। आमदनी की रक़म और टेक्स के दर में उलट-फेर, और कमी-बेशी होती रही लेकिन वह हटाया कभी न गया। सन् १९१६-१७ में इसका नवीन संस्करण हुआ क्योंकि यूरोपीय महायुद्ध के कारण धन की बड़ी ही आवश्यकता पड़ गई। अबकी बार २०००) से कम आमदनी पर तो टेक्स न लगा, किन्तु उसके ऊपर, आमदनी की बढ़ती के साथ क्रमशः टेक्स का रेट भी बढ़ा दिया गया। यही नहीं पचास हज़ार रुपये साल से ऊपर की आमदनी पर इसके अलावा 'सुपर टेक्स' के नाम से और टेक्स बढ़ा दिया गया। सन् १९२२ में इन्कम टेक्स की दर २½) सैकड़े से क्रमशः १०) सैकड़ा, और सुपर टेक्स की दर ३८) सैकड़ा तक हो गया। व्यापार करनेवालों को विशेषतः यह टेक्स बहुत खलता है। इससे सन् १९३४—३५ में १७ करोड़ ७५ लाख आमदनी गवर्नमेंट की हुई।

नमक का कर—यह टेक्स क्लाइव के समय में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के साथ कम्पनी को मिला। पहले नमक बनाने का ठेका सरकार के हाथ में था। सन् १८६९ से १८७७ तक इस टेक्स का दर ३¼ रुपये से लेकर कुछ आनों तक देश के विभिन्न स्थानों में

था। कुछ परिवर्तनों के बाद सन् १८८२ में इसका दर २) मन हो गया। चूँकि नमक का इस्तेमाल ग़रीब और जानवर भी करते हैं अतएव पब्लिक के नेताओं ने इसको और घटवाने का प्रयत्न किया। सन् १९०५ में यह १½ रु० मन हो गया। १९०८ में १¼ रु० रह गया। सेप्टेंबर १९३३ से नमक कर १।।८) है इसके अतिरिक्त विदेश से आने वाले नमक पर ≡) मन टेक्स अधिक लगता है। सन् १९३५-३६ में इससे सरकार को आठ करोड़ नेहत्तर लाख रुपया मिला।

अफ़ीम—अफ़ीम का प्रयोग भारत, चीन आदि देशों में पुराने समय से हो रहा है। सन् १७९७ तक अफ़ीम पैदा करने और बनाने का ठेका कम्पनी की सरकार दिया करती थी। किन्तु उसके बाद से अफ़ीम बनाने का काम कम्पनी ने अपने हाथ में ले लिया। तब से पोस्ता की खेती का नियंत्रण और अफ़ीम बनाना सरकार स्वयं करती है। अफ़ीम प्रायः बिहार, यू० पी० और राजपूताने में अधिकतर पैदा होती है। इसके प्रबन्ध के लिए पटना और ग़ाज़ीपुर में मुख्य दफ़तर क़ायम किये गये। सन् १८५० में एक पेटी (१४० पौंड की) के तैयार करने में सरकार का २८०) खर्च होता था जो १९०३ में ५००) हो गया। यह पेटियाँ प्रायः चीन भेजने के लिए तैयार होती हैं। कुछ देश में ख़र्च के लिए रख ली जाती हैं। अफ़ीम से सरकार को सन् १८८१ में छः करोड़ आमदनी हुई। सन् १९०३ में वह गिरकर ३¼ करोड़ और सन् १९३० में २ करोड़ पैंतीस लाख, सन् १९३३-३४ में १ करोड़ ५९ लाख हो गई। इस बात का बहुत दिनों तक आन्दोलन होता रहा कि सरकार चीनियों को अफ़ीमची बना रही है, चीन ने भी सुधार करना आवश्यक समझा। सन् १९२६ से प्रतिवर्ष दसवाँ हिस्सा कम हो रहा है। इस हिसाब से सन् १९३५ में अफ़ीम का बाहर भेजना बन्द हो जाना चाहिए। सर्फ़ देश के ख़र्च और दवा दारू के लिए आवश्यकतानुसार कुछ रोज़गार रह जायगा। अफ़ीम से आमदनी नाममात्र को रह जायगी।

डाकख़ाना और तार—डाकख़ाने का आरम्भ सन् १८३७ से हुआ किन्तु सन् १८५४ मे इसकी बाक़ायदा वृद्धि होने लगी। सन् १८५१ मे तार का भी आरम्भ हुआ और तब से बराबर उन्नति होती रही। किन्तु इन विभागों में ख़र्च बढ़ता गया और लाभ के बदले नुकसान ही अधिक होता रहा। इन दोनों मे सन् १९०२–३ में सिर्फ़ ५ लाख का फ़ायदा हुआ। सन् १९३३–३४ में इनमे ५ लाख के लगभग घाटा हुआ। किन्तु इनकी वृद्धि होती रही जिससे देश को आर्थिक और अन्य प्रकार के अनेक लाभ हुए। अतएव इनके घाटे से इनके द्वारा प्राप्त लाभ का अनुमान नहीं किया जा सकता। तथापि नक़द फ़ायदे की दृष्टि से इन विभागों पर अभी कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। ये नगण्य हैं।

रेल—रेल का आरम्भ सन् १८४५ से हुआ। चूँकि रेलों के निकालने में ख़र्च बहुत पड़ता और सरकार के पास धन की कमी थी अतएव उसने विलायत की कम्पनियों को ठेका दे दिया कि वे अपना धन लगा कर, जिस पर सरकार उनको ५) सैकड़ा सूद देगी, रेलें खोलें। सरकार ने ज़मीन मुफ़्त में दी। रेलों से पहले यथेष्ट लाभ न हुआ अतएव आय-व्यय पर गहरा निरीक्षण करने पर भी सूद की कमी पूरी करने के लिए सरकार को भारी रक़म अपनी गाँठ से देनी पड़ती थी। सन् १८७० से सरकार को स्वयं अपनी रेलें निकालने की सूझी। इसके लिए भी पहले कर्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ी। किन्तु उन्नति बड़ी ही सुस्त दिखाई पड़ी इसलिए सन् १८७९ मे सरकार ने संस्थाओं के साथ साझा करके रेलें खुलवाने की प्रथा निकाली। सन् १८८९ मे सरकार ने अधिक प्रयत्न करने की चेष्टा की। इसके अलावा पुरानी कम्पनी का ठेका ख़तम होने पर सरकार ने उनको स्वयं अपने अधिकार में लेने की नीति निकाली। (सन् १९३०) तक ४०,००० हज़ार मील तक रेल की सड़कें फैल गयीं। और जितनी पुरानी ठेकेवाली कम्पनियाँ थीं वे सरकार के अधिकार में हो गईं। इस समय भारत सरकार का संगठन संसार के सबसे बड़े रेलवे संगठनों में

गिना जाता है और भविष्य में इसमें उत्तरोत्तर लाभ की संभावना है। रेलों पर लगभग ८०० करोड़ रुपया लगा हुआ है।

सबसे पहले सन् १९०३ में सरकार को रेलों से थोड़ा सा लाभ हुआ। यद्यपि १९०८-९ में कुछ घाटा रहा किन्तु उसके बाद लाभ होता रहा। सन् १९३० में सरकार को रेलों से सवा छः करोड़ फ़ायदा हुआ। १९३० के पश्चात् फिर नुक़सान होने लगा। सन् ३३-३४ में न लाभ ही हुआ और न नुकसान ही। यह आन्दोलन हो रहा है कि सरकार रेलवे का व्यापारिक ढंग से संगठन और संचालन करे ताकि व्यय घटे, व्यर्थ नुकसान न हो और आय बढ़ाने का प्रयत्न हो। जब ऐसा प्रबन्ध हो जायगा तब अवश्य लाभ होगा।

टकसाल—यों तो सन् १६७१ में बम्बई में कम्पनी ने सिक्का ढालना शुरू किया किन्तु सारे ब्रिटिश इण्डिया के लिए एक से सिक्के ढालने की प्रथा सन् १८३५ से चली। सिक्कों के ढालने और चलाने से सरकार को सन् १९३० में तीन करोड़ छः लाख, सन् ३४-३५ में १ करोड़ २९ लाख का फ़ायदा हुआ।

रजवाड़ों से कर—यह कर कुछ रजवाड़ों को खुद फ़ौज रखने के बदले सरकार को फ़ौज के लिए आपस की शर्त के अनुकूल देना पड़ता है। इस मद्द से सरकार को सन् १९३३-३४ में कुल चौरासी लाख मिला। इसके बढ़ने की अधिक संभावना इस समय नहीं है।

केन्द्रिक शासन का व्यय

फ़ौज—केन्द्रिक शासन का सबसे बड़ा ख़र्च फ़ौज पर होता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि सन् १८३० के पहले सरकार की आमदनी का आधा हिस्सा फ़ौज और पुलिस पर ख़र्च हो जाता था। इस ख़र्च के घटाने का प्रयत्न भी किया गया। किन्तु अनेक युद्धों, युद्ध विद्या और

शस्त्रों में परिवर्तनों के कारण सफलता न हुई। उलटे ख़र्च बढ़ता गया। सन् १८७३ में १३ करोड़ ४० लाख से, १९०४ में ३० करोड़ २० लाख और यूरोपीय महायुद्ध के कारण ६६ करोड़ हो गया। बड़े प्रयत्न करने से सन् १९३० में ५५ करोड़ और अब लगभग ५० करोड़ है।[१]

कर्ज़ का सूद—ऊपर लिखा जा चुका है कि १८६० में सरकार पर ३० करोड़ क़र्ज़ था। युद्धों के कारण एवं रेलों, नहरों आदि के निकालने के कारण यह कर्ज़ बढ़ते बढ़ते सन् १९२९ तक १०७४ करोड़ तथा १९३५ तक १२३५½ करोड़ हो गया। इसमें से १७१ करोड़ तो ऐसे हैं जिन पर सूद देने के सिवा किसी भी लाभ या हित का साधन नहीं होता। सारांश यह कि भारत की सरकार को बारह करोड़ चौदह लाख रुपया केवल सूद में ही देना पड़ता है। इस कर्ज़ से उऋण होने के कोई लक्षण अभी तक दिखायी नहीं पड़ते।

शासन का अन्य खर्च—केन्द्रिक सरकार पाँच छोटे सूबों का प्रबन्ध करती है। ये हैं पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त[२], ब्रिटिश बलूचिस्तान, अजमेर-मारवाड़, देहली सूबा और अन्दमन द्वीप। इसके अलावा राजनैतिक विभाग (Foreign and Political Departments), खोज (Research), खेचर (Civil Aviation) और वायुमण्डल विभाग (Meteorology), आदि अनेक विभाग उसके ज़िम्मे हैं। इन सब पर सन् १९३४–३५ में १२½ करोड़ रुपये से अधिक ख़र्च हुआ। इनके अलावा पेन्शनों और मालगुज़ारी वसूल करने के प्रबन्ध पर भी सन् १९३० में ११ करोड़ १५ लाख खर्च हुआ।

---

[१] इसका विस्तृत वर्णन सेना विभाग के अध्याय में देखिए।

[२] अब अलाहदा सूबा हो गया है। किन्तु इसका ख़र्च इसकी आमदनी से पूरा नहीं होता अतएव भारत की सरकार को कमी पूरी करनी पड़ती है।

प्रान्तिक सरकारों की आमदनी

जमीन से मालगुजारी—प्रान्तीय सरकार की आमदनी का सबसे बड़ा साधन ज़मीन से मालगुज़ारी है। इसके द्वारा यू० पी० की सबसे अधिक ७ १/१० करोड़ और आसाम की सब से कम १ १/४ करोड़ आमदनी है। सी० पी० की २ करोड़ पैंतालीस लाख, बिहार की १ करोड़ ७३ लाख है। ऊपर लिखा जा चुका है कि सूबों की ज़मीन की मालगुज़ारी का प्रबन्ध अब सूबे की व्यवस्थापिका सभा के हाथ में कुछ शर्तों के साथ दे दिया गया है। किसानों की ग़रीबी और ज़मीन की कमज़ोरी के कारण लगान बढ़ाने के ख़िलाफ़ तो पब्लिक है ही सरकार भी हिचकिचाती है। फलतः इस मद में अभी अधिक फैलने की गुंजायश नहीं दिखाई पड़ती है। बन्दोबस्त की मियादें भी अब लम्बी कर दी गई है और लगान बढ़ाने की अन्तिम हद भी निश्चित होने लगी है।

मादक वस्तुओं से आय—मादक द्रव्यों के पैदा करने अथवा उन के बेचने का ठेका देने से भी सरकार को लाभ होता है। शराब, गांजा, भाँग, चरस आदि इसी विधान से नियंत्रित हैं। अभी तक तमाखू की गणना इसके अन्तर्गत नहीं है। यद्यपि सन् १९३५ में इस ओर बाज सूबों की सरकार का ध्यान गया है। सन् १९३० में इस मद से मद्रास को साढ़े पाँच करोड़ का लाभ हुआ: जो सब सूबों से अधिक है, यू० पी० को १ करोड़ ३७ लाख, सी० पी० को १ करोड़ २८ लाख और बिहार को १ करोड़ ९१ लाख फ़ायदा हुआ। मादक वस्तुओं के निषेध के लिए देश में अनेक प्रकार के आन्दोलन हो रहे हैं। व्यवस्थापिका सभाएँ भी कह रही हैं कि सरकार को ऐसी नीति बरतना चाहिए कि जिससे मादक वस्तुओं का प्रचार यदि एक दम रुक न सके तो कम तो अवश्य ही हो जाय। इस-लिए यह कहना कठिन है कि इन चीज़ों से आगे चल कर सरकार की आम-दनी बढ़ सकेगी अथवा नहीं।

स्टाम्प फ़ीस—अदालतों में जो मुक़द्दमे दायर होते हैं अथवा रजिस्ट्री आदि होती है, या दस्तावेज़ लिखे जाते या रसीदें दी जाती हैं उनके द्वारा सरकार को फ़ीस मिलती है। इस मद्द से जिस सूबे में जितना व्यापार, मुकद्दमे बाज़ी या लेन देन होता है उसे उतना ही लाभ होता है। सन् १९३० में बंगाल सूबे की आमदनी ४ करोड़ २२ लाख इस मद्द से रही, यू० पी० की एक करोड़ उन्नासी लाख, सी० पी० को सिर्फ़ पचहत्तर लाख और बिहार को १ करोड़ १२ लाख का फ़ायदा हुआ।

सिंचाई—नहरों, बड़े तलाबों के द्वारा गवर्नमेन्ट ने सिंचाई का क्षेत्र बहुत बढ़ा दिया है। सरकारी साधनों द्वारा दो करोड़ दस लाख एकड़ ज़मीन सींची जाती है। पानी लेने के लिए पानी लेनेवाले को महसूल देना पड़ता है। जिस सूबे में जितना अच्छा और अधिक प्रबन्ध है उसको उतना ही लाभ होता है। कहीं कहीं—जैसे बर्मा, सिंध और मद्रास में सिंचाई का महसूल अलग न लेकर लगान में ही शामिल कर लेते हैं। इस मद्द से पंजाब की आय सब से अधिक है। सन् १९३० में उसे ४½ करोड़, यू० पी० को एक करोड़ ९ लाख; बिहार को १८ लाख और सी० पी० को सबसे कम कुल २ लाख लाभ रहा।

जंगलात—जंगलों में लकड़ी, लाख आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ पैदा होती हैं जिनसे सरकार को लाभ होता है। इस साधन से बरमा में एक करोड़ छिहत्तर लाख,[1] यू० पी० को ५९ लाख, सी० पी० को ५८ लाख लाभ होता है। बिहार को केवल ११ लाख मिलता है जो सब सूबों से कम है।

इसके अलावा बाज़ जगहों पर विनोद के साधनों जैसे थियेटर, सिनेमा, घुड़दौड़ आदि पर भी कर लिया जाता है किन्तु इससे इतना

---

[1] इसमें रबर की रायल्टी गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया वसूल करती है।

लाभ नहीं होता कि विशेष ध्यान देने योग्य हो। जानवरों, नावों विज्ञापनों, इमारतों, चुङ्गी आदि से भी कर मिलता है। पीछे लिखा जा चुका है कि सन् १९३५ के एक्ट ने प्रान्तिक सरकारों को फेडरल शासन की आय में से कुछ और साधन दिला दिये। उत्तराधिकार का कर; हुण्डी, चेक, बीमा आदि से प्राप्त फीस, सूबे में आयात और मुसाफिरों से या रेल के किराये से प्राप्त कर केन्द्रिक सरकार वसूल करके सूबे को दे देगी। इसी प्रकार आमदनी के कर (Income tax) का कुछ हिस्सा देगी। भारत में आने वाले माल की चुङ्गी, मादक पदार्थों एवं मादक मिश्रित वस्तुओं से प्राप्त कर, एवं नमक के महसूल को या तो पूरी तौर पर या उसका कुछ निश्चित भाग सूबे को मिला करेगा। जूट पैदा करने वाले सूबे को जूट-निर्यात कर का आधा या उससे अधिक भाग दे दिया जायगा। कुछ नये सूबे जैसे आसाम, उड़ीसा, सिन्ध और पश्चिमोत्तर प्रान्त अपनी आय से भली भाँति नहीं गुजारा कर सकते। अतएव उनको केन्द्रिक सरकार निर्दिष्ट आर्थिक सहायता देगी। पश्चिमोत्तर प्रान्त को इस प्रकार एक करोड़ रुपया वार्षिक मिलना है।

प्रान्तिक सरकार का व्यय

सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार प्रान्तिक सरकार का व्यय दो भागों में विभक्त किया जाता था। एक तो वह है जो गवर्नर के ही अधीन था और जिसे रक्षित (Reserved) विषय कहते हैं। दूसरे के अन्तर्गत वे विभाग थे जो मिनिस्टरों के द्वारा निरीक्षण किये जाते हैं। उनको हस्तान्तरित (Transferred) कहते थे। किन्तु १९३५ के सुधारों ने इस भेद को हटा दिया क्योंकि अब कोई विषय रक्षित नहीं रहेगा। एक तरह से फिर भी दो विभाग किये जा सकते हैं। एक विभाग के

अन्तर्गत वे मद्दें हैं जिनका ख़र्च सूबे को देना अनिवार्य है जैसे सरकारी नौकरों का वेतन, पेन्शन आदि। दूसरे विभाग में वे मद्दें हैं जिन पर व्यय करने के लिए व्यवस्थापिका सभा की अनुमति आवश्यक है। सब का ख़र्च साधारणतः निम्न सूचित विषयों पर होता है।

जमीन कर (Land Revenue) **और साधारण शासन**—इन पर अधिक रक़म ख़र्च होती है। सन् १९३० में इस मद्द में सब से अधिक ख़र्च बम्बई का दो करोड़ ९५ लाख था। इसके बाद मद्रास का। यू० पी० में दो करोड़ सैंतीस लाख, सी० पी० में १ करोड़ तीन लाख और बिहार में १ करोड़ २ लाख ख़र्च हुआ।

पुलिस—इस विभाग पर भी अच्छी रक़म ख़र्च होती है। सन् तीस में इस मद्द में बंगाल में सबसे अधिक २ करोड़ इकहत्तर लाख रुपया ख़र्च हुआ। यू० पी० में १ करोड़ ७१ लाख, सी० पी० में सिर्फ़ ६२ लाख ख़र्च हुआ।

न्याय और जेल विभाग भी ख़र्च का भारी द्वार है। इस पर भी बंगाल में १ करोड़ ४९ लाख, सी० पी० में ४४ लाख और बिहार में ६२ लाख का व्यय हुआ।

क़र्ज़, पेन्शन आदि—इन मद्दों पर कुल मिला कर बहुत भारी रक़म ख़र्च होती है। इन मद्दों में बम्बई में ४ करोड़ अट्ठावन लाख, यू० पी० में ३ करोड़ २९ लाख, पंजाब में २ करोड़ २० लाख और सी० पी० में एक करोड़ छः लाख।

शिक्षा विभाग—हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा सबसे मुख्य है। इसके लिए सन् १९३० में मद्रास ने २५७ लाख, यू० पी० ने १९१, पंजाब ने १६७, बिहार ने ८९ और सी० पी० ने ५७ लाख ख़र्च किये। सब सूबों में मिला कर १,२५३ लाख रुपया १९३० में ख़र्च हुआ।

निर्माण विभाग—इमारतों, सड़कों, नहरों आदि पर कुल मिला कर सन् १९३० में ९७९ लाख व्यय हुआ। इसमें भी मद्रास ने सबसे अधिक

अर्थात् २१३ लाख, यू० पी० ने ७९ लाख, पंजाब ने १६६ लाख, बिहार ने ५३ लाख और सी० पी० ने ८३ लाख व्यय किया।

चिकित्सा और स्वास्थ्य—सब सूबों में मिला कर इसमें सन् १९३० में ६८८ लाख व्यय हुआ। इसमें भी मद्रास ने सबसे अधिक व्यय किया। यू० पी० ने ६६ लाख, पंजाब ने ८१, बिहार ने ५० और सी० पी० ने २२ लाख व्यय किया। यह स्मरण रखना चाहिए कि सन् १९२२ और १९३० के बीच में इस मद्द में १९० लाख रुपये का खर्च बढ़ गया जिससे स्पष्ट है कि इस ओर सरकार ने काफ़ी ध्यान दिया है।

उपर्युक्त मद्दों के अलावा अन्य जितने विभाग हैं उन पर सन् १९३० में सब सूबों में मिलाकर ८५७ लाख ख़र्च हुआ है। मद्रास ने सबसे अधिक, यू० पी० ने ८२, पंजाब ने १२९, बिहार ने ५४ और सी० पी० ने ४६ लाख रुपया व्यय किया है।

बजट—यह स्पष्ट है कि शासन के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता है। सरकार की आमदनी और ख़र्च की कुछ मद्दें तो निश्चित हैं किन्तु उनमें भी घटाने बढ़ाने के प्रश्न उठा करते हैं। इसके अलावा बढ़ते हुए शासन के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता पड़ती रहती है जिसको प्राप्त करने के साधन भी ढूँढ़ने पड़ते हैं। इस प्रकार की जितनी समस्याएँ हैं उनका प्रति वर्ष मंत्रिवर्ग आपस में मिलकर विचार करते हैं। वे लोग आमदनी में से पहले तो जो धन केन्द्रिक सरकार को मिलना चाहिए उसे अलाहदा कर देते हैं। इसके बाद अन्य विषयों के ख़र्च को निकालते हैं। प्रायः आपस में उनमें समझौता हो जाता है। यदि कभी कुछ अड़चन रह गई तो गवर्नर निर्णय कर देता है।

आपस में निर्णय हो जाने पर उसके अनुसार आय-व्यय का चिट्ठा तैयार किया जाता है। यदि किसी प्रकार के नये ख़र्च का प्रस्ताव होता है तो वह व्यवस्थापिका द्वारा चुनी हुई "स्थायी अर्थ समिति" (Standing Finance Committee) के पास परामर्श के लिए

[illegible] है। इस समिति को कई वर्ष के लिये व्यवस्थापिका सभा [illegible] से चुन लेती है। केन्द्रिक समिति में १४ सदस्य हैं। [illegible] सूबों को छोड़ कर प्राय हर सूबे की व्यवस्थापिका सभाओं ने [illegible] समितियाँ निर्वाचित कर ली हैं। ये समितियाँ कार्यकारिणी और मंत्रियों द्वारा किये गये नये खर्च के प्रस्ताओं पर विचार करके परामर्श देती है। यद्यपि उनकी राय मानना अनिवार्य नहीं किन्तु प्रायः वह मान ली जाती है। उसके अनुसार आय-व्यय के चिट्ठे में यथोचित सुधार कर दिया जाता है।

यह चिट्ठा मार्च में अर्थ मेम्बर (Finance Member) व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख पेश करते हुए एक स्पीच देता है जिसमें वार्षिक आय-व्यय की आलोचना और उन कारणों एवं सिद्धान्तों की विवेचना होती है जिनके आधार पर चिट्ठे में खर्च या आमदनी के साधन बढ़ाने के प्रस्ताव किये गये हैं। यह वक्तव्य प्रायः बड़े महत्त्व का होता है। इसी को "बजट स्पीच" कहते हैं।

अर्थ मेम्बर के वक्तव्य के पश्चात् व्यवस्थापिका सभा में साधारण बहस होती है। सदस्य लोग शासन और आर्थिक नीति की आलोचना और सरकारी दल उसका समर्थन करता है। इस अवसर पर कोई विशेष प्रस्ताव नहीं किये जाते। इस के पश्चात् निश्चित दिनों में आय-व्यय की मद्दें अलाहदा अलाहदा अर्थ मंत्री व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति के लिए पेश करता है। ये मद्दें केवल वे ही है जिन पर कि व्यवस्थापिका सभा को वोट करने का अधिकार है। जिन पर उसे वोट देने का अधिकार ही नहीं वे मद्द यों ही स्वीकृत मान लिये जाते है। हाँ, गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो वोट न देने वाले विषयों पर भी आलोचना की अनुमति दे सकता है। इस प्रकार की अनुमति वह प्रायः दे देता है। इसके अलावा भी सदस्य लोग इन मद्दों में, जिन पर कि वे वोट दे सकते है, और जिनका सम्बन्ध वोट न देने

वाले विषयों में है, कमी कर देने का प्रस्ताव करके उन पर आलोचना करने का अवसर निकाल लेते हैं। यदि सब मद्दों पर बहस की जाय तो सम्भव है कि महीनों में भी बहस समाप्त न हो सके अतएव अर्थ मंत्री व्यवस्थापिका सभा के विभिन्न दलों के नेताओं से पूछ लेता है कि वे किन किन विषयों पर बहस करना चाहते हैं। इन्हीं विषयों पर सभा में बहस होती है। अन्य सब बिना बहस के ही स्वीकृत हो जाते हैं। यदि सरकार द्वारा किए प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा से स्वीकृत हो गये तब तो कोई कठिनाई नहीं रहती। किन्तु यदि किसी प्रस्ताव के विरुद्ध व्यवस्थापिका सभा में बहुमत हो गया तब या तो अर्थ मंत्री या अन्य मंत्री उसको मान लें। यदि वे न मानें तब वे गवर्नर जनरल या गवर्नर से अपनी स्वीकृति देने की प्रार्थना करते हैं। यदि गवर्नर जनरल या गवर्नर उचित समझता है तो वह अपनी स्वीकृति दे देता है और वह या वे मद्द भी मंजूर समझ लिये जाते हैं। व्यवस्थापिका सभाओं को उसकी सूचना दे दी जाती है।

इस प्रकार बजट पास होने पर उसके अनुसार काम होने लगता है। यदि किसी मद्द में किसी कारण कमी पड़ गई तो उसके पूरे करने के लिए उचित अवसर पर अर्थ मंत्री या मंत्री व्यवस्थापिका सभा से स्वीकृति माँग लेता है। यह प्रायः उसे मिल जाती है। न मिलने पर गवर्नर की स्वीकृति की आवश्यकता हो सकती है।

केन्द्रिक सरकार में दो सभाएँ हैं एक Legislative Assembly और दूसरी Council of State. यद्यपि आय-व्यय का चिट्ठा काउन्सिल आफ़ स्टेट के सम्मुख भी उपस्थित किया जाता है और दोनों सभाओं में स्वीकृति के प्रस्तावों का पास होना आवश्यक है किन्तु बजट के मद्दों पर ख़र्च करने की आज्ञा Legislative Assembly से ही माँगी जाती है और बिना उसकी आज्ञा के बजट स्वीकृत नहीं समझा जाता। यदि दोनों सभाओं में गहरा मतभेद हो तो

दोनों की संयुक्त बैठक की आवश्यकता हो सकती है। किन्तु ऐसी आवश्यकता कभी पड़ी नहीं। Council of State प्रायः कुछ वाद विवाद के बाद बजट पास कर देती है। यदि Legislative Assembly ने बजट अस्वीकृत किया तो जैसा लिखा जा चुका है गवर्नर या गवर्नर जनरल उसे अपने विशेष अधिकार से स्वीकृत कर देता है। ऐसा करने में उसे एक 'सार्टिफिकेट' देना पड़ता है।

छठवाँ अध्याय

सरकारी शासन विभाग—केन्द्रिक तथा प्रान्तीय

Departments of Govt. Central & Provincial

भारतवर्ष से विशाल देश के शासन के लिये बड़े भारी शासन यंत्र की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। शासन का कर्तव्य केवल शान्ति रखना और न्याय करना ही नहीं वरन् उसकी आर्थिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति के भी साधन उपस्थित करना है। अतएव धीरे धीरे शासन के कर्तव्यों के साथ उसका कार्य क्षेत्र भी बढ़ता गया और बढ़ता जा रहा है। भारत का शासन इन्हीं कारणों से बहुत बढ़ गया है। यह यंत्र यद्यपि आदर्श न हो किन्तु ब्रिटिश रचना चातुरी के कारण अद्भुत ही नहीं वरन् सुसंगठित और सुव्यवस्थित भी है।

पिछले अध्यायों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भारत का शासन मुख्यतया केन्द्र और प्रान्तों से होता है। केन्द्रिक सरकार अपने कार्यों का सम्पादन अपने शासन यंत्र से करती है और प्रान्तिक सरकार अपने। यद्यपि केन्द्रिक सरकार ने अपने बहुत से कर्तव्य और अधिकार अब स्थानिक सरकार को दे दिये हैं तथापि उसका कार्यक्षेत्र तो पहले ही का सा विस्तृत है और उसके आधुनिक कर्तव्य अब भी बहुत हैं। दोनों शासनों के संगठन को समझने के लिए उचित है कि दोनों का वर्णन अलाहदा अलाहदा किया जाय।

केन्द्रिक शासन

पीछे कहा जा चुका है कि १९१९ के एक्ट के अनुसार केन्द्रिक शासन के प्रमुख विभाग आठ हैं—सेना*, पोलिटिकल, अर्थ, क़ानून, व्यापार, शिक्षा, स्वदेश (Home), और उद्योग धंधा। इनमें से प्रायः प्रत्येक विभाग का मुख्याधीश एक 'मेम्बर' होता है जो गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति का सदस्य होता है। चूँकि पोलिटिकल विभाग का सञ्चालन गवर्नर जनरल स्वयं करता है अतएव कार्यकारिणी सभा के सदस्यों की संख्या सात रह जाती है। इनमें से प्रत्येक विभाग के कार्य-सञ्चालन के लिये अनेक उप विभाग और अफ़सर होते हैं। †

(१) **पोलिटिकल विभाग**—इस विभाग का मुख्य कर्तव्य है कि यह भारत की सरकार का देशी एवं एशिया के कुछ अन्य राज्यों के साथ सम्बन्ध का निरीक्षण करे। इस हैसियत से इसका कार्य क्षेत्र अफ़्रीका के तट से स्याम और आस्ट्रेलिया तक फैला है। इस विभाग का मुख्याधीश गवर्नर जनरल है जिसकी सहायता एवं उपविभागों के कामों का विभाजन और संयोजन करने के लिए दो पोलिटिकल सेक्रेटरी होते हैं। एक तो सीमाओं से संबन्ध रखने वाले विषयों के लिये (Foreign Secretary) और दूसरा देशी रियासतों के मामलों के लिए (Political Secretary), तीन डिप्टी सेक्रेटरी, एक अन्डर सेक्रेटरी, एक मुख्य सैनिक मंत्री (Military Adviser-in-Chief), तीन असिस्टेन्ट सेक्रेटरी, एक Staff Officer

---

* सेना विभाग का वर्णन सातवें अध्याय में देखिये।

† अब १९३५ के एक्ट से कार्यकारिणी समिति का रूप बदल जायगा। हस्तान्तरित विषयों का तो गवर्नर जनरल मंत्रियों की सहायता से जिनकी संख्या अधिक से अधिक दस होगी, और रक्षित विषयों का तीन सचिवों (Counsellors) के द्वारा शासन करेगा।

और बारह सुपरिन्टेंडेन्ट होते हैं। प्रत्येक सुपरिन्टेन्डेन्ट के नीचे दफ़्तर का निर्दिष्ट उपविभाग होता है जिसमें अनेक क्लर्क आदि काम करते हैं। गवर्नर जनरल प्रायः अपने सेक्रेटरियों के परामर्श से अपना निर्णय करता है।

उपर्युक्त विभाग में रियासतों में नियुक्त किए हुए कान्सल, रेज़ीडेन्ट, पोलिटिकल एजेन्ट, चीफ़ कमिश्नर आदि अपने अपने क्षेत्र की कार्यवाहियों की सूचना, रिपोर्ट, आदि भेजते और उससे परामर्श लेते रहते हैं। उनके कामों का निरीक्षण और संचालन इसी विभाग के द्वारा होता है। देशी रियासतों के अलावा इस विभाग के नियंत्रण में गिलजित, फ़ारस की खाड़ी के पोलिटिकल एजेन्ट, खुरासान और सीस्तान, एवं काशगर के कान्सल जनरल आदि भी हैं। इस प्रकार लगभग १९ राज-प्रतिनिधि और उनके सहयोगियों एवं दफ़्तरों के अमले पोलिटिकल विभाग के अधीन हैं। इसके अलावा बलूचिस्तान, अजमेर-मेरवाड़ा एवं कुर्ग आदि का शासन इसी विभाग की निरीक्षणता में है।

स्वदेश विभाग (Home Dept.)—इसका अधिपति होम मेम्बर है। इसका दफ़्तर भी बड़ा है। जिसमें एक तो मुख्य और दो अन्य उप-विभाग हैं। मुख्य विभाग में एक सक्रेटरी, एक संयुक्त सक्रेटरी, एक डिप्टी सक्रेटरी और एक असिस्टेन्ट सक्रेटरी; एक Director of Intelligence, एक Director of Information और एक Govt. Examiner of Documents होता है। अन्तिम तीन अफ़सरों के साथ भी डिप्टी और असिस्टेन्ट होते हैं। दफ़्तर के कर्मचारियों के कार्य संचालन के लिए सात सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं। दूसरा उपविभाग है Public Service Commission जिसमें एक चेयरमैन और चार सदस्य हैं। तीसरा उपविभाग है Reform Office जिसमें एक कमिश्नर, एक डिप्टी सेक्रेटरी, एक असिस्टेन्ट सक्रेटरी और दो सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं।

होम डिपार्टमेंट के अन्तर्गत हैं All India Civil Service, पुलिस, जेल, न्याय आदि जो सूबों की सरकारों के अधिकार के अन्तर्गत नहीं हैं। इसके द्वारा ही नये क़ानूनों का निर्माण एवं क़ानूनों में परिवर्तन का प्रस्ताव किया जाता है। भारत के आन्तरिक शासन की देख-रेख यह स्थूल रूप से किया करता है। सरकारी शासन और नीति सम्बन्धी सूचनाएँ एवं रिपोर्टें इसी विभाग में तैयार होती हैं।

अर्थ विभाग—केन्द्रिक सरकार के आय-व्यय का निरीक्षण एवं सिक्कों का नियंत्रण यही विभाग करता है। यही उसका बजट तैयार करता है। इस विभाग की प्रौढ़ता और कुशलता पर आर्थिक प्रबन्ध और स्थिरता निर्भर है। जब बजट बना कर अर्थ मेम्बर व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख पेश करता है तब सभा में प्रश्नों की झड़ी लग जाती है। यदि कर आदि घटाने या बढ़ाने का प्रस्ताव विभाग द्वारा पेश हुआ तो लोग उत्तेजित तक हो जाते हैं। उस समय उन प्रस्तावों के सिद्धान्तों पर अर्थ सचिव को बहुत वाद विवाद करना पड़ता है। विभाग द्वारा पेश किये हुए प्रस्तावों का समर्थन सरकार करती है। सारांश यह कि इस विभाग का काम बड़े उत्तरदायित्व का है और उसके लिये बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है।

अन्य विभागों की तरह इसमें भी एक सक्रेटरी, ज्वाइंट सेक्रेटरी (Joint Secty.), एक डिप्टी सक्रेटरी, एक बजट ऑफ़िसर, एक सिक्कों आदि (Currency)का ऑफ़िसर और उसके सक्रेटरी और डिप्टी सक्रेटरी और पाँच सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं। इस विभाग के चार उप विभाग भी हैं। एक का अधिपति ऑडिटर जनरल होता है जिसका काम हिसाब-किताब जाँचने का है। दूसरा उपविभाग सन्ट्रेल बोर्ड आव् रेवेन्यू है। उसका मेम्बर अर्थ सचिव का Joint Secretary भी है। उनका भी सक्रेटरी होता है। तीसरा उपविभाग पोस्ट आफ़िस और तार घर के आर्थिकविषयों से सम्बद्ध है। इसका अधिपति

Financial Adviser of Post and Telegraphs कहलाता है। चौथा उपविभाग फौजी विषयों से सम्बन्ध रखता है। इसका अधिपति Military Financial Adviser कहलाता है। इसके नीचे तीन डिप्टी सक्रेटरी, पाँच असिस्टेन्ट Financial Adviser और पाँच सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं।

शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग—जैसा कि नाम से प्रतीत होता है इस विभाग का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। शिक्षा की ही अनेक शाखाएँ हैं। इसमें अफ़सरों एवं उपविभागों की संख्या भी अधिक है। इसमें लगभग २७ बड़े अफ़सर और कम से कम दस मुख्य दफ़्तर हैं। छोटे दफ़्तरों की संख्या और भी अधिक है। इस विभाग में जंगल, स्वास्थ्य, पुरातत्व, पशुविज्ञान, कृषिविज्ञान, पशु चिकित्सा, साधारण चिकित्सा, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि विषयों के अतिरिक्त रेकार्ड (सरकारी कागजात आदि), भूमि की पैमायश आदि भी शामिल है।

संगठन—यह विभाग भी एक मेम्बर की अध्यक्षता में है। इसके मुख्य अफ़सरों में सेक्रेटरी, संयुक्त सेक्रेटरी, डिप्टी सेक्रेटरी के अलावा Educational Commissioner, Inspector General of Forest Research, Director General of Medical Service, Public Health Commissioner, Surveyor General of India, Director of Imperial Research Pusa, Director of Veterinary Research, Director General of Archæology, Director of Zoological Survey, Director of Botanical Survey, Librarian of Imperial Library and Keeper of Records Govt. of India आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके नीचे कहीं डिप्टी और कहीं असिस्टेन्ट आदि हैं। प्रत्येक डाइरेक्टर की अध्यक्षता में दफ़्तर हैं जिनकी शाखाएँ भारत के अन्य स्थानों में हैं। उदाहरण के लिए पुरातत्व

विभाग को लीजिए। इसके अन्तर्गत देश के विभिन्न प्रान्तों में ९ शाखाएँ हैं जिनमें से प्रत्येक का एक निरीक्षक होता है जो सुपरिन्टेन्डेन्ट कहलाता है। उनकी सहायता के लिए असिस्टेन्ट आदि और दफ़्तर होता है। इसी प्रकार सर्वेयर जनरल की अध्यक्षता में पाँच डाइरेक्टर्स और चौबीस सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हैं। सब के छोटे बड़े दफ़्तर और कर्मचारी होते हैं। भूगर्भ विभाग में भी छः सुपरिन्टेन्डेन्ट और १३ असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। इम्पीरियल रेकार्ड आफ़िस, इम्पीरियल लाइब्रेरी आदि के दफ़्तर भी बड़े हैं। सारांश यह कि इस विभाग का संगठन बहुत बड़ा है।

व्यापार विभाग—एक मेम्बर के अधिपतित्व में यह विभाग संगठित है। इसका काम व्यापार सम्बन्धी व्यापक कामों एवं भारत के जल और स्थल के व्यापारिक मार्गों का निरीक्षण करना है। सब से भारी काम तो इस विभाग में रेलवे के निरीक्षण का है। यद्यपि रेल विभाग का संगठन एक प्रकार से पूर्ण है और उसको अपने क्षेत्र में अधिक मात्रा में स्वतंत्रता भी प्राप्त है किन्तु उसका उत्तरदायित्व इस विभाग पर है।

संगठन—व्यापार विभाग के दो मुख्य उपविभाग किए जा सकते हैं। एक तो साधारण जिसमें रेलवे के सिवा अन्य दूसरे कामों का प्रबन्ध होता है। अन्य विभागों की तरह इसमें भी सेक्रेटरी, संयुक्त सेक्रेटरी आदि ग्यारह अफ़सर और ६ सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। दूसरा उपविभाग है रेल का। इस उपविभाग का काम रेलवे बोर्ड के सुपुर्द है जिसमें एक चेयरमैन, एक अर्थ सदस्य और एक साधारण सदस्य होता हैं। इस उपविभाग में आवागमन, Transport Mechanical Engineer, Civil Engineer, कर्मचारी (Establishments) और अर्थ की पाँच शाखाएँ हैं। इनमें से प्रत्येक का अध्यक्ष एक एक डाइरेक्टर होता है जिसके नीचे एक एक डिप्टी डाइरेक्टर रहता है। इनके अलावा एक Supervisor of Railway Labour, Chief Controller of Standards, एक Timber Advisory Officer, एक सेक्रेटरी, डिप्टी और

असिस्टेन्ट सेक्रेटरी आदि अफ़सर होते हैं। मुख्य दफ़्तर में छः सुपरिन्-टेन्डेन्ट होते हैं। इनके अलावा रेल की आय-व्यय की जांच करने के लिए डाइरेक्टर आफ़ रेलवे ऑडिट होता है जिसके दफ़्तर में [illegible] सुपरिन्टेन्डेन्ट काम करते हैं। इसके अतिरिक्त एक रेलवे रेट्स (Ry. rates advisory Board), एवं धनबाद का खनिज विद्या का कालेज है। रेलवे में लाखों कर्मचारी काम करते हैं अतएव प्रत्येक रेल के लिए अलाहदा अलाहदा अफ़सर और दफ़्तर हैं।

उद्योग धंधे का विभाग—उपर्युक्त विभाग के समान यह भी बड़ा विभाग है। यह पहले व्यापार विभाग के ही अन्तर्गत था किन्तु सन् १९२३ से इसका पृथक् संगठन कर दिया गया। आजकल सड़कों, इमा-रतों, डाक, तार, टेलीफोन, वायु मार्ग की यात्रा (Civil Aviation), सरकार के लिए अनेक प्रकार के सामानों का खरीदना, सिचाई, फैक्टरियों आदि से सम्बन्ध रखने वाले विषय इसी विभाग के अन्तर्गत हैं।

संगठन-विभाग के मेम्बर के नीचे अन्य विभागों की तरह सेक्रेटरी डिप्टी, असिस्टेन्ट सेक्रेटरी और पाँच सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। इसके मुख्य उप-विभाग Public Works Dept., Civil Aviation Dept. Indian Stores Department, Post and Telegraph Department, Meteorological Department हैं। Public Works Dept. का अध्यक्ष एक चीफ़ इंजीनियर है जिसके नीचे एक सड़क का इंजीनियर (Road Engineer), एक असिस्टेन्ट सेक्रेटरी और सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। Meteorological Dept. का अध्यक्ष एक Director General of Observations है जिसकी अध्यक्षता में पूना में मुख्य विभाग और आगरा, बम्बई, कलकत्ता, करांची, कोडैकनल और क्वेटा में शाखाएँ हैं जिनमें अनेक Meteorologists और उनके असिस्टेन्ट काम करते हैं। Civil Aviation विभाग का अध्यक्ष Director Civil Aviation in India है। इसका एक

डिप्टी सेक्रेटरी, एक असिस्टेन्ट सेक्रटरी, एक Aircraft Inspector और उसका असिस्टेन्ट एवं चार Aerodrome Office है। इसकी शाखाएँ कलकत्ता, दमदम, रंगून, इलाहाबाद और कराँची में हैं।

उपर्युक्त उपविभाग तो छोटे हैं। बड़े उपविभागों में डाक और तार एवं स्टोर्स डिपार्टमेन्ट है। डाक और तार विभाग का अधिपति Director General of Post and Telegraphs है। इसके नीचे दो डिप्टी डा० ज०, पाँच छः असिस्टेन्ट डा० ज०; एक Chief Engineer posts and Telegraphs, एक Director of Wireless, एक Deputy Director General Telegraphs और उसका असिस्टेन्ट हैं। इनके अलावा एक उपविभाग तार के सामान का है जिसका अध्यक्ष Controller of Telegraph Stores है; एक कारखानों का अध्यक्ष है जिसे Superintendent of Workshops कहते हैं। इस उपविभाग के हिसाब किताब के निरीक्षण के लिए एक विभाग है जिसका अध्यक्ष Accountant General Posts and Telegraphs है। इसमें चार डिप्टी अ० ज० हैं और लगभग दस असिस्टेन्ट अकाउन्ट ऑफिसर हैं। इस विभाग के नौ हल्के हैं जिनके द्वारा भारत के डाकखानों का नियंत्रण होता है। प्रत्येक हल्के में एक पोस्टमास्टर जनरल, एक या दो डिप्टी पो० मा० ज० और अनेक असिस्टेन्ट पो० मा० ज०, सुपरिन्टेन्डेन्ट, पोस्टमास्टर आदि होते हैं। ये अफ़सर हल्के के डाकखानों का प्रबन्ध करते हैं। इसी प्रकार तारों और तार घरों की देख-भाल के लिए भारत को डिवीज़नों में विभक्त कर दिया है। प्रत्येक डिवीज़न का अध्यक्ष एक Divisional Engineer होता है। बंगाल-आसाम एवं बम्बई में Director Telegraph Engineering होते हैं। इनके अलावा सुपरिन्टेन्डेन्ट तारघर, डिप्टी इंजिनियर और डि० असिस्टेन्ट इंजिनियर आदि होते हैं। इसी प्रकार टेलीफून का विभाग है किन्तु यह अभी छोटा है।

दूसरा विशाल उपविभाग स्टोर्स का है (Indian Stores Dept.) जिसकी स्थापना सन् १९२२ में हुई। इसका काम भारत की सरकार के ही लिए नहीं किन्तु सूबों की सरकार के लिए भी हर प्रकार के सामानों का ख़रीदना, ख़बर रखना, और सामानों की जांच करना है। इसका मुख्य अध्यक्ष Chief Controller of Stores कहलाता है जिसके अधीन पाँच डिप्टी डाइरेक्टर और सात असिस्टेन्ट हैं। इसकी शाखाएँ दो प्रकार की हैं। एक तो ख़रीदारी करनी (Purchase section) और दूसरी सामान की जाँच करनी (Inspection) है। ऐसी शाखाएँ टाटानगर, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर, करांची और कानपुर में हैं।

क़ानून विभाग (Legislative Department)—इस विभाग का काम सरकार को क़ानून के मामलों में सलाह देना है। क़ानून के मसविदों और बिलों को तैयार करना इसका मुख्य कर्तव्य है। इसका मुख्य अधिपति Law Member है।

यद्यपि क़ानून विभाग का काम महत्त्व का है किन्तु यह अन्य विभागों से छोटा है। इसमें १ सेक्रेटरी, १ संयुक्त सेक्रेटरी, १ डिप्टी और तीन असिस्टेन्ट सेक्रेटरी, १ सुपरिन्टेन्डेन्ट, २ सॉलिसिटर (Solicitor) और एक असिस्टेन्ट सॉलिसिटर होते हैं।

स्थानिक शासन के विभाग

(Departments of Provincial Administration)

सूबे की सरकार केवल अपने अधिकारों के क्षेत्र के भीतर ही नहीं किन्तु भारत सरकार के भी कुछ कामों को एजेन्ट की हैसियत से करती है। कुछ अखिल देशव्यापी विभाग ऐसे हैं जिनका संचालन और निरी-

अपने सूबे की सरकार के सहयोग से अधिक सन्तोषजनक हो सकता है। ऐसे विभाग जिनमें इस प्रकार का सहयोग स्थायी रूप से लिया जाता है, इन्कमटेक्स, कस्टम ड्यूटी, नमक आदि हैं। किन्तु इनके अलावा भी पुरातत्व, छावनी (Cantonments), गिर्जाघरों का विधान, पास पोर्ट, आवास-प्रवास, हथियार और स्फोटक पदार्थ आदि के निरीक्षण में भी सूबे की सरकार से बहुत सहायता केन्द्रिक सरकार को मिलती है। ये काम सूबेवाले केन्द्रिक सरकार की आज्ञानुकूल करते हैं। जिन कामों में अधिक मनुष्यों, समय, परिश्रम आदि की आवश्यकता पड़ती है उनके लिए केन्द्रिक सरकार ही खर्च भी देती है।

सूबे की सरकार का कर्तव्य विशेषतः अपने सूबे का शासन और नियंत्रण है। सूबों का आधुनिक संगठन बाद में हुआ अतएव उनके शासन-यंत्र का निर्माण बहुत कुछ उसी ढंग का हुआ जैसा कि केन्द्रिक सरकार का था। सूबे की सरकार में सन् १९२१ के सुधारों से शासन की दो शाखाएँ हो गई थीं एक तो रक्षित है और दूसरी हस्तान्तरित। शासन-यंत्र के ऊपरी भाग में तो इन दोनों में कुछ दूर तक अलाहदगी रहती है किन्तु कुछ नीचे चलने पर एक ही शासनयंत्र की सहायता दोनों विभागों को लेनी पड़ती है। उदाहरण के लिए कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर अथवा कलक्टर, सेक्रेटेरियट दफ्तर दोनों विभागों से अपने अपने विषयों की आज्ञाएँ पाते और उनका प्रतिपालन करते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए शासन यंत्र का ढाँचा समझना चाहिए। देहली सूबा केन्द्रिक शासन के अन्तर्गत है अतएव उसका विधान भी अन्य सूबों से भिन्न है।

रक्षित विभाग तो गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी समिति के अधीन है। कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की संख्या चार से अधिक कहीं नहीं किन्तु कहीं कहीं कम भी है। बम्बई, मद्रास, बंगाल में चार-चार सदस्य, यू० पी०, बिहार और सी० पी० में दो-दो और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में एक ही मेम्बर है। इसी प्रकार मिनिस्टरों की भी संख्या सब प्रान्तों

में एक सी नहीं है। वह भी मद्रास में चार, यू० पी०, पंजाब में तीन, और सी० पी०, बिहार में दो और सीमाप्रान्त में एक है।*

संख्या की भिन्नता के साथ ही कार्य का विभाजन भी प्रत्येक सूबे में एक सा नहीं है। गवर्नर सूबे की आवश्यकताओं अथवा अन्य किसी कारण शासन के विषयों की जिम्मेदारी में हेर फेर कर देता है। कार्य-कारिणी में प्रायः एक होम मेम्बर और एक अर्थ मेम्बर तो होता ही है। होम मेम्बर शासन के आन्तरिक कामों का जैसा पुलिस आदि का निरी-क्षण करता है। अर्थ मंत्री आर्थिक विषयों का।

मंत्रियों अथवा कार्यकारिणी के सदस्यों के पास सरकारी कागजात सेक्रेटरियों के द्वारा पहुँचते है। हर एक सूबे में कई सेक्रेटरी होते हैं। इनकी भी संख्या प्रत्येक सूबे में एक सी नहीं है। पंजाब में दस, बंगाल में नौ, बंबई, बिहार में आठ, यू० पी० में सात, सी० पी० और मद्रास में ६, आसाम में तीन और पश्चिमोत्तर में दो ही सेक्रेटरी है। यहाँ भी संख्या की भिन्नता से कार्यों में और विभागों के वितरण में विभिन्नता दिखाई पड़ती है। किन्तु कुछ ऐसे हैं जो प्रायः हर सूबों में मिलते हैं। ये हैं चीफ़ सेक्रेटरी, अर्थ सेक्रेटरी, रेवेन्यू सेक्रेटरी, पब्लिक वर्क्स सेक्रेटरी, शिक्षा सेक्रेटरी उदाहरण के लिए यू० पी० लीजिए। यहां चीफ़ सेक्रेटरी के अधीन नियुक्ति (appointments), साधारण शासन (General administration, Executive), राजनैतिक और समाचार पत्र आदि हैं। चीफ़ सेक्रेटरी सेक्रेटरियों में सबसे सीनियर ही होता है। दूसरा अर्थ सेक्रेटरी (Finance Dept.) तीसरा रेवेन्यू—भूमिकर, जंगलात, पब्लिक वर्क्स आदि। चौथा शिक्षा (Education) इसके अधीन कृषि, आब-

* जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है सन् १९३५ के सुधार से रक्षित और हस्तान्तरित का भेद उठ जायगा और सभी विभाग हस्तान्तरित कर दिये जायँगे।

कारी, उद्योग अर्थ भी होते हैं। पांचवाँ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपेल्टिटी आदि एवं चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग देखता है। छटा जुडीशल जो न्याय और क़ानून की बातों का निरीक्षण करता है। सातवाँ पब्लिक वर्क्स जो सिंचाई विभाग का काम देखता है। इसके साथ एक संयुक्त सेक्रेटरी भी रहता है। सड़कों के काम के लिये कोई सेक्रेटरी नहीं है। वह एक डिप्टी सेक्रेटरी के सुपुर्द है। पंजाब में उपर्युक्त सेक्रेटरियों के अलावा हाइड्रो एलेक्ट्रिक वर्क्स का एक सेक्रेटरी, सड़कों इमारतों का एक सेक्रेटरी और सिंचाई विभाग के चार हल्कों के चार सेक्रेटरी हैं। बिहार में सेक्रेटरी यू० पी० के से हैं किन्तु वहाँ सड़कों और इमारतों का सेक्रेटरी अलाहदा है और सिंचाई के लिए एक ही सेक्रे-टरी है। सी० पी० में पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट की दोनों शाखाओं— सिंचाई, सड़क और इमारतों के लिए एक ही सेक्रेटरी है। किन्तु वहाँ बन्दोबस्त, भूमि संबंधी काग़ज़ात और रजिस्ट्रेशन के लिए एक विशेष सेक्रेटरी है। कहने का सारांश यह है कि यद्यपि सब सूबों में ढाँचा प्रायः एक ही सा है किन्तु विशेष आवश्यकताओं के कारण कहीं कहीं कुछ विभिन्नता दिखाई पड़ती है।

सेक्रेटरियों की सहायता के लिए अन्डर सेक्रेटरी होते हैं। इनकी संख्या भी प्रायः उतनी ही होती है जितनी सेक्रेटरियों की किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक नहीं। आवश्यकता के अनुसार इनकी संख्या भी न्यून अथवा अधिक कर दी जाती है। सी० पी० को ही लीजिए। वहाँ केवल चार, बिहार में तीन, यू०-पी० और पंजाब में सात अन्डर सक्रेटरी हैं।

इनके अलावा कार्य की न्यूनता अथवा अधिकता के अनुसार डिप्टी सेक्रेटरी भी नियुक्त कर दिया है। इनकी संख्या भी अनिश्चित होती हैं। बिहार में सिर्फ़ एक ही है और वह भी क़ानून विभाग (Legislative) में। सी० पी० में एक भी नहीं। पंजाब में भी केवल अर्थ विभाग में एक डिप्टी सेक्रेटरी है। यू० पी० में पाँच हैं।

डि० से० के अतिरिक्त काम के आधिक्य या अन्य कारणों से असिस्टेन्ट सेक्रेटरी भी नियुक्त है। कहीं कहीं असिस्टेन्ट सेक्रेटरी के ही सुपुर्द वह काम रहता है जो दूसरी जगह डि० से० के पास है। बिहार में पांच, पंजाब में तीन, यू० पी० में पाँच और सी० पी० में एक भी नहीं है।

उपर्युक्त बड़े अफ़सरों के नीचे दफ़्तरों के क्लर्कों और कामों का निरी-क्षण और नियंत्रण करने के लिए सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन सूबे के सरकार के दफ़्तर का है जिसको Secre-tariat कहते हैं। सेक्रेटेरियट के द्वारा ही सब विभागों या उपविभागों के क़ाग़ज़ पत्र सूबे की सरकार के पास आते जाते हैं। कुछ विभाग जिनमें काम की अधिकता है उन का स्वतंत्र रूप से संगठन किसी विशेष पदाधि-कारी की अध्यक्षता में कर दिया गया है। प्रायः प्रत्येक सूबे में निम्नलिखित विभाग पाये जाते हैं :

पुलिस—इसका मुख्य अध्यक्ष इन्सपेक्टर जनरल आव् पुलिस है। उसकी सहायता के लिए डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल आव् पुलीस और असिस्टेन्ट इ० ज० पुलीस होते हैं।

शिक्षा—इस विभाग का मुख्य अध्यक्ष डाइरेक्टर आव् पब्लिक इन्स्ट्रक्शन होता है। इसके नीचे डिप्टी डाइरेक्टर, असिस्टेन्ट डाइरेक्टर, इन्स्पेक्टर आदि होते हैं।

चिकित्सालय—इस विभाग का मुख्य अध्यक्ष इन्सपेक्टर जनरल आव् सिविल हास्पिटल्स होता है। इसकी सहायता के लिए प्रत्येक शहर में सिविल सर्जन होते हैं।

स्वास्थ्य—इस विभाग का मुख्य अध्यक्ष डाइरेक्टर आव् पब्लिक हेल्थ है। कहीं कहीं इसका काम भी इन्स० ज० सि० हास्पिटल्स के सुपुर्द है। डा० प० हेल्थ की सहायता के लिए बड़े सूबों में असिस्टेन्ट डाइरेक्टर्स आ० प० हे० और उनके बाद ज़िलों और म्यूनिसिपेलिटियों के मेडिकल आफिसर आव् हेल्थ, सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि होते हैं।

जेल—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष इन्सपेक्टर जनरल आव् प्रिज़न्स होता है। इसकी सहायता के लिए कहीं कहीं डिप्टी इ० ज० प्रिज़न्स और साधारणतः सुपरिन्टेन्डेन्ट आव् सेन्ट्रल प्रिज़न्स होते हैं।

आबकारी—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष एक्साइज़ कमिश्नर होता है जिसकी सहायता के लिए बड़े सूबों में डिप्टी ए० क० भी होते हैं। साधारणतः उसके सहायक असिस्टेन्ट ए० कमिश्नर अथवा सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि होते हैं।

कृषि—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष डाइरेक्टर आव् एग्रिकल्चर कहलाता है। इसके नीचे डिप्टी डा० ए०, कहीं कहीं असिस्टेन्ट डा० ए० आदि होते हैं।

उद्योग धंधा—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष डाइरेक्टर आव् इन्डस्ट्रीज़ कहलाता है। कहीं कहीं डिप्टी डा० इ० और असिस्टेन्ट डाइरेक्टर आदि होते हैं। यह विभाग अन्य सूबों की अपेक्षा मद्रास में अधिक संगठित जान पड़ता है।

सहयोग समितियाँ—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसाइटीज़ कहलाता है। इसकी सहायता के लिए डिप्टी और असिस्टेन्ट डा० इ० नियुक्त होते हैं।

रजिस्ट्रेशन—इसका मुख्याध्यक्ष इन्सपेक्टर जनरल आव् रजिस्ट्रेशन होता है। कहीं कहीं इसके हाथ में अन्य काम भी सुपुर्द कर दिये गये हैं जैसा कि बिहार में।

पब्लिक वर्क्स—इसका मुख्याध्यक्ष चीफ़ इंजीनियर होता है। इसकी सहायता के लिए सुपरिन्टेन्डिंग इंजीनियर, एक्ज़िक्यूटिव इंजीनियर, असिस्टेन्ट ए० इ०, असिस्टेन्ट इंजीनियर आदि होते हैं। कहीं कहीं जैसा, कि मद्रास में है, इनके अलावा सेनिटरी इंजीनियर भी होते हैं।

जुडीशल—इस डिपार्टमेन्ट का मुख्याध्यक्ष हाईकोर्ट या चीफ़ कोर्ट का चीफ़-जस्टिस अथवा कहीं कहीं जुडीशल कमिश्नर होता है। यह

बताया जा चुका है कि यद्यपि न्याय के विषय में कचेहरियाँ स्वतंत्र हैं किन्तु इनका संगठन सूबे की सरकार के ही हाथ में है जो चीफ़ जस्टिस के परामर्श से नियंत्रण करती है।

रेवेन्यू—इस डिपार्टमेन्ट का निरीक्षण प्रायः बोर्ड आव् रेवेन्यू करती है। यह बोर्ड रेवेन्यू के मुक़द्दमों की अपील भी सुनती है। बम्बई में बोर्ड आव् रेवेन्यू नहीं है। कहीं कहीं बोर्ड को फ़ाइनेन्शल कमिश्नर भी कहते हैं।

जंगलात—इस विभाग का मुख्याध्यक्ष चीफ़ कन्सर्वेटर आव् फारेस्ट होता है। इसके नीचे कन्सर्वेटर, डिप्टी और असिस्टेन्ट कन्सर्वेटर आदि होते हैं। पंजाब में फॉरेस्ट इंजीनियर भी होते हैं।

इन विभागों के अतिरिक्त व्यापक निरीक्षण और साधारण शासन कार्य के लिये सूबे की सरकार की सहायता के लिए हल्कों (Division) में कमिश्नर और ज़िलों में डिप्टी कमिश्नर होते हैं। मद्रास सूबे को छोड़ कर प्रत्येक सूबे में कमिश्नर होते हैं। इनकी संख्या सब सूबों में एक सी नहीं है। उदाहरण के लिए बिहार में दो, सी० पी०, पंजाब, बंगाल, बम्बई में पाँच, और यू० पी० में दस हैं। कमिश्नर साधारण रूप से अपने हल्के के जिलों और ज़िलाधीशों के शासन पर नज़र रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनको परामर्श देते हैं। इसके अलावा वे स्थानिक स्वराज्य शासन (Local Self Government) का और कहीं कहीं ज़िले के विशेष कामों का भी निरीक्षण करते हैं। ये लोग सूबे की सरकार और ज़िले के शासन के बीच की कड़ियाँ हैं जिनसे सूबे के सरकार का बहुत कुछ काम हल्का हो जाता है। किन्तु मद्रास का शासन बिना इन कड़ियों के भी मज़े में चल रहा है। रेवेन्यू आदि के मामलों में इनके ऊपर रेवेन्यू बोर्ड होता है।

डिप्टी कमिश्नर या कलक्टर—ज़िला में सूबे की सरकार के नेत्र और बाहु एवं ज़िले के शासन का प्राण डिप्टी कमिश्नर अथवा कलक्टर

है। इसका मुख्य कर्तव्य जिले में शान्ति रखना और मालगुज़ारी वसूल करना तो है ही; किन्तु एक प्रकार से ज़िले के शासन यंत्र के जितने पुर्ज़े हैं सब पर उसकी न्यूनाधिक निगरानी रहती है। सरकार की समस्त शक्तियाँ सूक्ष्म रूप में उसमें प्रतिविम्बित और एकत्रित हैं। इसकी ज़िम्मेदारी भारी है अतएव आवश्यकता पड़ने पर गुप्त अधिकार भी बहुत हैं। अपने विचित्र और अदृश्य प्रभाव के द्वारा भी वह अनेक काम सरलता से पूरे कर देता है। इसकी सहायता के लिए डिप्टी कलक्टर, मजिस्ट्रेट असिस्टेन्ट कमिश्नर और एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर आदि होते हैं जिनका वर्णन ज़िले के शासन के सम्बन्ध में किया गया है।

सातवाँ अध्याय

भारतीय सेना

३१ दिसंबर सन् १६०० ईस्वी में महारानी एलीज़बेथ ने ईस्ट इण्डिया कंपनी को भारतवर्ष से व्यापार करने की अनुमति प्रदान की। धीरे धीरे कंपनी का व्यापार, प्रभुत्व तथा राज्य बढ़ने लगा। कंपनी ने अपनी रक्षा के लिए बंबई, मद्रास तथा बंगाल में सेना रखना आरंभ किया। औरंगज़ेब के बाद मुग़ल बादशाहत शिथिल पड़ गई। देश में संगठन न होने से अशांति फैलती ही गई। फ़रासीसी अपना राज्य जमाने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने भारतवासियों को सेना में भरती कर यूरोपीय ढंग से क़वायद तथा युद्ध-विद्या सिखाना आरंभ किया। यह देख अंग्रेज़ों ने भी देशी पल्टन बनाना आरंभ की। सन् १७४८ ईस्वी में मेजर स्ट्रिंजर लारेंस ने मद्रास में एक देशी पल्टन संगठित की। इसी समय से भारतीय सेना का इतिहास आरंभ होता है।

सन् १७४८ के पहिले बंबई, मद्रास और बंगाल की सेनायें पृथक् थीं। प्रत्येक सेना का सेनापति स्वतंत्र था। सन् १७४८ में कंपनी की समस्त सेना के लिए मेजर स्ट्रिंजर लारेंस प्रधान सेनापति बनाये गये। इस समय से सेना के संगठन में समय समय पर कई परिवर्तन हुए। लार्ड क्लाइव, सर आयरकूट आदि ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों का उत्साह बढ़ाया। ज्यों ज्यों अंग्रेज़ों का राज्य बढ़ता गया त्यों त्यों सेना की भी वृद्धि हुई। सिपाही विद्रोह के समय अंग्रेज़ी सेना में लगभग ४०,००० यूरोपीय तथा २,१५,००० देशी फ़ौजी सिपाही थे। इस समय सेना तीन भागों में—बंबई, मद्रास और बंगाल—विभक्त थी। हर एक प्रान्त में अलग अलग तरीक़ो

से सेना की भरती तथा संगठन किया जाता था। स्थायी सेना के अतिरिक्त देश भर में अलग अलग पल्टनें संगठित की गई थीं। कंपनी के हाथ में देशी रजवाड़ों की भी सेना थी जिसकी संख्या १८५७ में ३५,००० के लगभग थी। सेना संचालन कार्य में हर एक प्रेसीडेन्सी का पृथक् पृथक् संगठन होने से बहुत कठिनाई पड़ती थी। इसके सिवा बंगाल की सेना में उच्चजाति के सिपाहियों की ही संख्या प्रधान थी। मद्रास और बंबई की सेनाओं में जाति पाँत के अनेकों झगड़े थे। किसी जगह सेना के सिपाहियों को स्त्री बच्चों के साथ रहने का प्रबंध था और किसी सेना में न था। सिपाही विद्रोह के पश्चात् कंपनी का राज्य इंग्लैंड की सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। सेना का संगठन करने के लिए सन् १८५८ में एक कमीशन नियुक्त हुआ जिसे 'पील कमीशन' कहते हैं। इसकी रिपोर्ट के अनुसार सन् १८६१ में सेना-प्रबंध में अनेक परिवर्तन हुए। लड़ाकू और ग़ैर लड़ाकू जाति का भेद कर सेना नवीन रूप से संगठित की गई। अंग्रेज़ अफ़सरों की संख्या बढ़ाकर देशी पल्टनें इनके आधीन की गईं। किंतु प्रान्तीय सेना संगठन फिर भी उसी प्रकार रहने दिया। सन् १८७९ में यूरोपीय सेना की संख्या ६५,००० और देशी सेना की १,३५,००० हो गई। अंग्रेज़ी पल्टन के ज़िम्मे सब किले, बड़ी बड़ी तोपें आदि कर दी गईं। हर एक प्रान्त में अफ़सरों की क़वायद और युद्ध संबंधी शिक्षा के लिए प्रबंध किया गया। इतना करने पर भी सेना-प्रबंध में बहुत सी त्रुटियाँ रह ही गई थीं जिनका अनुभव सन् १८८० के अफ़ग़ान युद्ध में हुआ। अतएव पुनः एक कमीशन जिसे 'एडिन कमीशन' कहते हैं जाँच के लिए नियुक्त किया गया।

एडिन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार सन् १८९१ में ३ प्रान्तीय स्टाफ़ कोर हटा दिये गये और अफ़सरों की शिक्षा के लिए केवल एक स्टाफ़ कोर संगठित किया गया। दो वर्ष बाद पार्लमेंट ने एक एक्ट पास किया जिसके अनुसार मद्रास, बंबई और बंगाल के सेनापति का पद तोड़ दिया गया। और ये प्रान्तीय कार्यकारिणी समिति से हटा दिये गये।

इस एक्ट से प्रान्तीय सरकारों का सेना संबंधी नियंत्रण काउन्सिल सहित गवर्नर जनरल के हाथ में आ गया। सन् १८९५ में भारतवर्ष की समस्त सेना प्रधान सेनापति के संचालन में आ गई।

सन् १९०२ में लार्ड किचनर भारत के प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। उस समय सेना-विभाग का शासन प्रधान सेनापति और गवर्नर जनरल की काउन्सिल के मिलिटरी सदस्य में बँटा हुआ था। प्रधान सेनापति यदि सेना के ख़र्च बढ़ाने या घटाने के विषय में कोई प्रस्ताव करते तो वह मिलिटरी सदस्य के हाथ से भारत के अर्थ सचिव (Finance Member) के हाथ में जाता था। इसके अतिरिक्त गोला बारूद, रसद, फ़ौजी आय-व्यय आदि के ऊपर कार्यकारिणी के मिलिटरी सदस्य का पूरा अधिकार था। इसका फल यह होता था कि कई विषयों पर प्रधान सेनापति और कार्यकारिणी में मतभेद हो जाता था। लार्ड किचनर ने मिलिटरी मेम्बर का पद हटा देने के लिये प्रयत्न किया, किंतु लार्ड कर्ज़न ने जो उस समय गवर्नर जनरल थे, इसका विरोध किया। इस संबंध में बहुत झगड़ा चला और अंत में लार्ड किचनर की ही जीत हुई। लार्ड कर्ज़न अपना पद त्याग कर चले गये। इस समय से सेना-विभाग पृथक् कर एक सेक्रेटरी के आधीन किया गया। सेनापति ही आजकल सेना विभाग के प्रधान अध्यक्ष एवं कार्यकारिणी के सदस्य हैं।

लार्ड किचनर ने सेना संगठन में भी परिवर्तन किये। १९०८ में कुल सेना दो भागों में—(१) उत्तरी और (२) दक्षिणी—बाँट दी गई। उत्तर की पल्टन में पेशावर, रावलपिन्डी, लाहोर, मेरठ और लखनऊ के ५ सूबे (डिवीज़न) तथा कोहाट, बानू और डेराजात के ब्रिगेड रखे गये। इसका प्रधान दफ़्तर 'मरी' में रखा गया। दक्षिणी पल्टन में क्वेटा, मऊ, पूना, सिकंदराबाद और बर्मा के सूबे (डिवीज़न) तथा अदन की ब्रिगेड मिलाई गई। उत्तरी और दक्षिणी विभाग एक एक जनरल आफ़िसर के आधीन रखा गया जो शिक्षा, निरीक्षण तथा आज्ञा के लिए तो उत्तरदायी

था, किन्तु प्रबंध में इसका कोई अधिकार नहीं था। दसों सूबे प्रबंध के लिए सेना के प्रधान दफ़्तर के ही आधीन थे। लार्ड किचनर ने सेना के अफ़सरों तथा सिपाहियों की शिक्षा का प्रबंध किया। अफ़सरों की शिक्षा के लिए क्वेटा में एक कालेज भी खोला गया।

यूरोपीय महायुद्ध के समय सेना संबंधी अनेकों परिवर्तन हुए। हिन्दुस्थानी सेना ने यूरोप की लड़ाइयों में अपना पूरा जौहर दिखाया। इसी समय 'एंग्लोइंडियन रेजीमेंट' तथा 'बंगाली डवल कंपनी' नामक दो नये दल बने। देश की रक्षा के लिए 'इंडियन डिफेंस फ़ोर्स' दल भी बना जिसमें अंग्रेजी प्रथा के अनुसार भारत वासियों को भी स्वयंसेवक बनने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त भारतवासी अफ़सर भी बनाये जाने लगे, और हिन्दुस्थानी सिपाहियों के वेतन, भत्ते आदि में भी उन्नति हुई। यूरोपीय महायुद्ध में युद्ध-विद्या में अनेक परिवर्तन तथा नवीन आविष्कार हुए। लड़ाई समाप्त होने के पश्चात् भारतीय सेना का नवीन रूप से संगठन हुआ। भारतवासियों के पराक्रम को देख सरकार ने भारतवासियों को सेना में बड़ी नौकरियां देना स्वीकार किया। १९१८ से भारतवासियों को भी 'किंग्ज़ कमीशन' (King's Commission) मिलने लगा एवं सेंडहर्स्ट के ब्रिटिश रायल मिलिटरी कालेज (British Royal Military College of Sandhurst) तथा वूलविच और क्रेनवेल के कालेजों में, भारतवासियों के भर्ती करने के लिए कुछ संख्या निश्चित कर दी गई। सेना-सुधार की जाँच के लिए सन् १९१९ में एक कमेटी जो 'ईशर कमेटी' के नाम से प्रसिद्ध है बनाई गई।

'ईशर कमेटी' की रिपोर्ट का सिद्धांत ऐसी भारतीय सेना तैयार करना था जिससे समस्त ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की जाय। अतएव इसकी रिपोर्ट पर अत्यन्त तीव्र आलोचना हुई। इस रिपोर्ट के सिद्धांत के अनुसार भारतीय सेना व्यय बहुत ही अधिक बढ़ जाता। देश की असंतुष्टता देखकर सरकार ने भारतीय व्यवस्थापिका सभा की एक कमेटी

जाँच के लिए बनाई। इस कमेटी ने 'ईशर कमेटी' की रिपोर्ट रद्द करते हुए भारतीय सेना में ऊँचे पदों तथा अफ़सरों की जगहों पर भारतवासियों को रखने की सिफ़ारिश की। इसी समय सन् १९२३ में व्यवस्थापिका सभा ने एक एक्ट पास किया जिसके अनुसार भारतवर्ष में भी विलायत के 'टेरीटोरियल फ़ोर्स' की तरह एक टेरीटोरियल फ़ोर्स बनाया गया। सन् १९२२ में युवराज महोदय (Prince of Wales) ने 'देहरादून कालेज' खोला। इस कालेज का तात्पर्य भारतवासियों को फ़ौजी शिक्षा देकर सेन्डहर्स्ट के कालेज द्वारा किंग्ज़ कमीशन प्राप्त कराना है।

सन् १९२३ में लार्ड रालिन्सन ने सेना में भारतीयों को अधिक स्थान देने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु इसमें विशेष सफलता न मिल सकी। अतएव सन् १९२५ में सर एण्ड्रू स्कीन साहिब की अध्यक्षता में 'स्कीन कमेटी' बनाई गई जिसमें १० भारतवासी भी थे। इस कमेटी ने सेंडहर्स्ट के कालेज में भारतवासियों को भर्ती करने की संख्या दुगनी करने के लिए तथा सेंडहर्स्ट के 'ब्रिटिश रायल मिलिटरी कालेज' के ढंग पर भारतवर्ष में भी एक कालेज स्थापित करने की सिफ़ारिश की। इसकी रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने सेन्डहर्स्ट के कालेज में भारतवासियों की संख्या प्रतिवर्ष १० से २० बढ़ाना तो स्वीकार कर लिया किन्तु भारत में कालेज खोलना उचित न समझा। इस समय देश में स्वतंत्रता तथा स्वराज्य की उमंगें वेग से उठ रही थीं। नेताओं का ध्यान सेना-विभाग की ओर भी आकर्षित हुआ। औपनिवेशिक या उत्तरदायी शासन के लिए हिन्दुस्तानियों को देश-रक्षा का प्रश्न भी गंभीर प्रतीत हुआ। अतः इतने कम सुधारों से देश संतुष्ट न हो सका।

प्रथम गोलमेज़ सभा (Round Table Conference) के पश्चात् सन् १९३१ में 'इंडियन मिलिटरी कालेज कमेटी' (Indian Military College Committee) बनाई गई। इस कमेटी में ६ सरकारी ८ ग़ैरसरकारी और ३ देशी रियासतों के सदस्य थे। इस कमेटी ने जांच

के बाद भारत में मिलिटरी एकेडेमी स्थापित करने की राय दी। इसके अनुसार अक्टूबर सन् १९३२ में (Indian Military Academy) नामक कालेज देहरादून में खुला। इसी वर्ष सरकार ने हर सेना के एक सूबे को तथा एक एक घुड़सवारों की ब्रिगेड को भी हिन्दुस्थानियों से भर देने की (Indianise) घोषणा की। इसके अतिरिक्त सेना में भारतवासियों को अधिकाधिक स्थान देने के लिए एवं भारत को अपनी रक्षा के लिए सेना सँभालने के लिए तैयार करने के अन्य उपाय भी किये जा रहे हैं।

भारतीय व्यवस्थित सेना के स्थूल रूप से दो अंग हैं:—ब्रिटिश सेना और हिन्दुस्थानी। इनकी मुख्य शाखाएँ इस प्रकार हैं—

* ब्रिटिश घुड़सवार, ब्रिटिश पैदल सेना, रायल आर्टिलरी अर्थात् तोपखाना, इंजीनियरिंग सर्विस, रायल टैंक कोर, इंडियन सिगनल कोर, इंडियन घुड़सवार, इंडियन पैदल सेना, सैनिक चिकित्सा तथा मिलिटरी डेरी फार्म आदि। इसके अतिरिक्त भारतीय सेना में रायल एयर फ़ोर्स, इंडियन एयर फ़ोर्स तथा सामुद्रिक सेना भी शामिल है।

भारतीय सेना में किंग्ज़ कमीशन प्राप्त तथा वायसराय कमीशन प्राप्त, दो प्रकार के अफ़सर हैं। भारतीय सेना की संख्या सन् ३४ में इस प्रकार थी—किंग्ज़ कमीशन प्राप्त अफ़सर ६,५९०; वायसराय द्वारा कमीशन प्राप्त ४,४९९; ब्रिटिश सैनिक ५८,४०३; हिन्दुस्थानी सैनिक १,६५,०१७; अनुयायी सैनिक (Followers) ३६,५९७, तथा हिन्दुस्थानी रिज़र्व ४४,५४१।

व्यवस्थित (Regular) सेना के अतिरिक्त भारतवर्ष की सेना के दो और अंग हैं—(१) अनुवर्ती (आक्ज़िलियरी सेना), (२) टेरिटोरियल सेना—

अनुवर्ती (Auxiliary Force) **सेना**—यूरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर अन्य यूरोपीय देशों की तरह अंग्रेजों को भी अनिवार्य

सैनिक शिक्षा (Compulsory Military Training) देने का प्रश्न उपस्थित हुआ।

भारतवर्ष में यद्यपि अंग्रेज़ों की सैनिक शिक्षा अनिवार्य करना उचित न समझा गया, फिर भी उनकी सैनिक शिक्षा के प्रबंध के लिए सन् १९२० में एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार अनुवर्ती सेना (Auxiliary Force)

---

* ब्रिटिश घुड़सवार रेजीमेंट ५ हैं जिनमें प्रत्येक में २७ अफ़सर तथा ५६७ अन्य घुड़सवार हैं। ब्रिटिश पैदल सेना की ४५ बेटेलियन हैं। प्रत्येक बेटेलियन में २८ अफ़सर तथा ८६५ सैनिक हैं। प्रत्येक बेटेलियन के साथ २८ छोटी बड़ी तोपें भी रहती हैं।

रायल तोपख़ाना कई तरह का है। इसके मुख्य भेद हैं रायल हार्स आर्टिलरी (Royal Horse Artillery), फ़ील्ड हायर ब्रिगेड (Field higher Brigades), फ़ील्ड लोअर ब्रिगेड (Field Lower Brigades), फ़ील्ड मेकेनाइज्ड (Field Mechanised) तथा इंडियन माउंटेन ब्रिगेड (Indian Mountain Brigade) तोपख़ाने में छोटी बड़ी तोपें लगभग ४०० हैं।

हिन्दुस्थानी घुड़सवार रेजिमेंट २१ हैं। प्रत्येक रेजीमेंट में १४ ब्रिटिश तथा १९ हिन्दुस्थानी अफ़सरों के अतिरिक्त ४९२ सवार होते हैं। हिन्दुस्थानी पैदल सेना की ३२ रेजीमेंट हैं जिसमें १२४ बेटेलियन हैं। वे इस प्रकार हैं—१९ सादी रेजीमेंट जिसमें ९८ बेटेलियन हैं, ३ सेपर्स और माइनर्स रेजीमेंट जिसमें ७ बेटेलियन हैं तथा १० गुरखा रेजीमेंट जिनमें २० बेटेलियन हैं। सादी पैदल सेना की प्रत्येक बेटेलियन (पल्टन) में १२ अंग्रेज़ और २० हिन्दुस्थानी अफ़सरों के अलावा ७०३ सैनिक होते है। गुरखा बेटेलियन में १३ अंग्रेज़ अफ़सर, २२ हिन्दुस्थानी अफ़सर तथा ९०८ सैनिक रहते हैं।

बनाई गई। इस सेना की संख्या ३३,००० रखी गई, और इसमें केवल अंग्रेजों को ही भर्ती करने का नियम बनाया गया। जो अंग्रेज़ इसमें भर्ती होते हैं उन्हें नियमानुसार अवसर पड़ने पर लड़ाई पर जाने के लिए वचन देना पड़ता है। इसकी शिक्षा उमर के अनुसार ही निर्धारित की जाती है और स्थानीय होती है। हर एक प्रान्त में इसके लिए जगह जगह पर प्रबंध किया गया है।

अनुवर्ती सेना में सेना के हर एक विभाग की शिक्षा देने का, जैसे—घुड़सवार, तोपखाना, इंजीनियरिंग, डेरीफ़ार्म, मेडिकल, सिगनल आदि—का प्रबंध किया गया है। इस सेना का प्रत्येक भाग उस स्थान के व्यवस्थित सेना-विभाग के अन्तर्गत है। इनकी शिक्षा साल भर समय समय पर होती रहती है और प्रतिदिन के हिसाब से इन्हें कुछ वेतन भी मिलता है। इस सेना में भरती होने की कोई निश्चित अवधि नहीं है किंतु फिर भी ४ वर्ष के बाद या ४५ वर्ष की उमर हो जाने पर इसे इच्छानुसार छोड़ देने की इजाज़त है।

इंडियन टेरिटोरियल फ़ोर्स—सेना में भारतीयों की संख्या बढ़ाने के अभिप्राय से ही इसका निर्माण किया गया है। इसे भारतीय सेना का एक अंग बना दिया गया है और इसी में से व्यवस्थित सेना के लिए भर्ती की जाती है। इसका मुख्य कर्तव्य देशरक्षा ही है। यह बताया जा चुका है कि यूरोपीय महायुद्ध के समय में देशरक्षा के अभिप्राय से स्वयंसेवकों का दल बनाया गया था। यह सेना उसी दल का नवीन संगठन, इंग्लैंड के पुराने मिलीशिया के आधार पर है।

इंडियन टेरिटोरियल फ़ोर्स में आजकल १८ प्रान्तीय बेटेलियन, ३ शहरों की यूनिट (Urban Units), ११ यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर और एक मेडिकल ब्रांच है। प्रान्तीय बेटेलियन का अभिप्राय उसे व्यवस्थित सेना के ही रूप में लाना है। अतएव इसकी जिम्मेदारी अधिक है। आवश्यकता पड़ने पर इसी में से व्यवस्थित सेना में सैनिक लिये जायेंगे।

शहर की यूनिट का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं प्रान्तों के लिए है जिनमें वे स्थित हैं। यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर में अपने अपने विश्वविद्यालय के ही विद्यार्थी लिये जाते हैं। इसका अभिप्राय सेना में भरती करने या प्रान्त की रक्षा करने का नहीं वरन् केवल युद्ध संबंधी शिक्षा देना ही है।

प्रान्तीय टेरिटोरियल फ़ोर्स में ३ वर्ष के लिए या कहीं कहीं ४ वर्ष के लिये भरती होती है। हर एक प्रान्तीय टेरिटोरियल फ़ोर्स के लिए ५ ब्रिटिश अफ़सर व्यवस्थित सेना से दिये जाते हैं जो प्रतिवर्ष 'कैम्प' में ही युद्ध कला की शिक्षा देते हैं। प्रथम वर्ष प्रत्येक व्यक्ति को एक मास तक शिक्षा दी जाती है। इसके बाद प्रतिवर्ष समय समय पर कुल मिलाकर ३० दिन सिखाया जाता है।

शहर यूनिट—ये तीन शहर यूनिट बंबई, मद्रास और इलाहाबाद में हैं। इसमें ६ वर्ष के लिए भरती होती है। इन ६ वर्षों में शिक्षा का प्रबंध केवल साल भर का रहता है। प्रथम वर्ष कुल मिलाकर ३२ दिन और बाद में प्रतिवर्ष केवल १६ दिन शिक्षा दी जाती है।

यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर—यूनिवर्सिटी कोर के ११ प्रधान स्थान (Headquarters) ये हैं—बंबई, कलकत्ता, लाहोर, इलाहाबाद, मद्रास, पटना, नागपुर, बनारस, लखनऊ, रंगून, ढाका, दिल्ली और करांची। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि इसमें यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी तथा अध्यापक ही भरती हो सकते हैं और इसका अभिप्राय केवल युद्ध संबंधी शिक्षा ही देना है। यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर के प्रत्येक हिस्से के लिए एक ब्रिटिश आफ़ि-सर जिसे स्टाफ़ सार्जेंट इंस्ट्रक्टर कहते हैं, दिया गया है। इनकी शिक्षा साल भर होती है और प्रत्येक प्रान्त में प्रतिवर्ष एक छोटा कैम्प हुआ करता है जिसमें क़वायद, खेल आदि हुआ करते हैं। यद्यपि इनका कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं है किन्तु इनमें से प्रान्तीय तथा शहर यूनिट के लिए आफ़िसर या सैनिक भी लिये जा सकते हैं।

रियासती देशी सेना—भारतीय सेना के अतिरिक्त देशी रियासतों

में भी सेनाएं हैं जो रियासतों के ही ख़र्चे से बनाई गई हैं। पहिले इन्हें 'इंपीरियल सर्विस ट्रूप्स' कहते थे। आवश्यकता पड़ने पर देशी रियासतों की सेना ने ब्रिटिश सरकार की सदैव बड़ी मदद की है यद्यपि यह इसके लिए बाध्य नहीं हैं। सरकार की ओर से हर एक देशी रियासत में कुछ स्थायी ब्रिटिश अफ़सर रहते हैं, जिन्हें मिलिटरी एडवाइज़र और असिस्टेंन्ट मिलिटरी एडवाइज़र कहते हैं। इनका कार्य रियासत के राजा को सेना प्रबंध संबंधी परामर्श देना है।

यूरोपीय महायुद्ध के बाद रियासतों ने अपनी सेनाओं का संगठन नवीन ढंग से किया है। सन् १९२९ में रियासतों की कुल सेना ३६,१२१ थी। ये इस प्रकार थीं—तोपख़ाना (Artillery)—१,४४५; रिसाला—८,३८०; पैदल—२३,०९८; ऊँट—४६३; मोटर मशीनगन—२६; सेपर्स—१०१८ और माल ढोने वाली ख़च्चर फ़ौज (Transport Corps) १,६९६।

रायल इंडियन मेरीन (Royal Indian Marine)—भारतीय जहाज़ी बेड़ा का इतिहास ईस्टइंडिया कंपनी की उत्पत्ति से ही आरंभ हुआ। कंपनी को अपने व्यापार तथा माल की, समुद्री डाकुओं तथा पोर्तगीज़ और फ़रासीसियों से रक्षा करने के लिए हिन्दमहासागर में लड़ाई का बेड़ा रखना पड़ा। इस बेड़े ने समय समय पर अपनी शक्ति के अनुसार बड़े बड़े कार्य किये। यूरोपियन महायुद्ध के समय इसने प्रशंसनीय सहायता की। हिन्दमहासागर को अधिकार में रखते हुए इसने इजिप्ट, मारस्लेज़, तथा पूर्वीय अफ़्रीका में भी युद्ध किया। सन् १९१९ में लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद इसका आकार तथा कार्य बहुत ही घटा दिये गये।

सन् १९२५ में भारत सरकार नें 'रालिंसन कमेटी' भारतीय समुद्री सेना की जाँच एवं संगठन के लिए बनाई। कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार 'रायल इंडियन मेरीन' का संगठन 'रायल नेवी' के ही आधार पर आरंभ हुआ। भारतवासियों को 'रायल इंडियन मेरीन' में स्थान देने के लिए

प्रतियोगी परीक्षा (Competitive Examination) का आयो-जन किया गया। पहिली परीक्षा जून १९२९ में हुई। जिसमें ८९ उम्मे-दवार बैठे किन्तु अभाग्यवश कोई भी योग्य न निकला। दिल्ली में नवंबर के महीने में फिर परीक्षा हुई जिसमें १९ में से २ लिये गये। ये इंजीनियरिंग के विद्यार्थी थे अतः शिक्षा के लिए विलायत ५ वर्ष के लिए भेजे गये। आजकल इसमें डाकयार्ड के कर्मचारियों के अतिरिक्त १०२ कमीशन प्राप्त अफ़सर, १,०५५ वारंट प्राप्त अफ़सर हैं। इसके पास ४ स्लूप (Sloops), २ पेट्रोल वेसल (Petrol Vessels), ५ ट्राल्स (Trawlers) २ सर्वे करने के जहाज़ (Survey Ships) तथा एक जहाज़ शिक्षा देने के लिए है। सन् १९३४ के एक्ट के अनुसार इसका नाम 'रायल इंडियन नेवी' हो गया है। इसका कमान्ड "रियर एडमिरल" करता है।

रायल एयर फ़ोर्स (Royal Air Force)—रायल एयर फ़ोर्स में ८ स्क्वेड्रन (Squadrons) हैं, जिनमें लड़ाका हवाई जहाज़ के अति-रिक्त सामान ढोने के भी बड़े-बड़े हवाई जहाज़ हैं। कराँची और लाहोर में हवाई जहाज़ों की मरम्मत करने के कारखाने हैं। हवाई बेड़े में २१५ हवाई जहाज़, २,२१५ ब्रिटिश अफ़सर तथा १,२२३ हिन्दुस्थानी अफ़सर और अन्य कर्मचारी हैं। रायल ऐयरफ़ोर्स ने कई तरह से सेवा की है। सन् १९२८ के अफ़गानिस्तान के विद्रोह में इसने ५८३ व्यक्तियों की जानें उन्हें काबुल से हिन्दुस्तान लाकर बचाई। युद्ध संबंधी बातों के अतिरिक्त शांति के समय भी इसने प्रशंसनीय कार्य किया। शायोक (Shyok) बाँध के टूटने पर इसने सिंध नदी के तटवर्ती निवासियों को रसद आदि पहुँचाने में बहुत सहायता दी। अगस्त मास सन् १९३० में सिन्धु नदी में भयंकर पूर आने से जब जेकबाबाद और रेटी के बीच का रेलमार्ग टूट गया तब रायल एयर फ़ोर्स ने अमूल्य सहायता देकर बहुत से मनुष्यों के प्राण बचाये। इसके अतिरिक्त पश्चिमी सीमाप्रांत के अगम्य स्थानों के नक़शे आदि बनाने में भी इसने ख़ास हाथ बँटाया। अभी हाल

ही में पहली जून १९३५ को क्वेटा में भयंकर भूचाल आया जिसमें हज़ारों व्यक्ति मरे एवं घायल हुए। इस अवसर पर भी हवाई जहाज़ों ने अनुपम एवं प्रशंसनीय सेवा की है।

इंडियन एयर फ़ोर्स—सेना के अन्य विभागों की तरह हवाई जहाज़ के विभाग में भी भारतीयों को स्थान मिलने लगा है। सरकार के द्वारा ८ अक्टूबर सन् १९३२ में इंडियन एयर फ़ोर्स भी स्थापित कर दिया गया है। क्रेनवेल के कालेज में भारतवासियों के लिए भी संख्या निश्चित हो गई है। आशा की जाती है कि कुछ वर्षों के बाद 'इंडियन एयर फ़ोर्स' अच्छी उन्नति कर लेगा।

सेना विभाग का शासन प्रबंध—काउंसिल सहित गवर्नर जनरल ही सेना विभाग के शासन प्रबंध का अन्य विभागों के समान प्रधान है। किन्तु सेना के संचालन एवं नीति नियंत्रण का सारा भार कमांडर-इन-चीफ़ के ही हाथों में है। कमांडर-इन-चीफ़ अर्थात् भारतीय सेना का प्रधान सेनापति वायसराय की कार्यकारिणी का सदस्य और अपने विभाग का प्रधान है। इसके आधीन थलसेना, जलसेना, वायुसेना आदि सब विभाग हैं। सेना संबंधी नीति आदि के लिये प्रधान सेनापति का अब सीधे इंगलैड के युद्ध विभाग (War Office) से ही संबंध है।

प्रधान सेनापतिके परामर्श और सहायता के लिये ४ सदस्यों की एक छोटी सी समिति है। इसका सभापति स्वयं प्रधान सेनापति है तथा क्वार्टर मास्टर जनरल, मास्टर जनरल आफ़ आर्डिनेंस, सेना विभाग का भारत सरकार का सेक्रेटरी (Secretary of the Government of India in the Army Department) और सेना संबंधी धन का अर्थ मंत्री (Financial Adviser of Military Finance) इसके सदस्य हैं।

सेना खर्च (Army Expenditure)—योरोपीय महायुद्ध के पहिले (१९१३-१४) सेना विभाग पर २९ करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय होते थे।

सन् १९२२-२३ में कई कारणों से सेना खर्च ६३ करोड़ रुपया हो गया। अतएव सन् १९२२ में एक कमेटी जो 'इंच केप कमेटी' कहलाती है, भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति की जांच के लिये बनाई गई। इस कमेटी ने सेनाविभाग के खर्चे को भी कम करने का प्रयत्न किया। 'इंच केप कमेटी' की रिपोर्ट के अनुसार सेना का वार्षिक खर्च ६३ करोड़ से ५९ करोड़ हो गया। देश की आर्थिक स्थिति इस खर्चे को भी सँभालने के लिये पर्याप्त न थी। सन् १९२८ ई० में प्रधान सेनापति ने इस शर्त पर ठेका लेना स्वीकार किया कि सेना विभाग की आर्थिक परिस्थिति पर कोई हस्तक्षेप न करे। प्रधान सेनापति का प्रस्ताव मान लिया गया और उसे ५५ करोड़ रुपये की रकम सेना प्रबंध के लिये दी गई। इस समय से सेना का आर्थिक प्रबंध भी पूरी तरह से प्रधान सेनापति के हाथ में आगया है। इस प्रकार के प्रबंध को 'सेना का ठेका' (Army contract System) कहते हैं। इस प्रबंध से सेना व्यय कम करने में अच्छी सफलता मिली। सन् १९३१-३२ में सेना व्यय ५१ करोड़ ७ लाख ६९ हजार रह गया। सन् १९३३-३४ में सेना पर ४९ करोड़ ६७ लाख खर्च हुआ। सन् १९३४-३५ के बजट में सेना का खर्च ४९ करोड़ ५८ लाख निर्धारित हुआ है।

सेना प्रबंध तथा संगठन—भारत की सेना चार विभागों में विभक्त है। उत्तरीय विभाग का शासन केन्द्र 'मरी' में है। उसकी आधीनता में पंजाब और सीमा प्रान्त की सेनायें हैं। दूसरा दक्षिणी विभाग है, जिसका शासन केन्द्र 'पूना' है। पूना से ही बंबई, मध्यप्रान्त तथा राजपूताना की सेनाओं का प्रबंध होता है। तीसरा पूर्वी विभाग है जिसका केन्द्र नैनीताल में है। यहाँ से यू० पी० और बंगाल का सेना प्रबंध होता है। चौथा पश्चिमी विभाग है जिसका केन्द्र क्वेटा में है। यहाँ से बलोचिस्तान और सिंध की सेनाओं का शासन प्रबंध होता है।

सेना का प्रबंध भी ४ भागों में विभाजित है। एक को 'जनरल स्टाफ़

विभाग', दूसरे को 'एडजूटेंट जनरल विभाग', तीसरे को 'क्वार्टर मास्टर जनरल' तथा चौथे को 'मास्टर जनरल आफ़ आर्डिनेंस विभाग' कहते हैं। पहिले विभाग के काम सेना की नीति निश्चित करना, देश-रक्षा के लिये उचित स्थानों पर सेना की नियुक्ति और सैनिक शिक्षा का प्रबंध आदि करना है। दूसरे विभाग के अंतर्गत सैनिकों की भर्ती करना, अफ़सरों की नियुक्ति, सेना की तबदीली, उसकी व्यवस्था, सैनिक चिकित्सकों का प्रबंध करना आदि है। तीसरे विभाग का कार्य रसद आदि पहुँचाना है। चौथा विभाग वस्त्र, साजसामान भोजन की सामग्री, अस्त्रशस्त्र आदि युद्ध की सामग्री का प्रबंध करता है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे विभाग तथा अफ़सर हैं जिनमें इंजीनियर इन चीफ़ सैनिक सेक्रेटरी विशेष उल्लेखनीय है।

निम्नांकित नक्शे मे सैनिक शासन की शृंखला स्पष्ट हो जावेगी—

सैनिक संगठन

कमांडर-इन-चीफ़

- कमांडर, बर्मा—कमांडर, रंगून
- जनरल आफ़िसर कमांडर-इन-चीफ़ दक्षिणी विभाग
  - कमांडर, मद्रास
  - कमांडर, बंबई—कमांडर, मऊ डिस्ट्रिक्ट
  - कमांडर, पूना
  - कमांडर, दक्षिण—
    - कमांडर, सिकंदराबाद
    - " जबलपुर
    - " अहमद नगर
    - " सिकंदराबाद
- जनरल आफ़िसर कमांडर-इन-चीफ़ पूर्वी विभाग
  - कमांडर, आसाम डिस्ट्रिक्ट
  - कमांडर, लखनऊ——
    - कमांडर, देहरादून
    - इलाहाबाद
  - कमांडर, देहली डिस्ट्रिक्ट
  - कमांडर, मेरठ डिस्ट्रिक्ट—
    - कमांडर, मेरठ
    - " देहरादून
    - " बरेली
    - " झांसी
- जनरल आफ़िसर कमांडर-इन-चीफ़ पश्चिमी विभाग
  - कमांडर, बलोचिस्तान डिस्ट्रिक्ट
    - कमांडर, क्वेटा
    - " "
  - कमांडर, झोब डिस्ट्रिक्ट
  - कमांडर, सिंध डिस्ट्रिक्ट
  - कमांडर, वज़ीरिस्तान डिस्ट्रिक्ट
    - कमांडर, राजमक ब्रिगेड
    - " बानू "
    - " वाना "
- जनरल आफ़िसर कमांडर-इन-चीफ़ उत्तरी विभाग
  - कमांडर, लाहौर डिस्ट्रिक्ट
    - कमांडर—(१) सियालकोट, (२) मुल्तान, (३) फ़ीरोज़पुर (४) जलंधर, (५) लाहौर, (६) अंबाला
  - कमांडर, रावलपिंडी डिस्ट्रिक्ट
    - कमांडर—(१) रावलपिंडी, (२) झेलम, (३) अबोटाबाद
  - कमांडर, पेशावर डिस्ट्रिक्ट
    - कमांडर—(१) रिसालपुर (२) लंडीकोटाल, (३) पेशावर (४) नौशेरा
  - कमांडर, कोहाट डिस्ट्रिक्ट—कमांडर, कोहाट

आठवाँ अध्याय

शान्ति और न्याय

पुलिस

अंग्रेज़ी राज्य के पहले अर्थात् मुसलमानी काल में पुलिस का काम तीन हिस्सों में बँटा हुआ था। शहरों विशेषतः बड़े शहरों का प्रबंध कोतवाल के हाथ में था। उसकी सहायता के लिए सिपाही होते थे। शहर के बाहर बड़ी सड़कों आदि का प्रबन्ध फ़ौजदारों के हाथ में था। सड़कों और रास्तों पर शान्ति रखना उसके कर्तव्यों में था। सरकार* में शान्ति रखने का भार अमल गुज़ार पर रहता था। उसके निरीक्षण में गाँवों में पुलिस का काम मुक़द्दम और चौकीदार करते थे। इस प्रबन्ध में सूबों की परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण कुछ हेर फेर भी कर दिया जाता था। इन साधनों के अलावा गुप्त चर अर्थात् खुफ़िया पुलिस भी रहती थी जो प्रायः केन्द्रिक शासन के निरीक्षण में थी। मुग़ल साम्राज्य के जीर्णशीर्ण हो जाने पर उनका पुलिस प्रबन्ध भी बिगड़ गया। यद्यपि पुराने नाम के पदाधिकारी थे किन्तु शायद गाँव के चौकीदार को छोड़ कर सब कर्तव्य विमुख ही नहीं किन्तु अत्याचार करने लगे थे। ज़मींदारों के हाथ में अधिक शक्ति चली गई और वे और कामों के साथ पुलिस के काम भी स्वेच्छानुसार करने लगे।

---

*सूबे का भाग जो कमिश्नरी अथवा ज़िले की तरह होता था।

ईस्टइण्डिया कम्पनी का प्रभुत्व जब मद्रास और बंगाल में स्थापित हो गया तब पुलिस के सम्बन्ध में उन्होंने सबसे पहले जो काम किया वह ज़मींदारों के हाथ से पुलिस के काम को ले लेना था। लार्ड कार्नवालिस ने उनसे पुलिस का काम लेकर कम्पनी के नौकरों को सुपुर्द किया। १७९३ में उसने ज़िला जजों को आज्ञा दी कि वे ज़िले में प्रत्येक ४०० वर्ग मील के हल्के बना कर उनमें से हर एक में पुलिस दरोगा नियुक्त करें। दरोगा का काम ज़िला जज मजिस्ट्रेट की हैसियत से देखना था। सन् १८१६ में पुलिस का काम ज़िला जज के हाथ से लेकर कलेक्टर के सुपुर्द कर दिया। इस समय कलक्टर मजिस्ट्रेट का भी काम करता था। ऐसा ही प्रबन्ध मद्रास में स्थापित किया गया। किन्तु कलक्टर के पास इतना काम था कि वह ज़िले की पुलिस का अच्छी तरह निरीक्षण नहीं कर सकता था। इसके अलावा फ़ौज के सिपाहियों को भी कुछ पुलिस का काम करना पड़ता था। प्रबन्ध की बेतरह शिकायतों के कारण लार्ड बेंटिक ने प्रेसीडेन्सी नगर के लिए एक एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त किया। इन नगरों से बाहर बंगाल सूबे के लिए ढाका, मुर्शिदाबाद और पटने में भी एक एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुआ जो अपने अपने अहाते के भीतर की पुलिस का निरीक्षण करते थे। किन्तु बम्बई सूबे में ऊट्रम साहब के पथ प्रदर्शन एवं नेपियर साहब की आयोजना के अनुसार यह निश्चित हुआ कि पुलिस विभाग को किसी का पुछल्ला न करके स्वतंत्र विभाग के रूप में संगठित करना ही हितकर है। यह प्रबन्ध बम्बई में प्रचलित हुआ और कई ज़िलों में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त किये गये (१८५२–५७)। यही प्रथा सन् १८५५ से ५९ में मद्रास में भी आरंभ की गई। इससे भिन्न यू० पी० और पंजाब में दो प्रकार की पुलिस रक्खी गई। एक तो अर्ध सैनिक (Semi-Military Police) और दूसरी खुफ़िया अथवा साधारण (Detective)। किन्तु इस प्रबन्ध में खर्च अधिक पड़ता था।

सन् १८६१ में पुलिस के संगठन का एक एक्ट (An Act for the Regulation of Police) पास हुआ जिसके अनुसार मद्रास और बम्बई सूबे को छोड़ कर सारी ब्रिटिश इण्डिया की पुलिस का संगठन हुआ। उन दोनों सूबों ने अपने लिये १८५९ और १८६७ में क्रमशः एक्ट पास कर लिये थे। १८६१ के एक्ट के अनुसार निश्चित हुआ कि पुलिस असैनिक (Civil) सिद्धान्त पर स्वतंत्र रूप में संगठित की जाय। पुलिस के अध्यक्ष यूरोपियन नियुक्त किये जायँ। गाँवों की पुलिस भी इसी संगठन का अंश कर दी जाय। यह नये ढंग की पुलिस प्रायः सभी प्रकार की पुलिस का काम करे। प्रान्त भर की पुलिस का प्रबन्ध एक ही यंत्र द्वारा संचालित और निरीक्षित हो। इसी एक्ट के अनुकूल सूबों की पुलिस आजकल संगठित है। सन् १८८९ में पुलिस के कर्मचारियों का वेतन कुछ बढ़ाया गया। इण्डियन पुलिस सर्विस जो कि इण्डियन सिविल सर्विस की तरह उच्च पदाधिकारियों की है उसके लिए सन् १८९३ से परीक्षा द्वारा चुनाव होने लगा। यह परीक्षा भारत में भी होती है। १९०५ में वेतन की और भी वृद्धि कर दी गई। इसी समय पुलिस के इन्सपेक्टरों की शिक्षा के लिये सूबों में स्कूल भी खोल दिये गये। सन् १९२० से शिक्षित सिपाहियों की संख्या भी बढ़ रही है जिससे सुधार की आशा की जा सकती है। इस समय सूबों की पुलिस की संख्या दो लाख से अधिक है। तथा देश में दस हज़ार से अधिक थाने हैं। पुलिस पर लगभग ग्यारह करोड़ रुपया वार्षिक खर्च होता है।

खुफ़िया पुलिस (Criminal Investigation Department)—इतिहास के पाठक जानते होंगे कि एक समय ठगी और डकैती का देश में ज़ोर था। उसका केन्द्र मध्यभारत में था पर वहाँ से दूर प्रदेशों में भी ठग और डाकू फैल जाते थे। ठगी के दमन के लिए लार्ड बेंटिक ने एक विभाग क़ायम किया (१८३०) जिसने सफलता पूर्वक काम कर दिखाया। कुछ वर्षों

के बाद (१८३९) डकैती दमन करने का काम भी उसके सुपुर्द कर दिया गया। सन् १८६०-६३ के बाद इसकी आवश्यकता ब्रिटिश भारत के लिए न रह गई अतएव यह रियासतों में डकैती दमन करने के लिए उनको सहायता देने के लिए क़ायम रहा। सन् १९०४ में ठगी-डकैती विभाग ने अपना रूप बदल कर सेन्ट्रल सी० आइ० डी० का रूप पाया। यह विभाग भारत की केन्द्रिक सरकार के होम डिपार्टमेंट की अध्यक्षता और निरीक्षण में संगठित है। इसका काम संगठित और व्यापक जुर्मों की जांच करना और उनका उद्‌घाटन करना है। ऐसे व्यापक और संगठित जुर्मों के करनेवालों का जाल अथवा कार्यक्षेत्र चारों ओर फैला रहता है इसी कारण इसका प्रवन्ध भारत की सरकार ने अपने हाथ में रक्खा। किन्तु प्रान्तिक कार्य के लिए हर प्रान्त में एक एक सी० आइ० डी० विभाग खोल दिया गया। आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय विभागों और रियासतों को भी केन्द्रिक विभाग सहायता देता है।

संगठन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सूबे की पुलिस का निरीक्षण और संचालन एक ही यंत्र द्वारा होता है। पूरे सूबे की पुलिस का सबसे बड़ा अफ़सर "इन्सपेक्टर-जनरल-आव्-पुलिस" है। इसके उतर कर एक सूबे में डिप्टी-इन्सपेक्टर जनरल-आव् पुलिस होते हैं जिनमें से प्रत्येक सूबे के एक विभाग का अध्यक्ष होता है। रेल की पुलिस भी एक डि० आइ० जी० पुलिस और सी० आइ० डी० भी एक डि० आइ० जी० पुलिस की अध्यक्षता में रहती है।

जिले की पुलिस का अध्यक्ष डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट आव् पुलिस (D.S.P.) होता है। यद्यपि शान्ति स्थापन और जुर्मों की जाँच के लिए यह ज़िला के कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर की अध्यक्षता में काम करता

हैं किन्तु ज़िले की पुलिस के संगठन आदि विषयों में यह अपने से ऊपर पुलिस विभाग के अफ़सरों का मातहत है। ज़िला के एस० पी० की सहायता के लिये बड़े शहरों में एक असिस्टेन्ट एस०पी० (A.S.P.) भी रख दिया जाता है। किन्तु साधारणतः एस० पी० के नीचे डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस होते हैं जो प्रायः हिन्दुस्तानी होते हैं। ये लोग ज़िले के एक हिस्से के प्रबन्धक होते हैं और अपने हल्क़े में दौरा करके निरीक्षण करते हैं। प्रत्येक हल्क़े में कई थाने होते हैं। थाने का अफ़सर थानेदार होता है। थानेदार की सहायता के लिए नायब, दीवान, कान्सटेबिल, चौकीदार आदि रहते हैं। थाने के अन्दर कई पुलिस की चौकियाँ होती हैं जिनमें हेड कान्सटेबल और कई कान्सटेबल रहते हैं। गाँवों में पुलिस चौकीदार रहते हैं। इस प्रकार शहरों से लेकर गाँव तक पुलिस का जाल फैला हुआ है।

इस सम्बन्ध में यह जान लेना चाहिये कि प्रेसीडेन्सी टाउन्स (कलकत्ता, बम्बई, मद्रास) का पुलिस प्रबन्ध सूबे की साधारण पुलिस के संगठन से बाहर है अर्थात् वह इन्सपेक्टर जनरल आव् पुलिस के द्वारा नियंत्रित नहीं होता। उन शहरों की पुलिस का इतिहास भी कुछ भिन्न है। प्रत्येक शहर की पुलिस का मुख्याधीश पुलिस कमिश्नर होता है जिसका सम्बन्ध सीधा सूबे की सरकार से है न कि इन्सपेक्टर जे० पुलिस से।

ज़िला के मुख्य शहर में ज़िला की पुलिस का केन्द्र होता है। यहीं पर एस० पी० आदि अफ़सर और उनका दफ़्तर होता है। यहाँ पर पुलिस लाइन रहती है जिनमें फालतू (Reserve) पुलिस रहती है और नये रंगरूटों को क़वायद आदि सिखाई जाती है। यदि शहर में या अन्यत्र कहीं अधिक पुलिस की आवश्यकता पड़ी तो उसके अनुसार वहाँ सिपाही भेज दिये जाते हैं। लाइन में आवश्यकतानुसार हथियार बन्द पुलिस भी रहती है जो कचहरियों ख़ज़ानों आदि में पहरा देते हैं। बाज़ बाज़ शहरों में हथियार बन्द घोड़सवार पुलिस भी रहती है।

कचहरियों में पुलिस के मुक़द्दमों की पैरवी करने के लिए प्रॉसीक्यूटिंग इन्सपेक्टर नियुक्त रहते हैं। संगीन मामलों की पैरवी के लिए सरकार की ओर से छोटे या बड़े वकील भी रहते हैं। ये पब्लिक प्रॉसीक्यूटर या असिसटेन्ट पब्लिक प्रॉसीक्यूटर कहलाते हैं।

रेलवे पुलिस का संगठन कुछ विभिन्नता रखता है। ऊपर कहा जा चुका है कि रेलवे पुलिस एक डि०इ०जेनरल की मातहत है। इसके मातहत एक असिसटेंट इ० ज० (A.I.G.) होता है। सूबा कई भागों (Divisions) में विभक्त है। प्रत्येक डिवीजन एक डिवीजनल सुपरिनटेन्डेंट के निरीक्षण में है।

सी० आइ० डी०—आइ० जी० (इन्सपेक्टर जेनरल) के नीचे एक डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल होता है जो सी०आइ०डी० का निरीक्षण करता है। इसकी मातहती में भी कई असिसटेंट डी० आइ० जी० (A.D.I.G.) होते हैं।

आसाम (Assam Rifles) का संगठन फ़ौजी ढंग पर है। उसी प्रकार पश्चिमोत्तर प्रान्त में साधारण पुलिस के अलावा फ्रन्टियर कान्स्टेब्यूलरी (Frontier Constabulary) है जिसका ख़र्च केन्द्रिक सरकार उठाती है।

Civil Justice

न्यायविभाग (दीवानी)

सन् १६६१ में द्वितीय चार्ल्स ने बम्बई के गवर्नर और उसकी काउन्सिल को दीवानी एवं फ़ौजदारी के मामलों का फैसला करने का अधिकार दिया। सन् १६८३ में उसी ने यह आज्ञा दी कि कोर्ट आव् जूडीकेचर (Court of Judicature) उन स्थानों पर क़ायम किये जायें जहाँ कम्पनी उचित समझे। इनमें एक क़ानून जानने वाला

(Lawyer) और दो कर्मचारी (Merchants) नियुक्त किये जायँ। सन् १७२६ में बम्बई मद्रास और कलकत्ते में मेयर (Mayor) की कचहरियाँ जिसमें मेयर के अलावा ९ सदस्य (Alderman) होते थे स्थापित की गई जिनको न्याय करने का अधिकार दे दिया गया। इनकी अदालत से प्रेसीडेन्सी की अदालत में अपील हो सकती थी। और चार हज़ार रक़म के मामलों की अपील राजा और उसकी काउन्सिल (King in his Council) में की जा सकती थी। किंतु सन् १७५३ में इनका अधिकार सिर्फ़ यूरोपियनों पर रह गया। इनके अलावा बीस रुपये तक के मामलों को तय करने के लिए (Court of Request) क़ायम किये गये।

सन् १७५७ में कम्पनी के हाथ में बंगाल, फिर बिहार और उड़ीसा आया। यहाँ पहले से दीवानी के मामलों को तय करने के लिए मुग़ल सम्राट् की ओर से दीवानी अदालत और काज़ियों की अदालतें थीं। सूबों की दीवानी पाने पर १७६५ में भी कुछ वर्षों तक पुरानी अदालतें चलती रहीं। सन् १७७२ में कम्पनी ने स्वयं दीवानी अदालतों के नियंत्रण का भार अपने हाथ में ले लिया और ज़िलों में यूरोपियन जजों की अध्यक्षता में ऐसी अदालतें क़ायम हो गई जिनमें हिन्दू अथवा मुस्लिम क़ानून चलता रहा। छोटे मामलों के लिए सदर अमीन और मुंसिफ़ तैनात किये गये। उपर्युक्त अदालतों से सूबों की अदालतों में (जिनमें ४ यूरोपियन जज होते थे) अपील हो सकती थी और उन सब अदालतों के ऊपर कलकत्ते की सदर दीवानी अदालत में (जिसमें गवर्नर और उसकी कौंसिल के सदस्य होते थे) अपील की जा सकती थी। सन् १७७४ में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार कलकत्ते में एक Supreme court of Judicature क़ायम किया गया जिसमें यूरोपियन जज और एक चीफ़ जस्टिस नियुक्त किये गये। इसके संस्थापन से मेयर की कोर्ट का अन्त हो गया। Supreme Court of Judicature में अँग्रेज़ी क़ानून चलता था। इस कचहरी

का पूर्वस्थापित अन्य अदालतों से संबंध निश्चय न होने के कारण बड़ा गोलमाल पैदा हो गया।

लार्ड कार्नवालिस ने सुधार का प्रयत्न किया। उसके सुधारों से निम्न-लिखित संगठन स्थापित हो गया। सबसे नीचे पचास रुपये तक के मामले तय करने के लिए कमिश्नर, अमीन, सालिस और मुंसिफ होते थे जिनको तनख्वाह नहीं किन्तु उनके फैसला किये हुए मामलों की रकम में रुपया पीछे एक आना कमीशन मिलता था। इन कचहरियों के ऊपर ज़िले की अदालत थी जिसका अध्यक्ष यूरोपियन जज होता था जो हिन्दु-स्थानी असेसरों की सहायता से अपने ज़िले के माल और दीवानी के मामलों का निर्णय करता था। ज़िले की अदालत के ऊपर सूबों की अदालतें थीं जिनके केन्द्र पटना, ढाका, मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में थे। इनमें से प्रत्येक में तीन यूरोपियन जज होते थे जो असेसरों, काज़ी अथवा पंडित की राय से मुकद्दमे तय करता था। यदि हज़ार रुपये से ऊपर की रकम का मामला होता तो उसकी अपील सूबे की कचहरियों से सबसे बड़ी कचहरी सदर दीवानी अदालत में (जो पूर्ववत थीं) हो सकती थी। इन कचहरियों में यूरोपियनों के मामले नहीं आते थे। उन पर Supreme Court of Judicature का अधिकार था। कार्नवालिस के समय का ढाँचा ही आगे चलकर कुछ काट-छाँट और परिवर्तन के साथ स्थिर होगया और आजतक चल रहा है।

लार्ड वेलेज़ली के समय में (१७९८–१८०५) सदर दीवानी अदालत का रूप बदल गया। उसमें गवर्नर और उसकी काउन्सिल के बजाय तीन जज नियुक्त कर दिये गये। इसमें समय समय पर जजों की संख्या बढ़ती रही और अन्त में यह संस्था सन् १८६१ में सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court)से मिलकर हाईकोर्ट के रूप में परिवर्तित हो गई।

लार्ड बेन्टिंक ने सूबों की कचहरियाँ तोड़ दीं और ज़िला जज के अधि-

कार बढ़ाकर उसकी उपाधि District and Sessions Judge कर दी। इसी प्रकार हिन्दुस्तानी कमिश्नर को मुख्य सदर अमीन (Principal Sadar Amin) की उपाधि दी। ये ही आगे चलकर सन् १८६८ में Subordinate Judge कहलाये। इनका पद District and Sessions जज के नीचे होता है। छोटे मामलों को तय करने वाली Court of Requests सन् १८५० में Small Cause Courts के नाम से संगठित कर दी गईं।

मद्रास में १८०१ में और बम्बई में १८२३ में मेयर कोर्ट के बदले सुप्रीमकोर्ट बनी। सन् १८६५ में दोनों सूबो में भी हाईकोर्ट और १८६६ में इलाहाबाद में हाईकोर्ट क़ायम हो गये। बाद को अन्य सूबों में जो* हाईकोर्ट बने हैं वे सन् १८६१ के पार्लिमेंट के एक्ट के ही आधार पर हैं। इसके बाद पार्लिमेंट द्वारा नहीं किंतु गवर्नर जनरल की काउन्सिल द्वारा चीफ़ कोर्ट और जुडीशियल कमिश्नर कोर्ट की स्थापना भिन्न भिन्न समय में अन्य सूबों में की गई। सन् १८६५ से १८७५ के बीच में सब जगह दीवानी अदालतें एक ही ढँग की कर दी गईं।

सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार जब भारतमें फ़ेडरेशन स्थापित होगा तब देहली में फ़ेडरल कोर्ट (Federal Court) नामक एक ऐसी अदालत बनाई जायगी जो फ़ेडरेशन सम्बन्धी क़ानूनी मामलों अथवा सूबों और रियासतों के पारस्परिक या केन्द्रिक शासन के झगड़ों का निर्णय करे। इसमें एक चीफ़ जस्टिस आव् इण्डिया और छः जज होंगे। जिनकी नियुक्ति सम्राट् करेंगे। इस अदालत के फ़ैसले के विरुद्ध कुछ शर्तों पर इंग्लैंड की प्रिवी काउन्सिल में अपील की जा सकेगी।

---

*पटना का हाईकोर्ट सन् १९१६ में, लाहौर का १९१९ में और नागपुर का १९३६ में बना।

दीवानी शासन का आधुनिक संगठन

गाँवों में—गाँवों में या तो मुखिया या पंचायतें (जैसा जहाँ हो) ५०) की मालियत के या वादी प्रतिवादी की इच्छानुकूल २००) तक के मामले तय करती हैं। मद्रास और सी०पी० में यह प्रथा विशेषतः प्रचलित है। कहीं कहीं ये गाँव के मुंसिफ़ कहलाते हैं।

ज़िला—ज़िला की दीवानी का सबसे बड़ा अधिपति 'डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज होता है'। इसकी नियुक्ति हाईकोर्ट के परामर्श से सूबे की सरकार करती है। यह ज़िला की अन्य अदालतों का निरीक्षण और स्वयं मुकद्दमे भी करता है। इसके अधीन सबोर्डिनेट जज और मुंसिफ़ होते हैं। दीवानी के मुक़द्दमे करने में उसका क्षेत्र करीब करीब वैसा ही है जैसा कि ज़िले के जज का। मुंसिफ़ की अदालत में १,०००) से २,०००) तक की मालियत के मुक़द्दमे जाते हैं। शहर के बाहर भी ज़िले में ५००) से १०००) तक के मामलों को तय करने के लिए सबोर्डिनेट जज या मुंसिफ़ होते हैं। बाज स्थानों में सब जज ५००) तक और मुंसिफ़ १००) तक के ही मामले तय करते हैं। इन छोटी अदालतों को Small Cause Courts कहते हैं। प्रेसीडेन्सी नगरों (बम्बई, कलकत्ता, मद्रास) की Small Cause Courts के कुछ अधिक अधिकार हैं। ज़िला की सबसे छोटी अदालतों से निर्धारित रक़मों के मामलों के सिवा, ज़िला जज की अदालत में अपील हो सकती है।

हाईकोर्ट—सब ज़िलों की अदालतें सूबे की हाईकोर्ट के निरीक्षण में होती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हाईकोर्ट का अधिकार-क्षेत्र उतना ही बड़ा हो जितना कि सूबा। आसाम के सूबे में कलकत्ते के हाईकोर्ट का अधिकार है। किन्तु यू०पी० में अवध के लिए चीफ़ कोर्ट अलाहदा है। हाईकोर्ट के जजों की नियुक्ति स्वयं सम्राट् करता है। और जब तक उसकी इच्छा होती है वे जज रहते हैं। जजों में से कुछ तो आइ० सी० एस्०

के होते हैं और कुछ बैरिस्टर या एडवोकेट होते हैं। हाईकोर्ट के संगठन के शासन पर तो सूबे की सरकार का निरीक्षण है किन्तु न्याय-शासन पर उसका कोई भी अधिकार नहीं है। सिर्फ़ कलकत्ता की हाईकोर्ट के शासन का निरीक्षण गवर्नमेंट आव् इंडिया के आधीन पहले से ही चला आता है। हाईकोर्ट में उसके अन्तर्गत जो अदालतें हैं उनसे अपील हो सकती है। कुछ निर्दिष्ट मामलों के सिवा, जिसमें कि हाईकोर्ट के फैसले के विरुद्ध प्रिवी-काउन्सिल में अपील की जा सकती है, हाईकोर्ट का फैसला ही अन्तिम होता है। चीफ़ कोर्ट और जुडिशल कमिश्नरी के अधिकार क़रीब क़रीब हाईकोर्ट के ही समान हैं।

प्रिवी काउन्सिल—प्रिवी काउन्सिल जो सम्राट् की सभा है उसको अधिकार है कि वह हाईकोर्ट के फ़ैसले के खिलाफ़ अपील सुने। दस हज़ार से कम मालियत के मुकद्दमें उसके सामने नहीं जाते। प्रिवी काउन्सिल इस अधिकार को एक जुडिशल कमेटी द्वारा प्रयोग करती है।

फ़ौजदारी अदालतें

फ़ौजदारी अदालतों का भी विकास क़रीब क़रीब उसी क्रम से हुआ जैसा कि दीवानी अदालतों का। बंगाल में अँग्रेज़ों के आने के पहले वही अदालतें दीवानी और फ़ौजदारी दोनों प्रकार के मामलों का फ़ैसला करती थीं। किन्तु जब वे बंगाल आये तो उन्हें नबाव के राज्य में दीवानी और फ़ौजदारी दो प्रकार की शक्तियाँ काम करती हुई मिलीं। मुग़ल व्यवस्था के अनुसार सूबे का सिपहसालार, सूबेदार नाज़िम की हैसियत से शान्ति रखता और फ़ौजदारी के मामलों का निर्णय करता था। उन बातों के लिए उसकी वैसी ही ज़िम्मेदारी थी जैसी कि माल और दीवानी के मामलों में दीवान की। सूबे के अन्य भागों और प्रान्तों में फ़ौजदारी के मामले भी ज़मींदार लोग तय किया करते थे। इसलिए यह

नहीं कहा जा सकता कि सूबे में दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें पृथक् थीं। क्लाइव ने शासन में कोई परिवर्तन नहीं किया। सन् १७७२ में कम्पनी ने अपने हाथ में शासन का भार लेना आरंभ कर दिया। उसी समय एक कमेटी Committee of Circuit नियुक्त की गई जिसने सूबे का दौरा करके शासन सुधार के लिए प्रस्ताव पेश किये।

उसी कमेटी के प्रस्ताव के अनुसार फ़ौजदारी की अदालतों की दीवानी की अदालतों से पृथक् संस्थापना की गई। फ़ौज़दारी अदालतों में जिनको "मुफ़स्सिल निज़ामत अदालत" भी कहते थे मुसलमान अफ़सर न्याय करते थे। उनके निर्णयों और कामों का निरीक्षण और सुधार 'कलेक्टर' किया करते थे और मंज़ूरी के लिए कलकत्ते के "दारोग़ा अदालत" के पास भेज देते थे। कम्पनी के गवर्नर की अनुमति से बंगाल का नवाब दारोग़ा की नियुक्ति करता था। फ़ौजदारी के मामलों की ज़िम्मेदारी नवाब के नायब निज़ाम के सुपुर्द थी। फ़ौजदारी के मामलों के लिए हेस्टिंग्ज़ ने कलकत्ते में एक सदर निज़ामत अदालत की स्थापना कराई। तब से यही अदालत सूबे के फ़ौजदारी शासन का निरीक्षण और मुफस्सिल फ़ौजदारी के फ़ैसले के विरुद्ध अपीलें सुनती रही। इसका मुख्याधीश भारतीय होता था।

कार्नवालिस ने सूबे के प्रान्तों में भी फ़ौजदारी अदालतें क़ायम करने की चेष्टा की। उसके सुधार के अनुकूल ज़िला जज ही दूसरी हैसियत में फ़ौजदारी के मामले तय करते थे। इस काम के लिए ज़िला के जज ज़िले में दौरा किया करते थे। दौरा करने वाले जजों की अदालतों को Court of Circuit कहते थे। इनकी संख्या ४ थी। ज़िला का स्थायी जज फ़ौज़दारी के मामले इन्हीं अदालतों में भेज दिया करता था। निज़ामत अदालत का केन्द्र भी मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते में कर दिया गया। उसी समय से नायब नाज़िम का ओहदा भी तोड़ दिया गया। उसके अधिकार सदर फ़ौज़दारी अदालत के हाथ में चले

गये। इसी काल में (१७९३) फ़ौजदारी के क़ानूनों का भी प्रथम संस्कार किया गया।

लार्ड वेलज़ली के समय में कलकत्ते की निज़ामत अदालत में गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल के सदस्यों के बजाय तीन अंग्रेज़ जज नियुक्त कर दिये गये। अन्त में सन् १८६२ में यह अदालत सुप्रीम कोर्ट के साथ मिलकर हाईकोर्ट के रूप में आ गई।

संगठन

गाँवों में मुक़द्दम अथवा पंचायत दीवानी अधिकार के साथ ही फ़ौजदारी अधिकार रखती है। मद्रास में जहाँ ये संस्थाएँ पूरी तरह विकसित हैं ये छोटे झगड़े आदि का फ़ैसला करती हैं। वह थोड़ा जुर्माना एवं कुछ घंटों के लिए क़ैद भी कर सकती हैं। सी०पी० में विलेज बेंच को १०) से २०) तक जुर्माना करने का अधिकार है। सन् १९२८ में १३९२ मुक़द्दम और २३२६ पंचायतें भारत में फ़ौजदारी अधिकार रखते थे।

गाँवों से ऊपर तहसीलों में नायब तसहीलदार और तहसीलदार को भी फ़ौजदारी के कुछ अधिकार प्राप्त हैं। प्रायः तहसीलदार दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार रखता है। नगरों में अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी रख दिये जाते हैं जो फ़ौज़दारी के मुक़द्दमे करते हैं।

तहसीलों के ऊपर ज़िले के एक विभाग का अफ़सर होता है जो सब-डिवीज़नल मजिस्ट्रेट कहलाता है। इनको प्रायः प्रथम दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं अर्थात् ये १०००) जुर्माना और दो वर्ष तक की क़ैद कर सकते हैं।

उपर्युक्त फ़ौजदारी के अफ़सर ज़िला मजिस्ट्रेट (कलक्टर अथवा डिप्टी कमिश्नर) की अध्यक्षता और निरीक्षण में रहते हैं। यद्यपि ज़िला मजिस्ट्रेट को फ़ौजदारी के पूरे अधिकार हैं किन्तु अनेक कामों में फँसे रहने

के कारण उसे मुक़द्दमा करने का समय कम मिलता है। फ़ौजदारी के अधिकांश मुक़द्दमे इसी लिए अन्य मजिस्ट्रेट किया करते हैं। तहसील-दारों, मजिस्ट्रेटों आदि की नियुक्ति सूबे की सरकार करती है।

मजिस्ट्रेटों के फ़ैसले के विरुद्ध अपील The District and Sessions Judge की कचहरी में की जा सकती है। इनकी नियुक्ति सूबे की सरकार हाईकोर्ट की अनुमति से करती है। प्रेसीडेन्सी शहरों में (कलकत्ता, बम्बई, मद्रास) यह अफ़सर नहीं होता। वहाँ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के फ़ैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में ही अपील होती है।

सेशन्स जज के फ़ैसले के विरुद्ध अपील हाईकोर्ट या चीफ़ कोर्ट या जुडिशल कमिश्नर की अदालत में होती है। ऊपर कहा जा चुका है कि हाईकोर्ट के न्याय कार्य में सूबे की सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। हाईकोर्ट ही मातहत जजों के कामों का निरीक्षण भी करती है। इसके फ़ैसले के विरुद्ध इसकी अनुमति से प्रिवी-काउन्सिल में ख़ास ख़ास मामलों की अपील भी की जा सकती है।

नवाँ अध्याय

जनोपयोगी विभाग—कृषि, शिक्षा, पब्लिक वर्क्स तथा सिंचाई, सफ़ाई एवं आबकारी

Departments of Public Utility—Agriculture, Public Works Dept., Irrigation, Sanitation, Excise & Education.

कृषि-विभाग

हमारा देश कृषि प्रधान है। प्राचीन काल से ही शासक कृषि की ओर विशेष रूप से ध्यान देते चले आये हैं। भूमि कर ही शासकों की आमदनी का प्रधान साधन रहा है। वर्षा कम अथवा अधिक होने के कारण देश में भयंकर दुर्भिक्ष की सदैव ही आशंका बनी रहती है। प्राचीन काल में आवा-गमन के साधनों का अभाव होने के कारण तथा सिंचाई की विशेष सुविधा न होने से दुर्भिक्ष बड़े भयंकर होते थे। दूरी के कारण दुर्भिक्ष पीड़ित लोगों को समय पर सहायता पहुँचाना असाध्य हो जाता था। इसके अतिरिक्त देश में वैज्ञानिक ढंग से खेती बारी न होने के कारण उपज में भी विशेष वृद्धि नहीं हो सकी। सन् ५७ के विद्रोह के कारण देश में बड़ी अशान्ति फैली जिससे खेती बारी में अनेकों बाधाएँ उपस्थित होने लगीं। प्रजा की सुविधा के विचार से लार्ड केनिंग ने काश्तकारी एक्ट के अनुसार बंगाल, बिहार, यू० पी० और सी० पी० के किसानों के अधिकार निश्चित कर उनकी बहुत सी कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न किया।

सन् १८६६ ईस्वी में अत्यंत वर्षा होने के कारण उड़ीसे में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिसके कारण बहुत प्राण हानि हुई। यह देख कर लार्ड लारेंस ने (जो उस समय वायसराय थे) एक फ़ेमीन कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन ने एक सरकारी कृषि विभाग खोलने की राय दी। दो ही वर्ष उपरान्त राजपूताने और बुंदेलखंड पर भी दुर्भिक्ष रूपी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। इन आपत्तियों का खेद जनक दुष्परिणाम देख सरकार की आँखें खुली। सरकार ने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये कुछ धन निकाल कर अलग रखना आरंभ किया, और खेती की उन्नति के लिये कृषि विभाग खोलने का भी आयोजन आरंभ किया।

कृषि विभाग—कृषि की उन्नति के लिये किसानों को नवीन कृषि प्रणाली की शिक्षा देना अनिवार्य था। अतएव सरकार ने स्थान स्थान पर फ़ार्म (नमूने के खेत) बनवाये। हमारे देश में हल वग़ैरा से ही खेत जोते जाते हैं। कुछ वर्षों के उपरांत खेत में बिना नवीन खाद दिये अच्छी उपज नहीं होती। सन् १८८० में पूना, १८८१ में सैयद पेठ एवं कानपुर में और १८८३ में नागपुर में सरकारी फ़ार्म खोल कर सरकार ने नई खाद देते रहने एवं गहराई में बीज बोने के लाभदायक परिणाम को दर्शा कर किसानों का उत्साह बढ़ाया। सन् १८८४ में भी कृषि विभाग खोलने का आयोजन हुआ। आरंभ में प्रान्तीय कृषि विभाग का कार्य केवल मालगुज़ारी के प्रश्नों को हल करना एवं लेंड रिकार्ड की संरक्षा ही करना था। सन् १९०१ में भारतीय कृषि विभाग के लिये एक इंसपेक्टर जनरल आफ़ एग्रिकल्चर नियुक्त हुआ। इसकी सहायता के लिये एक कृषि विज्ञान का और एक वनस्पति विज्ञान का विशेषज्ञ नियुक्त किया गया। इस समय तक केवल बम्बई, मद्रास और यू० पी० प्रान्तों में ही शिक्षा प्राप्त (Trained) डिप्टी डाइरेक्टर आफ़ एग्रिकल्चर थे।

सन् १९०३ में लार्ड कर्ज़न ने कृषि विभाग की उन्नति के लिये प्रयत्न

किया। दो वर्ष उपरांत पूसा में वैज्ञानिक रीति से खेती की उन्नति के लिए एक विशेष कालेज खुला। इस कालेज में बड़े बड़े वैज्ञानिक खेती की उन्नति के लिये नये उपायों की निरंतर खोज किया करते हैं। इसके अतिरिक्त लार्ड कर्ज़न ने शिकागो निवासी हेनरी फ़िलिप्स महोदय के दिये हुए ३० हज़ार पौंड के दान का बड़ा भाग भी खेती की उन्नति के लिये दे दिया। सन् १९०५ ईस्वी में भारतीय कृषि सर्विस का आयोजन हुआ। इसी वर्ष मे सरकार ने २० लाख रुपया प्रतिवर्ष कृषि की उन्नति के लिए देना आरंभ किया। इसका प्रधान लक्ष्य नवीन साधनों की खोज, प्रयोगों द्वारा शिक्षा देना एवं प्रान्तों में कृषि के कालेज खोलना था। उस समय से निरंतर इसकी उन्नति होती जा रही है।

सन् १९०५ में ही सर सेसून. जे. डेविड ने हिन्दुस्तानी माध्यम से कृषि की शिक्षा देने के लिए बम्वई सरकार को ५३ हज़ार पौंड दान दिया।

भारतीय कृषि विभाग का आधुनिक संगठन—सन् १९१९ के सुधारों से केन्द्रीय कृषि विभाग का क्षेत्र निश्चित हो गया। सन् २८ में सरकार ने कृषि की उन्नति की जाँच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जिसकी सिफ़ारिश के अनुसार अगले वर्ष 'इंपीरियल काउन्सिल आफ़ एग्रिकल्चर रिसर्च' नामक संस्था वनायी गई। इस काउन्सिल के दो विभाग हैं–(१) प्रबंधकारिणी, (२) एडवाइज़री बोर्ड। प्रबंध कारिणी में २० सदस्य है। वे इस प्रकार हैं—वायसराय की प्रबंध कारिणी समिति के कृषि विभाग का मेम्बर जो इसका सभापति है, सरकार द्वारा नियुक्त किया गया प्रिन्सिपल एडमिनिस्ट्रेटिव आफ़िसर जो उप-सभापति है, ९ प्रत्येक बड़े बड़े प्रान्तों के कृषि विभाग के मंत्री, २ भारतीय व्यवस्थापिका (लेजिस्लेटिव काउन्सिल) के चुने हुए प्रतिनिधि, १ काउन्सिल आफ़ स्टेट का प्रतिनिधि, २ एडवाइज़री बोर्ड के प्रतिनिधि, १ इंडियन चेम्वर आफ़ कामर्स का और १ एसोशियेटेड चेम्वर आफ़ कामर्स का प्रतिनिधि, निज़ाम सरकार के रेवेन्यू मेम्बर तथा १ गवर्नर जनरल द्वारा नामज़द

किया हुआ सदस्य। प्रबंध कारिणी का कार्य इंपीरियल काउन्सिल के आर्थिक विषयों तथा अन्य कार्यों का प्रबंध करना है।

एडवाइज़री बोर्ड में ३७ सदस्य[1] हैं। इस बोर्ड का काम कृषि की उन्नति के संबंध में परामर्श देना है।

इंपीरियल काउंसिल के कार्य—यह लिखा जा चुका है कि इंपीरियल काउन्सिल का ध्येय कृषि की वैज्ञानिक रीति से उत्तरोत्तर उन्नति करना है। काउन्सिल के दोनों विभागों की बनावट से ज्ञात होता है कि सरकार ने कृषि विभाग के और कृषि विज्ञान के विद्वानों को इनमें लिया है। काउन्सिल स्वयं कोई रिसर्च इंस्टीट्यूट नहीं है। यह देश में स्थित रिसर्च

---

[1] एडवाइज़री बोर्ड के सदस्य इस प्रकार हैं—प्रबन्ध कारिणी के वायस चेयरमेन; १ कृषि विशेषज्ञ, १ पशु चिकित्सा विशेषज्ञ, इम्पीरियल इंस्टीट्यूट आफ़ एग्रिकल्चरल रिसर्च के डायरेक्टर, इंपीरियल इंस्टीट्यूट आफ़ वेटिरनरी रिसर्च मुक्टेस्वर के डायरेक्टर, इंडियन इंस्टिट्यूट आफ़ साइंस के डायरेक्टर, ९ प्रत्येक बड़े प्रांत के कृषि विभाग के डायरेक्टर्स, ५ मद्रास, सी० पी०, पंजाब, बर्मा और भारतीय वेटिरनरी सर्विस के डायरेक्टर्स, वेटिरनरी कालेज, बम्बई के प्रिंसपल, ३ बंगाल, यू० पी० और भारतीय सिविल वेटिरनरी विभाग के डायरेक्टर्स, ३ इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड द्वारा नामजद यूनिवर्सिटी के प्रतिनिधि, ३ आसाम के वेटिरनरी सर्विस के सुपरिन्टेन्डेन्ट, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के कृषि विभाग के अध्यक्ष, देहरादून फ़ारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट का प्रतिनिधि, को-आपरेटिव प्रतिनिधि, इंडियन रिसर्च फ़ंड एसोसियेशन का मंत्री, इंडियन टी एसोसियेशन का प्रधान वैज्ञानिक, इंडियन सेंट्रल काटन कमेटी का उपसभापति, २ निज़ाम सरकार के कृषि विभाग का तथा पशु विभाग के डायरेक्टर्स तथा काउन्सिल का मंत्री।

इंस्टीट्यूट तथा कृषि विज्ञान के कालेजों को धन से तथा परामर्श से सहायता पहुँचाती है। इस काउन्सिल का कृषि विज्ञान संबंधी हर एक संस्था से एक सा ही व्यवहार है; चाहे वह संस्था सरकारी या ग़ैर सरकारी या देशी रियासतों की ही क्यों न हो। प्रांत की तथा देशी रियासतों की संस्थाएँ इस काउन्सिल के पास प्रान्तीय सरकारों या रियासतों के द्वारा अपनी योजना (स्कीम) भेजती हैं। एडवाइज़री बोर्ड उन पर विचार कर काउन्सिल की प्रबंधकारिणी के पास अपनी सिफ़ारिश भेजता है। यदि योजना उचित तथा लाभदायक समझी गई तो सरकारी कोष से संस्था को आर्थिक सहायता मिलती है।

कृषि संबंधी अनेक विषय हैं। अतएव उन पर विचार करने तथा कृषि की उन्नति एवं संस्थाओं की जाँच करने के लिए काउन्सिल ने कमेटियाँ बना रखी हैं । आजकल ऐसी ८ कमेटियाँ हैं जिनमें शक्कर कमेटी (Sugar Committee), फ़र्टिलाइज़र कमेटी (Fertilisers Committee), लोकस्ट कमेटी (Locust Committee), ऑइल क्रशिंग (Oil Crushing) इंडस्ट्रियल कमेटी (Industrial Committee) तथा केटल ब्रीडिंग कमेटी (Cattle breeding Committee) मुख्य हैं। इनके अलावा समय समय पर अन्य सब-कमेटियाँ भी आवश्यकतानुसार बना ली जाती हैं।

भारतीय व्यवस्थापिका सभा काउन्सिल के ख़र्चे के अतिरिक्त २५ लाख रुपया सलाना तथा वैज्ञानिक खोज के लिए ५ लाख रुपया सलाना और देती है। काउन्सिल देश की कृषि संस्थाओं में ऐक्य बढ़ाकर कृषि की उन्नति का प्रयत्न करती है। इसके कार्यों को देखकर आशा की जाती है कि यह कुछ ही वर्षो में कृषि तथा ग़रीब किसानों की उन्नति में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेगी।

प्रान्तीय कृषि विभाग—सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रान्तीय कृषि विभाग मंत्री के आधीन है। इसका प्रधान अफ़सर डायरेक्टर आफ़

एग्रिकल्चर होता है जिसके नीचे डिप्टी डायरेक्टर, असिस्टेंट डायरेक्टर, इंस्पेक्टर, इंजीनियर आदि होते हैं। प्रान्तीय कृषि विभागों ने स्थान स्थान पर फ़ार्म खोल रखे है। प्रत्येक प्रान्त में कृषि विभाग की ओर से कृषि संबंधी शिक्षा का भी प्रबंध कालेज, स्कूल आदि खोलकर किया गया है। खेती की उन्नति के लिये अथवा उस पर आपत्ति आजाने पर प्रान्तीय सरकार १) सैकड़ा माहवारी सूद पर किसानों को रुपया भी देती है जिसे तक़ावी कहते हैं। कृषि की उन्नति के लिये प्रायः प्रत्येक विश्वविद्यालय ने यत्र तत्र कृषि के कालेज खोल रखे है। इन सब व्यवस्थाओं का देश पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। अब पढ़े लिखे व्यक्ति भी कृषि कार्य करने लगे हैं जिससे देश का भविष्य उज्वल प्रतीत होता है।

शिक्षा

हमारे देश में शिक्षा प्राचीन काल से चली आ रही है। हिन्दू काल में तक्षशिला, नालंद आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे। उनमें भाँति भाँति की कलाएँ, भाषा, साहित्य और धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। मुसलमानी काल में भी कई मकतब तथा पाठशालाएँ थीं जिनमें विशेष रूप से धार्मिक और नीति के ग्रन्थों का पठन-पाठन होता था। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में राज्य की वृद्धि होने से शिक्षा पद्धति में भी उलटफेर हुआ।

हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक विचार तथा क़ानूनों को समझने की एवं न्यायालयों के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता के कारण पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली का भारत में आरंभ हुआ। सन् १७८२ में कल-कत्ता और मद्रास में तथा सन् १७९१ में बनारस में कालेज खोले गये। इनका उद्देश्य भारत के प्राचीन साहित्य के साथ मुसलमानी साहित्य की भी शिक्षा देना था। अंग्रेजी राज्य में शिक्षा-प्रचार का यही पहला

प्रयत्न था। इसी समय कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओं का ध्यान पाश्चात्य ढंग की शिक्षा के प्रचार की ओर आकृष्ट हुआ। सन् १८१३ ईस्वी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजा राम मोहन राय के विशेष आग्रह से १ लाख रुपया वार्षिक शिक्षा के लिये व्यय करना स्वीकार किया। कुछ ही समय में जनता का उत्साह बढ़ने लगा। देश में उत्साही सज्जनों ने अनेकों कालेज स्कूल आदि स्थापित किये। किंतु इस समय तक सरकार ने शिक्षा की कोई नीति स्थिर नहीं की थी।

सन् १८३३ के चार्टर एक्ट के पश्चात् सरकार ने दस लाख रुपया वार्षिक शिक्षा पर व्यय करना स्वीकार किया। लार्ड बेंटिक के समय में सरकार ने कालेजों और हाई स्कूलों में पश्चिमी ढंग की शिक्षा देने की नीति निश्चित की। इस नीति के अनुसार शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी हो गया। यद्यपि सरकार की नीति भारतीय शिक्षा प्रणाली को मिटाने या हतोत्साह करने की नहीं थी किंतु फिर भी अंग्रेज़ी माध्यम हो जाने से भारतीय विद्यालयों तथा मकतबों को विशेष धक्का लगा। इसके अतिरिक्त नवीन शिक्षा प्रणाली केवल थोड़े से ही व्यक्तियों के लिए लाभदायक हो सकी।

सन् १८३५ में छापेखानों को स्वतंत्रता (Freedom of Press) मिल गई। दो वर्ष के बाद अदालतों में फ़ारसी के स्थान पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग आरंभ हो गया। सन् १८४४ ईस्वी से सरकारी नौकरियों में अँग्रेज़ी पढ़े व्यक्तियों को पहिले स्थान मिलने लगा। इन कारणों से पाश्चात्य ढँग की शिक्षा की वेग से उन्नति होने लगी।

सन् १८५३ के चार्टर एक्ट के पश्चात् कंपनी के डायरेक्टरों ने भारतीय शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना शुरू किया। देश में रेल, तार, समाचार पत्र आदि का खूब प्रचार बढ़ रहा था। ईसाई धर्म प्रचारकों, तथा जनता के उत्साही सज्जनों के प्रयत्न से अनेकों हाई स्कूल और कालेज खुल गये थे। व्यवसाय संबंधी कालेजों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। लार्ड डलहौज़ी (१८४८-१८५६) के समय में प्रारंभिक (Elementary)

शिक्षा का आयोजन आरंभ हुआ। तहसीलों में सरकारी स्कूल खोले जाने लगे। इसी समय प्रान्तों में शिक्षा विभाग स्थापित किये गये। नौकरियों के लिए चुनाव बहुत कुछ परीक्षाओं के द्वारा होने लगा। अतएव इसी समय से नौकरी, शिक्षा तथा परीक्षा का पारस्परिक घनिष्ट संबंध स्थापित होता गया।

सन् १८५७ में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। इनका प्रधान कार्य कालेज तथा हाई स्कूल के विद्यार्थियों की परीक्षा लेना था। सन् १८८२ ईस्वी में 'शिक्षा कमीशन' बैठा, जिसने ग़ैरसरकारी स्कूल तथा कालेजों को आर्थिक सहायता देने की सिफ़ारिश की।

उपर्युक्त व्यवस्था में एक बड़ा दोष यह था कि शिक्षालयों पर सरकारी नियंत्रण कमज़ोर पड़ गया। विश्वविद्यालय केवल परीक्षा ही लेते थे। अतएव वे परीक्षा संबंधी तथा पढ़ाई के विषय मनमाने निर्धारित करते थे। विद्यार्थी केवल सार्टिफ़िकेट प्राप्त करने के लिए ही अधिक उत्सुक रहते थे क्योंकि उससे उन्हें नौकरी आसानी से मिल सकती थी।

सन् १९१० में केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रिक शिक्षा विभाग खोल दिया जिसका प्रधान वायसराय की कार्यकारिणी का सदस्य था। सन् १९२३ में शिक्षा विभाग के साथ स्वास्थ्य और भूमि भी शामिल कर दिये गये।

भारतीय शिक्षा को हम ५ भागों में बाँट सकते हैं। (१) प्रारंभिक शिक्षा, (२) माध्यमिक, (३) हाई स्कूल तथा इंटरमीडिएट बोर्ड, (४) विश्वविद्यालय, (५) अन्य प्रकार के व्यवसाय एवं कला संबंधी शिक्षा।

प्रारंरिभक शिक्षा का प्रबंध म्यूनिसिपेल्टिी, और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड करते हैं। इसकी पढ़ाई चौथी कक्षा तक होती है। सन् १९१८ से प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं ने प्रारंभिक शिक्षा को धीरे धीरे अनिवार्य करने का प्रस्ताव पास करना आरंभ कर दिया। आजकल प्रायः प्रत्येक प्रान्त ने अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का सिद्धान्त तो स्वीकार कर लिया है किन्तु उसे

कार्यरूप में लाने का यथेष्ट आयोजन अभी तक नहीं हुआ है। सन् १९३२ में सरकार द्वारा स्वीकृत प्रारंभिक स्कूलों की संख्या २,०४,३८४ थी। जिनमें ९४,५४,३६० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। इन स्कूलों में हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी आदि देशीय भाषाओं के अतिरिक्त गणित, इतिहास, भूगोल आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। सरकार तथा जनता की नीति प्रारंभिक शिक्षा की उत्तरोत्तर उन्नति करना है। अतएव प्रतिदिन स्कूलों तथा विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती ही जाती है।

माध्यमिक शिक्षा—प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी मिडिल स्कूल में प्रवेश करते हैं, ये दो तरह के हैं—वर्नाक्यूलर और एंग्लो वर्नाक्यूलर। एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों में देशी भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी का भी पठन-पाठन होता है। वर्नाक्यूलर स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती। किंतु आजकल कहीं कहीं वर्नाक्यूलर स्कूलों में भी अंग्रेज़ी पढ़ाने का कुछ प्रबंध कर दिया गया है।

हाई स्कूल और इंटरमीडिएट—मिडिल स्कूलों के बाद हाई स्कूल में शिक्षा आरंभ होती है। युक्तप्रांत में एफ़० ए० की शिक्षा का भी प्रबंध हाई स्कूल के साथ ही किया गया है। हाई स्कूल और इंटरमीडिएट बोर्ड इसका प्रबन्ध करता है। मध्यप्रांत में हाईस्कूल बोर्ड केवल मैट्रिकुलेशन तक की शिक्षा का ही प्रबंध करता है। इंटरमीडिएट अर्थात् एफ़० ए० की शिक्षा का प्रबंध नागपुर विश्वविद्यालय के ही अंतर्गत है।

विश्वविद्यालय—उच्चशिक्षा का प्रबंध विश्वविद्यालय करते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८५७ में हो चुकी थी। इनका कार्य कालेजों के विद्यार्थियों की परीक्षाएँ लेना था। तब १८८२ ईस्वी में पंजाब और १८८७ में प्रयाग में विश्वविद्यालय खुले। लार्ड कर्ज़न के समय में सन् १९०२ में एक यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त हुआ जिसके फलस्वरूप सन् १९०४ में यूनिवर्सिटी एक्ट पास हुआ। इस एक्ट का ध्येय कालेजों पर विश्व-

विद्यालयों की तथा विश्वविद्यालयों पर सरकार की कड़ी निगरानी रखते हुए सुव्यवस्थित प्रबंध करना था। इस एक्ट से यूनिवर्सिटी को शिक्षा देने की भी आज्ञा प्राप्त हो गई। धीरे धीरे विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ती गई। सन् १९१५ में काशी-विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १९२३ में सी० पी० के लिए नागपुर विश्वविद्यालय खोला गया। सन् १९२९ तक देश में १८ विश्वविद्यालय स्थापित हो गये। नागपुर यूनिवर्सिटी के पहिले सी०पी० के कालेजों का संबंध प्रयाग विश्वविद्यालय से ही था।

देश में डाक्टरी, क़ानून (Law), इंजीनियरिंग, एग्रीकल्चर, कामर्स, शिल्प, बढ़ई गीरी, चित्रकारी आदि व्यवसाय संबंधी अनेकों कालेज तथा स्कूल समय समय पर खुले हैं। इनमें डाक्टरी और क़ानून के कालेज विश्वविद्यालयों के ही नियंत्रण में हैं। कुछ अन्य प्रकार के कालेज भी विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत हैं।

पहले शिक्षा का प्रबंध भारत-सरकार ही करती थी किंतु अब प्रायः प्रान्तीय सरकारें ही मंत्रियों द्वारा करती हैं क्योंकि यह हस्तांतरित विषय है। मंत्री की सहायता एक सेक्रेटरी करता है। फिर भी शिक्षा विभाग का संचालन एक अफ़सर करता है जिसे डायरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन कहते हैं। डायरेक्टर की सहायता के लिये डिप्टी-डायरेक्टर तथा असिस्टेंट डायरेक्टर, इंस्पेक्टर, डिप्टी इन्सपेक्टर आदि होते हैं।

डायरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन का प्रधान कर्तव्य शिक्षा संबंधी नीति निर्धारित करना, स्कूलों की आर्थिक सहायता आदि के प्रश्नों का नियंत्रण करना तथा समस्त शिक्षा-विभाग का निरीक्षण करना है। इस कार्य में इसे असिस्टेंट तथा डिप्टी डायरेक्टर सहायता देते हैं। जिन विश्वविद्यालयों को प्रान्तीय सरकारों से सहायता मिलती है उनकी आर्थिक परिस्थिति में डायरेक्टर का भी हाथ रहता है। प्रान्तीय सरकार के शिक्षा विभाग का डिप्टी सक्रेटरी प्रायः डायरेक्टर आफ़ इन्स्ट्रक्शन ही होता है।

शिक्षा प्रबंध के लिए प्रान्त कई विभागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक

विभाग के अंतर्गत स्कूलों का निरीक्षण इंस्पेक्टर करते हैं। ये अपनी रिपोर्ट तैयार कर डायरेक्टर के पास भेजा करते हैं। इनका कार्य डिप्टी इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स के कार्यों का भी निरीक्षण करना है। ज़िले के स्कूलों की देख रेख डिप्टी इंस्पेक्टर करते हैं। ये इंस्पेक्टर को स्कूलों के संबंध की रिपोर्ट भेजा करते हैं। म्यूनिसिपेलिटी तथा डिस्ट्रिक्टबोर्ड के स्कूलों का भी निरीक्षण ये करते हैं।

शिक्षा विभाग के उपरोक्त कर्मचारियों के अतिरिक्त एक और कर्मचारी होता है जिसे सेक्रेटरी हाई स्कूल बोर्ड या सेक्रेटरी हाई स्कूल एन्ड इंटरमीडिएट बोर्ड कहते हैं। इसका प्रधान कार्य परीक्षा एवं पाठ्य विषयों तथा पुस्तकों को निर्धारित करना है। इनकी सहायता के लिए अनेक कर्मचारी होते हैं। पाठ्य पुस्तकों तथा विषयों के निर्धारित करने के लिए छोटी बड़ी अनेकों कमेटियाँ हैं।

विश्वविद्यालय का प्रमुख पदाधिकारी वाइस चांसलर कहलाता है जो प्रबंध कारिणी (Executive Council or Senate) के क़ानून प्रस्ताव आदि के अनुसार संस्था का नियंत्रण करता है। वाइस चांसलर वैतनिक या अवैतनिक होते हैं। इन्हें कहीं तो सरकार नियुक्त करती है और कहीं इनका चुनाव होता है। वाइस चांसलर के ऊपर चांसलर होता है जो प्रायः प्रान्त का गवर्नर ही रहता है। किसी किसी विश्वविद्यालय के—जैसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी—चांसलर राजा महाराजा या धनीमानी व्यक्ति भी होते हैं। विश्वविद्यालय का प्रबंध करने के लिए एक समिति होती है जिसे प्रबंधकारिणी समिति (Executive Council or Senate) कहते हैं। इसका सभापति वाइस चांसलर ही होता है। परीक्षा, दफ़्तर के कार्य तथा अन्य प्रकार की देख भाल 'रजिस्ट्रार' करता है। उच्चशिक्षा कई अङ्गों में विभक्त की गई है—जैसे आर्ट्स, विज्ञान, क़ानून, मेडिसिन इत्यादि। प्रत्येक अङ्ग का एक एक अधिपति होता है—जो उस के

अन्तर्गत विषयों के पठन-पाठन का नियंत्रण करता है। इसको "डीन" कहने हैं। प्रत्येक अङ्ग के उपाङ्ग होते है। हर एक उपाङ्ग का सञ्चालन और नियंत्रण प्रिंसपल "प्रोफेसर" अथवा "रीडर" करते हैं। शिक्षा और परीक्षा के विषय तथा पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिए एकेडेमिक काउन्सिल तथा हर विषय की अनेकों कमेटियाँ होती हैं।

स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी जनता तथा सरकार प्रयत्न कर रही है। स्त्रियों के लिए स्कूल, कालेज आदि प्रथक् रूप से खोले गये हैं। स्त्रियों के शिक्षालय भी डायरेक्टर के ही नियंत्रण में है। इनके निरीक्षण के लिए भी चीफ़ इंस्पेक्ट्रेस आफ़ स्कूल्स, इंस्पेक्ट्रेस आफ़ स्कूल्स तथा डिप्टी इंस्पेक्ट्रेस आफ़ स्कूल्स आदि हैं।

यद्यपि शिक्षा विभाग प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में है किन्तु केन्द्रीय सरकार भी अपने शिक्षा विभागों का संचालन करती है। केन्द्रीय विभाग के नियंत्रण में पूसा, शिवपुर, देहरादून आदि के कला-कौशल, कृषि, सेना संबंधी कालेज, प्रयोगशालाएँ आदि हैं। केन्द्रीय सरकार अलीगढ़ तथा बनारस विश्वविद्यालय का भी निरीक्षण तथा आर्थिक सहायता करती है। केन्द्रीय शिक्षा विभाग वायसराय की प्रबंधकारिणी के एक सदस्य के अन्तर्गत है इनके सिवा केन्द्रीय सरकार उन प्रान्तों की शिक्षा का भी प्रबंध करती है जिनका स्वयं शासन प्रबंध करती है—जैसे देहली, अजमेर।

पब्लिक वर्क्स तथा सिंचाई विभाग

पब्लिक वर्क्स विभाग का आरंभ ईस्ट इंडिया कंपनी के राजत्व काल से ही हुआ। सेना के लिए रहने के स्थान—बैरेक 'मकान' तथा सड़कें आदि—बनवाने के कार्य के लिए १८ वीं शताब्दी के आरंभ में प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में एक मिलिटरी बोर्ड स्थापित किया गया। इमारत, सड़क, नहर आदि जनोपयोगी कार्यों के लिए उस समय कोई विशेष सरकारी

विभाग न था। मिलिटरी बोर्ड का कार्य क्षेत्र केवल सेना संबंधी ही था। पंजाब में नहरों आदि का कार्य पहले से ही हो रहा था अतः पंजाब विजय के उपरांत सन् १८४९ में पंजाब प्रान्त में पब्लिक वर्क्स विभाग व्यवस्थित रूप से स्थापित किया गया जिसके प्रधान इंजीनियर लेफ़्टनेंट कर्नल नेपियर नियुक्त हुए। इस समय सेना संबंधी इमारत, सड़कें आदि के सिवा अन्य सड़कें, सरकारी इमारत तथा सिंचाई के साधन आदि की आवश्यकता की ओर भी कंपनी का ध्यान आकृष्ट हो रहा था। देश में रेल, तार आदि का भी आयोजन करने का प्रयत्न किया जा रहा था। अतः सन् १८५० में सरकार ने पब्लिक वर्क्स के लिए एक जाँच कमीशन नियुक्त किया।

इस कमीशन ने मिलिटरी बोर्ड के स्थान पर प्रान्तीय सरकार के नियंत्रण में ही सिविल तथा मिलिटरी दोनों प्रकार के कार्यों के लिए एक ही पब्लिक वर्क्स विभाग खोलने का प्रस्ताव किया। इस विभाग के लिए एक चीफ़ इंजीनियर तथा उसकी सहायता के लिए सुपरिन्टेंडिंग, एक्ज़ीक्यूटिव तथा असिस्टेंट इंजीनियर आदि नियुक्त करने के लिए जाँच कमीशन ने सिफ़ारिश की। इस रिपोर्ट के अनुसार बंगाल में पब्लिक वर्क्स विभाग खोला गया। धीरे धीरे लार्ड डलहौज़ी के शासन काल के अंत तक प्रत्येक प्रान्त में पब्लिक वर्क्स विभाग स्थापित हो गये। इन विभागों का कार्य इमारत, सड़क आदि बनवाना और संरक्षण करना था। केवल पंजाब और यू० पी० प्रान्तों में इस विभाग के अंतर्गत सिंचाई कार्य भी था। इस समय रेल बनाने के लिए ज़मीन की नाप आदि आरंभ हो चुकी थी तथा कुछ रेल लाइन बन भी चुकी थी।

सन् १८५४ ईस्वी में भारतीय सरकार ने पब्लिक वर्क्स विभाग के सेक्रेटरी का पद स्थापन कर केन्द्रीय पब्लिक वर्क्स विभाग की रचना की। रेल विभाग भी इस विभाग के अंतर्गत कर दिया गया। इसका कार्य प्रान्तीय पब्लिक वर्क्स विभाग का निरीक्षण, रेल संबंधी कार्यों की देख

रेख तथा भारत सरकार की ओर से देश में आवागमन, सिंचाई आदि की सुविधाएँ करना था।

थोड़े ही समय में सिंचाई तथा रेल्वे कार्य की वृद्धि होने से केन्द्रीय पब्लिक वर्क्स सेक्रेटेरियट का कार्य बहुत बढ़ गया, अतएव सेक्रेटेरियट के कर्मचारी भी बढ़ाने पड़े। सन् १८६६ में इस विभाग के ३ हिस्से—(१) सेना संबंधी कार्य, (२) सिंचाई तथा सिविल वर्क्स, और (३) रेलवे—कर प्रत्येक एक डिप्टी सेक्रेटरी के नियंत्रण में कर दिया गया। धीरे धीरे इनका पृथक्करण पूर्ण होता गया। सन् १८८२ में सेना संबंधी कार्य पूर्ण रूप से पृथक् हो गया। इसी प्रकार १८७० मे रेल्वे कार्य भी अलग किया जाने लगा। सन् १८९६ में सिविल पब्लिक वर्क्स सेक्रेटेरियट की दो शाखायें—रेल और सिविल वर्क्स—बिलकुल अलग कर दी गई। १९०५ ईस्वी में रेलवे बोर्ड बनाकर उसको उद्योग और व्यापार विभाग के अंतर्गत कर दिया गया।

आधुनिक समय में पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट सिविल कार्य तथा सिंचाई संबंधी ही कार्य करता है। सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार यह विभाग मंत्रियों के जिम्मे कर दिया गया है। कार्य अधिक होने के कारण पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट के २ हिस्से—सिचाई संबंधी, और सड़क, इमारत संबंधी—कर दिये गये हैं। प्रायः प्रत्येक प्रान्त में पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट का नियंत्रण दो प्रधान इंजीनियर जो प्रान्तीय सरकार के अपनी शाखा के सेक्रेटरी भी हैं—करते हैं। एक सड़क, इमारत आदि के लिये होता है और दूसरा सिंचाई कार्य के लिये।

सड़क, इमारत-संबंधी कार्य विभाग—इस विभाग का कर्तव्य इसके नाम से ही स्पष्ट है। कुछ वर्षों से डिस्ट्रिक्ट काउंसिल के ज़िम्मे भी कुछ इमारतें तथा सड़कें कर दी गई है। शहरों की सड़कों का प्रबंध म्यूनिसिपेल्टी ही करती है। किन्तु फिर भी इस विभाग का कार्य अधिक है। यह कहा जा चुका है कि यह विभाग एक प्रधान इंजीनियर

के आधीन है। प्रधान इंजीनियर के नीचे कई सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर होते हैं। इनकी संख्या सब प्रांतों में एक सी नहीं है। मध्य प्रदेश में सड़क इमारत विभाग के तीन सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर हैं। प्रत्येक अपने डिवीज़न के कार्य का निरीक्षण करता है। इनके आधीन प्रत्येक जिले में एक्जीक्यूटिव इंजीनियर होता है जिसका कार्य जिले की सरकारी इमारतों सड़कों आदि की मरम्मत तथा निर्माण के अतिरिक्त म्यूनिसिपेलिटी और डिस्ट्रिक्टबोर्ड के इमारत-सड़क विभाग का नियंत्रण करना है। यह म्यूनिसिपल इंजीनियर, वाटरवर्क्स इंजीनियर आदि की नियुक्ति में स्वीकृति देता है। इसका नियंत्रण इसी प्रकार है जिस प्रकार सिविल सर्जन का सफ़ाई और स्वास्थ्य संबंधी मामलों पर है। एक्जीक्यूटिव इंजीनियर के आधीन अनेकों ओवरसियर सब ओवरसियर आदि हैं।

सिंचाई विभाग—सिंचाई विभाग के प्रान्तीय सेक्रेटरी के आधीन भी डिवीजन सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर हैं। मध्यप्रांत में इनकी भी संख्या ३ है। इनके नीचे भी एक्जीक्यूटिव इंजीनियर असिस्टेंट इंजीनियर, ओवरसियर सब ओवरसियर आदि अनेकों कर्मचारी हैं।

सिंचाई विभाग का कार्य नहरें खुदवाना तथा उनकी रक्षा का प्रबंध करना है। सिंचाई की आवश्यकता तथा उपयोगिता प्राचीन समय से शासक मानते आये हैं। मुसलमान शासकों ने अनेकों कुएँ, तालाब, नहरें आदि सिंचाई के निमित्त बनवा कर दुर्भिक्ष रोकने के उपाय किये। अंग्रेजी काल में इस ओर विशेष उन्नति हुई है। देश में अनेकों बड़ी बड़ी नहरें और जलाशय बनाने में सरकार ने सालाना धन देना आरंभ किया। सन् १८९३ के पहिले वह रक़म केवल ५५ लाख रुपये थी। सन् ९३ में ७५ लाख, १८९९ में ८५ लाख और उसके बाद बढ़ा कर १२५ लाख वार्षिक देना आरंभ कर दिया है। सन् १९१८ तक सिंचाई के लिये नहरें, जलाशय आदि बनवाने में लगभग १ अरब रुपया व्यय हो गया जिससे २ करोड़ १० लाख एकड़ जमीन प्रतिवर्ष सींची जाती थी। सन् १९ में सिंचाई

के लिये नवीन आयोजन आरंभ हुआ जिसमें लगभग ६० करोड़ रुपया व्यय हो चुका है। इससे १३० लाख एकड़ जमीन के लिये पानी का प्रबंध हो गया है। इस प्रकार गंगा, जमुना, सिंधु कावेरी, महानदी, नर्मदा आदि नदियों से नहरें काट कर कृषि, व्यापार आदि की उन्नति का प्रयत्न किया गया है। इनमें सिंधु प्रांत का सक्कर बारेज तथा नहर, पंजाब में सतलज नदी की नहरें, मद्रास प्रांत में कावेरी की नहरें विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त दक्षिण में भारगर स्थान का लायड (Lloyd Dam) जलाशय जो १९० फ़ीट ऊँचा तथा ४,३०० फ़ीट लंबा है तथा भंडरदारा (Bhandardara) जलाशय जिसे Lake Arther Hill Dam कहते हैं विशेष उल्लेखनीय हैं। देश की उन्नति से सरकारी खज़ाने की भी वृद्धि होती है। सिंचाई विभाग में यद्यपि सरकार ने इतना धन व्यय किया है तथापि इससे सरकार को कोई हानि नहीं है। उपज की उन्नति से भूमि कर की बढ़ती हुई, तथा नहरों से पानी लेने के कर (टेक्स) से भी सरकार की बहुत आमदनी बढ़ी है।

स्वास्थ्य विभाग (Sanitation)

स्वास्थ्य तथा उन्नति के लिए स्वच्छ रहना अनिवार्य है। गाँव नगर आदि में स्वच्छता पर्याप्त न रहने से अनेकों प्रकार के रोग फैल जाते हैं। भारत सरकार ने इस प्रश्न की ओर भी ध्यान दिया। सरकार की ओर से जनता के स्वास्थ्य तथा नगर ग्राम आदि की स्वच्छता का नियंत्रण करने के लिए लगभग ६० वर्ष पूर्व एक स्वास्थ्य विभाग खुला। इस विभाग ने प्रान्तीय सरकारों को स्वच्छता की उपयोगिता का प्रचार करने का आदेश दिया। प्रान्तीय सरकारों ने भी स्वच्छता तथा स्वास्थ्य संबंधी साहित्य एवं सम्मेलन आदि का आयोजन कर जनता का ध्यान आकर्षित करना आरंभ किया।

सन् १९०८ में केन्द्रीय सरकार ने ३० लाख रुपया प्रतिवर्ष प्रान्तीय सरकार को स्वच्छता विभाग के लिए देना आरंभ किया। दो वर्ष बाद होम डिपार्टमेंट (Home Department) का कार्य हलका करने के अभिप्राय से स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के विभाग को पृथक् कर "शिक्षा-स्वास्थ्य और भूमि विभाग" के अन्तर्गत कर दिया। कुछ ही समय के पश्चात् 'इंडियन रिसर्च फ़ंड एसोसिएशन' का जन्म हुआ। जिसका उद्देश्य संक्रामक बीमारियों के कारणों की खोज करना तथा शिक्षा देकर जनता में स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के सिद्धान्तों का प्रचार कर समाज तथा देश की उन्नति करना है। इस फ़ंड में भी केन्द्रीय सरकार ने ५ लाख रुपया प्रतिवर्ष देना शुरु किया। इन आयोजनों से यद्यपि कुछ अंश में अवश्य सफलता मिली किंतु वह पर्याप्त न जान पड़ी। अतएव सरकार ने स्वच्छता प्रचार के लिए और अधिक धन प्रान्तीय सरकारों तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि को दिया। सन् १९१४ ईस्वी तक ४,६१,४७,०००) प्रान्तीय सरकारों को दिया गया। जिसमें ५५,२३,०००) वार्षिक (Grant) था। इसके अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि स्थानीय संस्थाओं को भारत सरकार ८२ लाख ३३ हज़ार वार्षिक अलग देती थी।

देश में स्थान स्थान पर प्लेग का प्रकोप होने से लार्ड कर्ज़न ने एक प्लेग कमीशन नियुक्त किया था। उसकी सिफ़ारिश के आधार पर (रिसर्च इंस्टीट्यूट) अन्वेषण प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई तथा 'सेनीटरी कमिश्नर' का पद नियुक्त कर भारतीय सरकार के स्वच्छता विभाग का नवीन रूप से संगठन किया गया। प्रान्तीय सरकारों से स्वच्छता संबंधी विषयों पर विचार कर महामारियों के दूर करने के उपायों पर भारत सरकार को परामर्श देना सेनीटरी इंस्पेक्टर का कर्तव्य था। किंतु अन्वेषण और स्वच्छता के कार्य पृथक् होने से इस व्यवस्था में पर्याप्त सफलता प्राप्त न हो सकी। अतएव सन् १९१२ में इस विभाग के संगठन में परिवर्तन कर इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया गया।

सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार स्वास्थ्य तथा स्वच्छता विभाग प्रान्तीय सरकार के मंत्रियों के नियंत्रण में आ गया है। भारत सरकार के अंतर्गत अब केवल अन्वेषण आदि के कार्य हैं। आजकल वायसराय की कार्यकारिणी समिति का एक सदस्य 'स्वास्थ्य, शिक्षा और भूमि' विभाग का प्रधान है। इसी के नीचे स्वास्थ्य विभाग का प्रधान कर्मचारी पब्लिक हेल्थ कमिश्नर है।

पब्लिक हेल्थ कमिश्नर के कर्तव्य—इसका कर्तव्य भारतीय सरकार को स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी विषयों पर परामर्श देना है। यह प्रान्तीय स्वास्थ्य विभागों के कार्यों का भी निरीक्षण करता है। इसका प्रयत्न प्रान्तों में एक्य स्थापित कर देश के स्वास्थ्य की उन्नति करना है। यह टीके (माता, प्लेग, आदि) की नीति निर्धारित करना एवं संक्रामक बीमारियों से बचाने के उपायों का भी निरीक्षण करता है। इसके पास अनेक ऐसे साधन हैं जिससे यह पता लगा सके कि मृत्यु किस बीमारी के कारण अधिक हुई है, इनके आधार पर यह प्रतिवर्ष अपनी रिपोर्ट निकालता है जिससे स्वास्थ्य से संबंध रखती हुई अन्य संस्थाएँ जैसे (Child Welfare Maternity) बच्चों के स्वास्थ्य और जच्चों की संस्थाएँ, लाभ उठा सकें। केन्द्रीय सरकार की इस व्यवस्था से कुछ लाभ अवश्य हुआ है।

प्रान्तीय सेनीटरी विभाग—स्वच्छता का प्रवन्ध प्रान्तीय सरकारें बहुत समय से कर रही हैं। यह विभाग पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेंट के ही अंतर्गत है। हस्तांतरित विषय होने के कारण यह मंत्रियों के आधीन है। प्रान्तीय सरकारों ने म्यूनिसिपेल्टिी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, विलेज पंचायत आदि को स्वच्छता का कार्य सौंप दिया है। बड़े प्रान्तों में पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेंट का प्रधान डायरेक्टर आफ़ पब्लिक हेल्थ कहलाता है। इसके अंतर्गत कहीं कम और कहीं अधिक संख्या में असिस्टेंट डायरेक्टर आदि अन्य कर्मचारी होते हैं। यद्यपि सी० पी० भी बड़े प्रान्तों में गिना जाता

है किन्तु वहाँ डायरेक्टर आफ़ पब्लिक हेल्थ का पद अन्य प्रान्तों की तरह पृथक् नहीं है। सी०पी० में एक ही व्यक्ति अस्पतालों तथा पब्लिक हेल्थ का उत्तरदायी है जिसे इंस्पेक्टर जनरल सिविल हास्पिटल एन्ड डायरेक्टर आव् पब्लिक हेल्थ कहते हैं।

डायरेक्टर आव् पब्लिक हेल्थ का कर्तव्य प्रान्त के स्वास्थ्य संबंधी सभी प्रश्नों का——जैसे, सफ़ाई, मृत्यु तथा जन्म, अस्पताल, स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा आदि——नियंत्रण करना है।

स्थानीय संस्थाएँ जैसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्यूनिसिपेलिटी, विलेज पंचायत आदि सफ़ाई तथा स्वास्थ्य का प्रबंध आरंभ से ही कर रही हैं। इन कार्यों के लिए इन्हें सरकार की ओर से आवश्यकतानुसार सहायता दी जाती है। प्रत्येक म्यूनिसिपेलिटी में शिक्षा प्राप्त हेल्थ आफ़िसर होता है जिसका कार्य नगर की सफ़ाई, पानी की स्वच्छता खाने के पदार्थों की शुद्धता, प्लेग, चेचक आदि के टीकों का प्रबंध करना, बच्चों, स्त्रियों तथा पुरुषों के लिए चिकित्सालय आदि खोलना, नाली आदि (Drainage) की देख रेख करना है। इसकी सहायता के लिए सेनीटरी इंस्पेक्टर, जमादार, हवलदार आदि अनेकों कर्मचारी होते हैं जो अपने वार्डों के जनस्वास्थ्य आदि का प्रबंध करते हैं। हेल्थ आफ़िसर के कार्यों का नियंत्रण ज़िले का सिविल सर्जन करता है। यह देहातों आदि में जाकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कार्य की भी देख रेख किया करता है। इस प्रकार प्रान्तीय सरकार स्थानीय संस्थाओं के योग से जनता के स्वास्थ्य का प्रबंध करती है।

आबकारी-विभाग

नशीली वस्तुओं के उपयोग का नियंत्रण करने तथा आमदनी के अभि-प्राय से सरकार उन पर टेक्स लगाती है जिसे आबकारी कर या Excise Duty कहते हैं। मुसलमानों के समय में भी आबकारी सरकारी आमदनी

का मुख्य अंग था। उस समय देश भर में शराब ताड़ी आदि के कारखाने तथा दूकानें थीं। आवागमन की सुविधाओं का अभाव तथा सुव्यवस्थित एवं संगठित राज्य संचालन न होने के कारण आबकारी विभाग नशीली वस्तुओं के नियंत्रण में सफल न हो सका। ब्रिटिश काल में सरकार की ओर से इनका सेवन नियंत्रित करने के अनेकों उपाय किये जा रहे हैं। आधुनिक काल में सरकार शराब, गाँजा, अफ़ीम, भंग, चरस, ताड़ी आदि मादक वस्तुओं के ठेके नीलाम द्वारा देती है। सरकार की ओर से प्रत्येक मादक वस्तु का भाव नियंत्रित कर दिया, गया है जिसमें परिवर्तन करना अपराध है। इसके अतिरिक्त सरकार के निरीक्षण में ही कुछ मादक पदार्थों के तैयार करने का प्रबंध किया गया है। इस तरह तैयार करने और बेचने में सरकारी नियंत्रण होने के कारण सरकार की आमदनी के अतिरिक्त मादक पदार्थों के नियंत्रण में भी पर्याप्त सफलता मिलती है।

आबकारी-विभाग का संचालन प्रान्तीय सरकारों के मंत्रियों के अधिकार में है। केवल विदेश से आने वाली मादक वस्तुओं तथा भारत से बाहर जाने वाली अफ़ीम के आयात-निर्यात-कर की आमदनी सरकार के केन्द्रीय कोष में जाती है। आबकारी-विभाग से और जो आमदनी होती है वह प्रान्तीय सरकार की ही है। प्रत्येक प्रान्त में टेक्स एक सा नहीं है और न आमदनी ही बराबर है।

आबकारी विभाग का प्रधान कर्मचारी एक्साइज़ कमिश्नर कहलाता है। इसके नीचे हर एक ज़िले में एक्साइज़ आफ़िसर होते हैं। एक्साइज़

---

[१] ऊपर लिखा जा चुका है कि १९३५ के सुधारों के अनुसार मादक पदार्थों से प्राप्त कर का एक अंश सूबों की सरकारों को भी मिला करेगा।

आफ़िसर की सहायता तथा नशीली वस्तुओं की दूकान, कारख़ाने आदि का निरीक्षण करने के लिए सर्किल एक्साइज़ इंस्पेक्टर, एक्साइज़ इंस्पेक्टर, सब-एक्साइज़ इंस्पेक्टर आदि अनेकों कर्मचारी हैं। चोरी से मादक वस्तुओं को ले जाना या छिपकर बेचना अपराध है। आबकारी विभाग के कर्मचारियों का कर्तव्य इस प्रकार के अपराधियों को पकड़ कर अदालत से सज़ा दिलवाना भी है।

दसवाँ अध्याय

रेलवे, डाक और तार

आजकल भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान में आने जाने के अनेक नवीन साधन हो गये हैं । उनसे स्थानों की दूरी बहुत कम हो गई है. महीनों का रास्ता कुछ ही घंटों में तय हो जाता है। इन साधनों के कारण देश के व्यापार एवं कला-कौशल आदि अधिक उन्नति करने लगे हैं। लग-भग सौ वर्ष पहले आने जाने के साधनों में घोड़ा, बैल, ऊँट और हाथी आदि जानवर तथा नौकाएँ आदि ही थीं। इतने बड़े विशाल देश में एक स्थान से दूसरे स्थान आना जाना बहुत ही कठिन था। रास्ते में चोर, डाकू, ठग आदि का सदैव भय रहता था जिससे प्राण एवं धन हानि के अतिरिक्त समय भी नष्ट होता था। भारत सरकार ने रेलें बनावा कर आवागमन के नवीन साधन उपस्थित कर कई प्रकार की सुविधाएँ कर दीं।

सन् १८४५ ईस्वी में भारत वर्ष में रेलवे लाइन बनाने के लिये जाँच पड़ताल आरंभ हुई। चार वर्ष बाद बम्बई और कलकत्ते में रेलवे लाइन बनाना आरंभ हुआ। भारत में सर्व प्रथम रेलवे अप्रेल मास सन् १८५३ में बम्बई से थाना तक (जिसकी दूरी २१ मील है) खोली गई। एक वर्ष बाद अगस्त १८५४ में कलकत्ते से हुगली तक, २४ मील,और रेलवे खुली। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त होने से ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में रेलवे बनाने की ओर विशेष ध्यान देना आरंभ किया।

सन् १८५३ में लार्ड डलहौज़ी ने रेलवे लाइन बनाने का नक़शा तैयार किया। इसमें कलकत्ते से यू० पी० तथा लाहौर तक, बम्बई से यू० पी० तथा मद्रास और मद्रास से मलाबार के किनारे तक रेलवे लाइन बनाने

का विचार हुआ। आधुनिक रेल की सड़कें इसी नक़शे के आधार पर तैयार हुई हैं।

भारतीय रेलवे के इतिहास को ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) सन् १८६९ के पूर्व, (२) १८६९ से १८८० तक, (३) १८८०-१८९३ और (४) सन् १८९३ के पश्चात्।

भारतीय रेलवे लाइन बनाने में भारत सरकार ने आरम्भ से ही योग दिया। इस संबंध में सरकार ने "गारंटी सिस्टम" की नीति आरम्भ की। सरकार ने रेलवे कम्पनियों को ख़र्चे की रक़म पर ५ प्रतिशत ब्याज देने की गारंटी दी और इस नीति के अनुसार सरकार ने इंग्लैंड की कम्पनियों को भारत में रेल खोलने का ठेका दिया। इसके अनुसार रेलवे कम्पनियों से ज़मीन का मूल्य नहीं लिया गया। कम्पनियों को यह गारंटी दी गई कि उन्हें लागत रक़म पर ५ प्रतिशत प्रतिवर्ष अवश्य ही लाभ होगा। लाभ में कमी होने पर सरकार ने उसे अपने कोष से पूरा करने का वचन दिया। इससे अधिक लाभ होने पर कम्पनी ने अधिक लाभ का आधा हिस्सा सरकार को देना स्वीकार किया। निश्चित समय (२५ या ५० वर्ष) के बाद कम्पनी की रेलें ख़रीद लेने का भी सरकार को अधिकार था। इसके अतिरिक्त कम्पनी को यह भी अधिकार था कि वह कोई भी रेलवे लाइन ६ महीने का नोटिस देकर इच्छानुसार सरकार को बेच सकती थी। इसके अतिरिक्त कम्पनी भारत सरकार के ही आदेशानुसार रेल-मार्ग तथा नियमादि बनाने के लिये बाध्य थी। उसे अपना हिसाब भी सरकार के पास जाँच पड़ताल के लिये भेजना अनिवार्य था। इस प्रकार कम्पनियों ने कुछ ही वर्षों में लगभग १८०० मील रेल-मार्ग बनाया।

सन् १८६८ ई० में कलकत्ता और साउथ ईस्ट रेलवे, हानि होने के कारण सरकार को ख़रीद लेनी पड़ी। इसी समय से सरकार की निजी रेल होना आरम्भ हुआ। गारंटी सिस्टम के कारण सरकार को प्रति वर्ष बहुत हानि उठानी पड़ती थी। सन् १८६९ ईस्वी तक सरकार को १६६३

लाख रुपये की क्षति हुई। अतएव सन् १८६९ ई० में सरकार ने गारंटी सिस्टम उठा कर राज्य (State) के लिये सरकारी रेलें कर्ज़ लेकर बनवाना आरंभ किया। अभी तक ५ फ़ीट ६ इंच चौड़ी रेलवे लाइन बनती थीं। नई नीति के अनुसार सरकार ने बड़ी लाइन के अतिरिक्त ३ फ़ीट ३$\frac{3}{8}$ इंच की लाइन—जिसे मीटर गेज कहते हैं—भी बनवाया शुरू किया। स्टेट तथा कम्पनी दोनों की ओर से रेलवे लाइन बड़ी शीघ्रता से तैयार होने लगीं। सन् १८८० तक सरकार की ओर से २,७०९ मील स्टेट रेलवे तथा कम्पनी की ओर से ६०९५ मील रेलें बन गई।

सन् १८७४ में देश में भीषण अकाल पड़ा जो ५ वर्ष तक रहा। इसका प्रभाव रेल के इतिहास पर भी हुआ। दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता पहुँचाने में आवागमन की कठिनाइयों का अनुभव हुआ, अतः अधिक रेल-मार्ग की आवश्यकता जान पड़ी। अफ़गान युद्ध तथा अकाल के कारण धन की कमी पड़ गई। उधर इंग्लैंड में भी सरकार की रेल नीति की कड़ी आलोचना हो रही थी। लोग सरकार द्वारा रेलमार्ग बनवाने के पक्ष में न थे। अतएव सरकार ने राज्य की ओर से रेल मार्ग बनवाना बंद कर पुनः सन् १८८० से गारंटी सिस्टम पर रेलवे कंपनियों को ठेका दे कर प्रोत्साहित किया। किन्तु इस बार सरकार ने ठेके की शर्तों में कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया जिससे सरकार को कुछ सुविधाएँ मिल गई। इसके सिवाय सरकार ने देशी रियासतों से भी रेलवे लाइन बनवाने का आग्रह किया। देशी रियासतों में सबसे पहिले निज़ाम ने ३०० मील रेलमार्ग बनवाया। इन्हीं दिनों में इंग्लैंड और रूस में कुछ अनबन सी हो जाने के कारण पश्चिमोत्तर प्रदेशों तथा बलोचिस्तान में भी रेलवे लाइन की आवश्यकता जान पड़ी। सन् १,८९३ में सरकार ने रेल नीति फिर बदल दी। उस समय तक भारत में १८,००० मील रेलमार्ग बन चुका था। अबकी बार रेलवे कम्पनियों को गारंटी के स्थान पर रिबेट (कुछ निश्चित प्रतिशत रक़म पर छूट) देना आरम्भ किया। इस प्रकार प्रति

वर्ष नये रेलमार्ग बनते ही गये। सन् १९१३ तक लगभग ३५ हज़ार मील रेलमार्ग तैयार हो गया। यूरोपीय महायुद्ध के कारण यद्यपि इस कार्य में शिथिलता पड़ गई किन्तु फिर भी १९२३ तक ३,००० मील और रेलवे लाइन बन गई। सन् १९३३ में भारतवर्ष में रेलमार्ग ४२,१६१ मील हो गया।

सन् १८६९ में सरकार की छोटी सी रेलवे निजी हुई थी। यूरोपीय महायुद्ध के आरंभ होने के समय तक, नार्थ वेस्टर्न रेलवे जो सारे पंजाब प्रांत में फैली हुई है; अवध रुहेल खंड रेलवे, जो गंगा के उत्तरीय भाग में है; तथा ईस्टर्न बंगाल रेलवे, जो कलकत्ते को पूर्वी बंगाल और आसाम से मिलाये हुए है, सरकार की निजी (State Railway) हो गईं। सन् १९२१ में रेल के संबंध में जाँच करने के लिये 'एकवर्थ कमीशन' (Acworth Commission) बैठा। इस कमीशन ने कम्पनियों द्वारा संचालित रेलों को सरकारी बना लेने की सिफ़ारिश की। अतएव सरकार ने धीरे धीरे कम्पनी की रेलों को स्टेट रेलवे बनाना आरंभ कर दिया। सन् १९२५ में ईस्ट इंडियन और ग्रेट इंडियन पेनिनशुला रेलवे; सन् १९२९ में बर्मा रेल्वे एवं सन् ३० में सदर्न पंजाब रेलवे सरकार ने कम्पनीनियों से लेकर अपनी कर लीं। तभी से ये स्टेट रेलवे अर्थात् सरकारी रेलें कहलाने लगीं।

रेलवे शासन-प्रबंध—कई वर्षों तक रेलवे विभाग, पब्लिक वर्क्स सेक्रेटेरियट के ही विभाग द्वारा नियंत्रित होता रहा। सन् १८७९ ईस्वी में स्टेट तथा कम्पनी की रेलों का निरीक्षण करने के लिये 'डायरेक्टर जनरल आफ़ रेलवे' का पद बनाया गया। भारत सरकार के सेक्रेटेरियट में इसका स्थान डिप्टी सेक्रेटरी आफ़ रेलवेज़ की हैसियत से ही था। रेलवे की अधिक उन्नति हो जाने के कारण तथा कार्य की अधिकता हो जाने से रेल का प्रबंध करने के लिये सभापति के अतिरिक्त २ मेम्बरों का एक छोटा सा रेलवे बोर्ड बना कर उद्योग और व्यापार विभाग के आधीन रखा गया। बोर्ड

का अधिकार केवल रेलवे का प्रबंध ही करना था। भारत सरकार ने रेल कार्यक्रम, आय-व्यय तथा अन्य गंभीर प्रश्नों की नीति निर्धारित करने का अधिकार स्वयं अपने ही पास रखा।

सन् १९२१ में रेलवे के शासन प्रबंध आदि की जाँच के लिये 'एकवर्थ कमेटी' बैठी। इसकी रिपोर्ट के अनुसार रेलवे बोर्ड में परिवर्तन किये गये। आजकल रेलवे बोर्ड में एक चीफ़ कमिश्नर, एक फ़ाइनेंस कमिश्नर तथा तीन सदस्य हैं। इनकी सहायता के लिये ५ डायरेक्टर्स* नियुक्त किये गये हैं जो सब कामों की देख भाल करते एवं अपने परामर्श से सहायता पहुँचाते हैं। डायरेक्टर्स ही आपस में प्रायः सब बातों पर विचार कर लेते हैं और नीति तथा गंभीर विषय बोर्ड निर्धारित करता है। रेलवे बोर्ड के अतिरिक्त महसूल आदि के प्रश्नों को तय करने के लिये सन् १९२६ में 'रेट्स एडवाइज़री' कमेटी बनाई गई तथा प्रचार कार्य एवं सूचना आदि के लिये एक जनरल पबलिसिटी ब्यूरो की सन् १९२७ में स्थापना की गई है। सन् १९३५ के एक्ट से रेलवे के शासन में बहुत से परिवर्तन कर दिये हैं। सरकार ने अब यह नीति निश्चय की कि रेलवे शासन को व्यवस्थापिका आदि नीतिक संस्थाओं के प्रभाव से बचाये रहना चाहिए। तदनुसार नये एक्ट ने फेडरल आथारिटी "(Federal authority) नामक सात सदस्यों की एक समिति बनाई जो निर्विघ्नता पूर्वक रेलवे का नियंत्रण करेगी। इनमें से तीन सदस्यों की नियुक्ति स्वयं गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुकूल करेगा और बाकी चार मंत्रियों की सलाह से चुने जायंगे। समिति का सभापति भी गवर्नर जनरल स्वेच्छानुसार नियुक्त करेगा। सदस्यों का वेतन भी गवर्नर जनरल निश्चित करेगा। सरकारी नौकर

---

*५ डायरेक्टर्स—सिविल इंजीनियरिंग, मेकेनिकल इंजीनियरिंग, ट्रैफ़िक, फ़ाइनेंस तथा इस्टेब्लिशमेंट और लेबर के विशेषज्ञ हैं।

अथवा व्यवस्थापिका सभा के सदस्य अपना अपना स्थान त्याग देने के एक वर्ष बाद ही इस समिति के सदस्य हो सकेंगे। सदस्य प्रायः पाँच वर्षों के लिये नियुक्त होंगे। अवधि पूरी हो जाने पर फिर नियुक्ति हो सकेगी, किन्तु पाँच वर्ष से अधिक नहीं। समिति का निर्णय वोटों द्वारा होगा। चूँकि समिति में गवर्नर जनरल के मनोनीत सदस्यों की संख्या अधिक होगी और गवर्नर जनरल इच्छानुसार जिस सदस्य को चाहे हटा भी सकेगा इससे स्पष्ट है कि समिति बहक न सकेगी यही नहीं अपने कार्य क्षेत्र से संबन्ध रखने वाले मामलों में गवर्नर जनरल जो आज्ञा देगा उसका प्रतिपालन समिति को करना अनिवार्य होगा। किन्तु साधारण नीति फेडरल गवर्नमेन्ट ही निश्चित करेगी जिसके अनुसार "रेलवे आथारिटी" को आचरण करना होगा। रेलवे आथारिटी गवर्नर जनरल के निरीक्षण में वस्तुतः स्वाधीनता पूर्वक काम करेगी।

रेलवे आथारिटी की एक कार्यकारिणी होगी जिसका अधिपति "चीफ रेलवे कमिश्नर" होगा। उसकी सहायता के लिये एक अर्थ कमिश्नर (Financial Commissioner) रहेगा। इन दोनों की नियुक्ति गवर्नर जनरल करेगा। इनके अलावा रेलवे चीफ़ कमिश्नर की सिफ़ारिश से और उसकी सहायता के लिये अन्य कमिश्नर रेलवे आथारिटी नियुक्त कर देगी।

इन संस्थाओं के अलावा दो अन्य संस्थाएँ भी उल्लेखनीय हैं। एक का नाम है "रेलवे रेट्स कमिटी" (Railway rates committee) इसके सदस्यों को भी ग० जनरल ही नियुक्त करता है। इसका कर्तव्य है कि भाड़े महसूल और आवागमन संबंधी मामलों पर रेलवे आथारिटी को परामर्श दिया करे। दूसरी संस्था है रेलवे ट्राइब्यूनल" (Railway Tribunal) जिसमें एक सभापति और दो सदस्य होंगे। इनकी नियुक्ति भी ग० जनरल ही करेगा। सभापति फेडरल कोर्ट के जजों में से ही पाँच वर्ष के लिए चुना जायगा। रेल्वे ट्राइब्यूनल फेडरेल रेलवे आथारिटी

के साथ अन्य सूबों और रियासतों के झगड़ों का निर्णय करेगा। इसके फैसले के विरुद्ध 'फेडरल कोर्ट' (Federal Court) में अपील की जा सकेगी जिसका निर्णय अन्तिम समझा जायगा। इन दोनों अदालतों को यह अधिकार दे दिया गया है कि परिस्थिति बदलने पर वे अपना निर्णय बदल या रद्द कर दें।

रेल संबंधी आय-व्यय (Railway Finance)—सन् १९२४ के पूर्व रेल संबंधी आय-व्यय भारत सरकार के जनरल बजट में ही रखा जाता था। सन् २४ से रेलवे बजट अलग कर दिया गया है। किन्तु व्यवस्थापिका उसमें रद्द बदल कर सकती थी, १९३५ के सुधारों के अनुसार रेलवे आथारिटी अपने आय-व्यय का हिसाब किताब स्वयं रखेगा। यह रुपया रिज़र्व बंक में जमा किया जायगा। सब खर्च और लेखा-जोखा पूरा करने के बाद यदि फायदा हुआ तो उसको निश्चित ढंग से आथारिटी और फेडरेशन' आपस में बाँट लेंगे। किन्तु यदि हानि हुई तो उसकी पूर्ति के लिये फेडरल व्यवस्थापिका के निर्णयानुसार सहायता दी जायगी। यद्यपि रेलवे बजट भी साधारण बजट के अन्तर्गत रहेगा और फेडरल व्यवस्थापिका के सम्मुख पेश किया जायगा तथापि व्यवस्थापिका को अब पहले की तरह उसमें रद्द बदल करने का अधिकार न होगा। भारत की कुल रेलों पर ८३२ करोड़ के लगभग व्यय हो चुका है जिसमें से सरकार ने लगभग ७३५ करोड़ ख़र्च किया है। इस रक़म पर सरकार को प्रतिवर्ष १% के हिसाब से ७ करोड़ ३५ लाख ९५ हज़ार ब्याज देना पड़ता है। हमारे देश के ऋण का एक बड़ा भाग रेल के ही कारण है।

१९वीं शताब्दी में रेल से कोई लाभ न हुआ वरन प्रायः नुकसान ही होता रहा। सन् १९०० में लाभ की आशा दिखाई दी। इसके पश्चात् लाभ में उन्नति होती रही। सन् १९०४–१९०८ तक लगभग २ करोड़ ७० लाख रुपया सालाना की आमदनी हुई। दूसरे वर्ष लाभ के स्थान पर फिर हानि हुई। यूरोपीय महायुद्ध के बाद सन् १९१९ से लाभ बढ़ना

ही रहा। कुछ समय तक लागत पर लगभग ५½ प्रति शत भारत सरकार को रेल से आमदनी होती रही। सन् ३१ से फिर रेल में घाटा होने लगा है। सन् ३८ में न घाटा ही हुआ और न लाभ ही।

रेलवे विभाग में अनेकों छोटे वड़े कर्मचारी हैं। सन् १९३३ में रेल विभाग में काम करने वालों की कुल संख्या ७,१०,२७१ थी जिसमें ४,२९७ यूरोपियन, ५,०४,०८२ हिन्दू, १,५२,८७५ मुसलमान तथा शेष ४९,०१७ अन्य जातियों के कर्मचारी थे।

भारतवर्ष की रेलें संसार भर की प्रधान रेलों में गिनी जाती हैं। आजकल छोटी, बड़ी, ब्रिटिश भारत तथा रियासतों की कुल २५ रेलवे कम्पनियाँ हैं। इनमें नार्थ वेस्टर्न रेल्वे, ईस्ट इंडियन रेलवे, ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे, बंगाल नागपुर रेलवे, बाम्बे बरोदा सेंट्रल इंडिया रेलवे, ईस्टर्न बंगाल रेलवे, मद्रास और सदर्न मराठा रेलवे, बर्मा रेलवे, बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे, आदि मुख्य हैं। रियासतों की रेलों में निज़ाम रेल्वे, काठियावाड़ रेल्वे तथा जोधपुर बीकानेर रेलवे विशेष उल्लेखन य हैं।

डाक और तार

पुराने समय से ही भारतवर्ष में पत्र ले जाने और ले आने के लिये प्रबंध था। यह सत्य है कि उस समय आवागमन के इतने सुभीते न होनें के कारण इसमें अनेकों त्रुटियाँ थीं, और समय भी बहुत लगता था। मुसलमान-शासन-काल में भी पत्र, हरकारा या क़ासिद आदि के द्वारा भेजे जाते थे।

अँग्रेज़ी-शासन-काल में सन् १८३७ के पूर्व पत्रों के लिए व्यवस्थित प्रबंध न था। मुख्य शहरों में जहाँ कि सरकारी कर्मचारी थे, सरकारी डाक के ले जाने का कुछ प्रबंध किया गया था। साधारण जनता के लिए यह प्रबंध न था। किसी व्यक्ति विशेष को यदि पत्र भेजना होता तो

दूरी और तौल के हिसाब से उसमें मज़दूरी पहले से ली जाती थी*। यह प्रबंध भी केवल ख़ास कृपा का ही रूप था।

सन् १८३७ में एक महत्त्वपूर्ण एक्ट पास हुआ। इसी समय से भारतीय डाक का इतिहास प्रारंभ होता है। इस एक्ट के अनुसार बड़े बड़े स्थानों में जनता के लिए डाकख़ाने खोले गये। ईस्ट इंडिया कंपनी के राज्य के अंतर्गत स्थानों में पत्रों के आवागमन का प्रबंध व्यवस्थित रूप से किया गया। इस समय भी पत्र भेजने की मज़दूरी दूरी और वज़न से ही निर्धारित की जाती थी। प्रेसीडेन्सी का पोस्टमास्टर प्रान्त भर के डाकख़ानों का नियंत्रण किया करता था तथा ज़िले के डाकघर कलेक्टर के निरीक्षण में थे।

तेरह वर्ष के बाद एक कमीशन डाकख़ानों की जाँच के लिए बैठा। इसकी रिपोर्ट के आधार पर सन् १८५४ में भारतीय डाक एक्ट (Indian Postal Act) पास हुआ। इसी एक्ट के अनुसार भारत का आधुनिक डाक विभाग संगठित है। इसके अनुसार समस्त डाक विभाग के नियंत्रण के लिए एक डायरेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। पोस्टमास्टर जनरल का पद प्रेसीडेन्सी के पोस्टमास्टर से पृथक् कर दिया गया। हर एक प्रान्त में डाक विभाग के निरीक्षण के लिए एक पोस्टमास्टर जनरल, तथा छोटे प्रान्तों के लिए चीफ़ इंस्पेक्टर नियुक्त हुए। इसी समय से डाक के 'टिकटों' का आरंभ हुआ जिनका मूल्य केवल वज़न पर ही निर्धारित किया जाता था।† इस समय से दूरी का प्रश्न उठा लिया गया।

---

* इसके अनुसार बम्बई से कलकत्ते का १) प्रति तोला तथा कलकत्ते से आगरा ।।।) तोला मजदूरी थी।

† १८५४–१८६९ तक)।। चौथाई तोला, -) आधा तोला तथा =) एक तोला के लिये दर था। १ तोला के ऊपर =) तोला के हिसाब से और महसूल लगता था।

इसके बाद समय समय पर एक्ट पास होते रहे। सन् १८९८ के एक्ट के अनुसार मनीआर्डर और बीमा किये हुए पत्रों (Insured Letters) में सुविधाएँ हो गईं।

सन् १८७५ में विदेश से पत्र आने जाने की भी व्यवस्था हो गई। और कुछ ही वर्षों बाद सन् १८९९ से संसार के किसी भी भाग में पत्र एवं पार्सल आदि भेजने और आने का प्रबंध हो गया। इसी प्रकार डाकघर के संगठन में भी—पत्र, पार्सल, मनीआर्डर, इंश्योर्ड या रजिस्टर्ड पत्रों के महसूलों आदि—समय समय पर परिवर्तन होते रहे। इसके अतिरिक्त सन् १८८२ में प्रत्येक डाकघर में सेविंग बैंक भी खोल दिये गये।

तार का भी प्रबंध हो जाने से डाकघर के साथ ही तारघर भी मिलाना आरंभ हो गया। आजकल अनेकों डाकघर तारघर भी हैं। इसके अतिरिक्त पत्र व्यवहार में हाल ही में और भी सुविधाएँ हो गई हैं। अब हवाई जहाज़ के द्वारा भी पत्र व्यवहार होने लगा है। विदेशी डाक का हवाई जहाज़ से प्रबंध सन् १९२९ में आरंभ हुआ। ८ जुलाई सन् ३३ से भारत में भी 'एयरमेल' आरंभ हो गया।

डाक विभाग का संगठन—पहिले डाक विभाग और तार विभाग पृथक् रूप से भारत सरकार के आधीन उद्योग और व्यापार विभाग के अंतर्गत थे। सन् १९१४ में भारत-सचिव ने इन दोनों विभागों को मिला देने की अनुमति दे दी। आजकल ये 'उद्योग और धंधे' (Industry and Labour) विभाग के एक अफ़सर के आधीन हैं जिसे 'डायरेक्टर जनरल आफ़ पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ़' कहते हैं। इसकी सहायता के लिए

१८६९–१९०५ तक)॥ में आधा तोला तथा -) में १ तोला। १९३६ से -) में एक तोला और उससे ऊपर प्रत्येक तोला के लिये)॥ लगता है। रजिस्टर्ड अखबारों के लिये १० तोलों पर)। लगता है।

तीन 'डिप्टी डायरेक्टर जनरल' तथा ३ 'असिस्टेंट जनरल' हैं। डाकखानों के प्रबंध के लिए देश ९ भागों में बाँटा गया है जिन्हें सर्किल कहते हैं। ये हैं—बंगाल और आसाम, बिहार और उड़ीसा, बंबई, बर्मा, सेंट्रल, मद्रास, पंजाब और नार्थ वेस्ट फ्रांटियर, यू०पी०, एवं सिंध और बलोचिस्तान। सेंट्रल सर्किल में सी० पी०, सेंट्रल इंडिया और राजपूताना एजेंसी शामिल हैं। इनमें से पहिले ८ सर्किल एक एक पोस्टमास्टर जनरल के आधीन हैं और सिंध, बलोचिस्तान एक डायरेक्टर पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ़ के निरीक्षण में है। सर्किल में कई डिवीज़न होते हैं। जिनके प्रधान कर्मचारी को सुपरिन्टेंडेन्ट पोस्ट आफिस या सुपरिन्टेंडेन्ट रेलवे मेल सर्विस कहते हैं। इनकी सहायता के लिए कई इंस्पेक्टर्स होते हैं। हर एक ज़िले में एक बड़ा पोस्ट आफ़िस होता है जिसके नीचे कई सब पोस्ट आफ़िस होते हैं। इस प्रकार देश भर में लगभग २२,८२० डाकघर हैं। जिनमें १,१२,८०० के लगभग छोटे बड़े कर्मचारी काम करते हैं। सन् १९२९ में पोस्ट आफ़िस की आमदनी ६९,२०,९३३) हुई।

आजकल पोस्ट आफ़िस देश के प्रत्येक भाग में फैले हुए हैं। अब टेलीफ़ोन का भी प्रयोग डाकखानों में होने लगा है।

तारघर

प्रारंभिक इतिहास—सन् १८५१ में कलकत्ता मेडिकल कालेज के एक अध्यापक ने कंपनी से कलकत्ता से डायमंड हारबर तक तार का प्रयोग करने की अनुमति माँगी। इन्होंने ८२ मील लंबी तार की लाइन बनाकर प्रयोग किया। प्रयोग में इन्हें पूर्ण सफलता मिली जिससे उत्साहित होकर लार्ड डलहौज़ी ने कंपनी के डायरेक्टरों से इजाज़त लेकर भारतवर्ष में तार घर आदि बनवाना आरंभ कर दिये। आरंभ में कलकत्ते से आगरा, बंबई और पेशावर, तथा बंबई से मद्रास तक तार की लाइनें

बनाई गई। इनकी लम्बाई लगभग ३०५० मील थी। सन् १८५५ ईस्वी में तार की लाइन जनता के लिये खोल दी गई।

इस कार्य में बड़े वेग से उन्नति होती रही। दो ही वर्षों के बाद ओटकमंड, मैसूर तथा कालीकट में भी तार की लाइन तैयार हो गई। सन् ५७ के विद्रोह के समय भारतवर्ष में ४,५५५ मील लंबी तार की लाइन तथा ६२ तारघर थे। विद्रोह में कई तार की लाइनें नष्ट हो गईं किंतु शांति स्थापित होने के एक ही वर्ष बाद टूटी हुई लाइनों की मरम्मत के अतिरिक्त लगभग २,००० मील लंबी नई लाइनें बनीं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि भारत सरकार एवं जनता दोनों ने ही इस तार विभाग की आवश्यकता स्वीकार कर ली। इस समय से तार विभाग दिन प्रति दिन उन्नति ही करता रहा।

सन् १८७३ में तार विभाग ने रेलवे में भी तार की लाइन बनाना स्वीकार किया जिसके फल स्वरूप आधुनिक रेलवे टेलीग्राफ़ है। इसी तरह सेना विभाग में भी तार की लाइनें बनने लगीं, जिससे समाचार भेजने में बहुत सुविधाएँ हो गईं। सन् १८८२ में तार के साथ टेलीफ़ोन भी लगाना आरंभ हुआ। धीरे धीरे विदेशों से भी तार द्वारा संबंध स्थापित हो गया। आधुनिक समय में तो बेतार की तारबर्क़ी से भी समाचार आदि भेजे जाते हैं।

सन् १८८३ के पूर्व तार विभाग बिलकुल पृथक् था। इस वर्ष तार विभाग की उन्नति के लिए यह निश्चित किया गया कि पोस्ट आफ़िसों से तारघर का भी काम लिया जाय। धीरे धीरे अनेकों डाकघर, तारघर भी होते गये। सरकार ने अन्य कंपनियों को अनुमित देकर टेलीफ़ोन की उन्नति में बड़ी सहायता दी। इस प्रकार इस विभाग ने थोड़े ही समय में अच्छी उन्नति की। इससे देश के व्यापार आदि की भी विशेष उन्नति हुई है।

आधुनिक संगठन—आजकल देश में लगभग २६० बड़े तार घर,

१३५ विदेशों में समाचार भेजने के, तथा डाक और तारघर लगभग ४,२०० हैं। मार्च सन् २९ में टेलीफ़ोन के सरकारी एक्स्चेंज और दफ़्तरों की संख्या लगभग २८८ तथा अन्य टेलीफ़ोन कंपनियों द्वारा संचालित एक्स्चेंज २२ थे, जिनमें लगभग बीस हज़ार सरकारी विभाग द्वारा लगाये हुए तथा ३३,७५० कंपनियों द्वारा लगाये हुए टेलीफ़ोन थे। इसी प्रकार सन् २९ में 'वायरलेस' के २४ स्टेशन थे। तार विभाग के कुल कर्मचारियों की संख्या १८,१२१ थी।

ऊपर कहा जा चुका है सन् १९१४ में तार-विभाग डाक-विभाग से मिला दिया गया है। आजकल डाक और तार विभाग का प्रधान डायरेक्टर जनरल आफ़ पोस्ट एन्ड टेलीग्राफ़ है जो भारत सरकार के इंडस्ट्री और लेबर विभाग के अंतर्गत है। तार के प्रबंध के लिये ७ सर्कल तथा २० डिवीज़न बनाये गये हैं। हर एक सर्किल का प्रबंध एक डायरेक्टर के अधीन है। प्रत्येक डिवीज़न का प्रधान डिवीज़नल इंजीनियर कहलाता है। इनकी सहायता के लिए और भी कई कर्मचारी हैं।

व्यापार और उद्योग (Trade and Industry)

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। देश की लगभग ¾ जन संख्या मुख्यत: खेती किसानी करके ही जीवन निर्वाह करती है। किन्तु फिर भी हमारे देश में खेती के अतिरिक्त तरह तरह की शिल्पकलायें प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं। मशीनों की उन्नति के पहिले लोग छोटे छोटे औज़ारों से ही काम चलाते थे। हिन्दू काल में कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय जैसे हथियार, इमारतें, कपड़ा आदि बनाकर लोग जीविका चलाते थे। ललित कलाएँ भी जैसे संगीत, चित्रकारी, साहित्य आदि भी उन्नत थीं। यह हिन्दू काल में व्यापार की अधिकता न थी। मुसलमानी काल में शिल्पकला तथा कपड़ा बुनने की कारीगरी ने विशेष रूप से उन्नति

की। आगरे का ताजमहल, दिल्ली, फ़तहपुर-सिकरी आदि स्थानों के प्राचीन किले और महल मुसलमान काल की कारीगरी के बढ़िया नमूने अभी तक है। इस काल में व्यापार की बहुत उन्नति हुई। ढाके की मलमल दूर दूर देशों में जाकर भारत की कपड़ा बुनने की कला का परिचय देने लगी। चीन, तिब्बत, अफ़ग़ानिस्तान, फ़ारस, ईरान आदि देशों से ही अधिकतर व्यापारिक संबंध था। मुसलमानी काल में देश की हस्तकला कदाचित् उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुकी थी।

अँग्रेज़ी काल में देश के व्यापार कला-कौशल, व्यवसाय आदि में अद्भुत परिवर्तन हो गया। सर्वत्र आने जाने के मार्ग खुल जाने से एवं विदेशियों के संसर्ग से देश के व्यापार तथा ज्ञान में विशेष वृद्धि होने लगी। यूरोपीय जातियों ने भारत से सोना चाँदी आदि धातुओं के बदले मसाले, कपड़ा आदि ले जाकर अपने देशों में बेचना आरंभ किया। देश में बंबई, मद्रास, कलकत्ता, सूरत, कराँची आदि बंदरस्थानों की नीव पड़ी। स्थल मार्ग की अपेक्षा अब जलमार्ग के द्वारा ही व्यापार अधिकतर होने लगा। धीरे धीरे भारत का व्यापार ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में आगया।

इसी समय संसार में नवीन युग आरंभ हुआ। मशीनों के प्रचार से हस्तकला सारे संसार में शिथिल पड़ गई। रेल तार आदि अनेकों आवागमन के नवीन साधनों का आविष्कार तथा प्रचार हुआ। समय पाकर भारतवर्ष में भी मशीनों का आगमन हुआ। देश में रेल तार आदि के बन जाने से व्यापार में भी उथल-पुथल हो गई। अनेकों नवीन नगर बसाये जाने लगे। कृषि की उन्नति के साथ ही जंगली पदार्थों जैसे लाख, लकड़ी, गोंद आदि के व्यापार में भी वृद्धि होने लगी।

भारतवर्ष का विदेशों से व्यापार इधर कुछ वर्षों से घटता ही रहा। सन् १९२८ और १९२९ में प्रति वर्ष लगभग ४५० करोड़ रुपये के मूल्य का व्यापार होता था। सन् १९३२–३३ में यह केवल २७० करोड़ के

लगभग ही रह गया।* किन्तु अब फिर उन्नति के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। विदेश जाने वाली वस्तुओं में जूट, कपास, अनाज, बीज इत्यादि, चाय, चमड़ा, लाख, धातु आदि मुख्य हैं।

विदेश से आनेवाली वस्तुओं में कपास तथा सूती और ऊनी कपड़े, मशीनें, अन्य धातुएँ, शक्कर, अनाज, तेल, मोटर आदि सवारियें, दवायें, मनिहारी के सामान (चूड़ियाँ आदि) वस्तुएँ मुख्य हैं। सन् १९२९ में भारत से बाहर जाने वाली वस्तुओं का मूल्य लगभग २३० करोड़ तथा आने वाली वस्तुओं का लगभग १९० करोड़ रुपया था। इस प्रकार अन्य वर्षों की रिपोर्टें मिलाने से यही ज्ञान होता है कि भारत से बाहर जानेवाली वस्तुओं का ही मूल्य आनेवाली वस्तुओं की अपेक्षा अधिक है।

विदेश से आने वाली वस्तुओं में सूती ऊनी तथा रेशमी कपड़ा ब्रिटेन जापान, इटली, चीन और आस्ट्रेलिया से ही प्रायः आता है। मशीनें तथा धातुओं की अन्य वस्तुएँ ब्रिटेन, जर्मनी, जापान तथा अमेरिका आदि देशों से आती हैं। देश में शक्कर प्रायः जावा से ही अधिकतर आती है। मोटर, बाइसिकिल आदि सवारियाँ अमेरिका, फ्रांस तथा जापान आदि से; अनाज आस्ट्रेलिया, बर्मा आदि देशों से; नमक अदन, इजिप्ट से; दवाइयां जर्मनी, इंग्लैण्ड से; कोयला इंग्लैंड तथा पोर्तगीज़ ईस्ट आफ्रिका से; तथा मनिहारी का सामान इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशों से अधिकतर आता है।

सार्वजनिक काम में आनेवाली आवश्यक वस्तुओं पर भारत सरकार ने देश के व्यापार तथा कला-कौशल की उन्नति के लिये भी कुछ उपाय किये

---

*आजकल भारत से सोना बहुतायत से विदेश जा रहा है। सन् ३३ में लगभग ६५$\frac{1}{3}$ करोड़ का सोना विदेश गया। यह मद्द व्यापार में शामिल नहीं की गई है।

है। व्यापार तथा कारीगरी की उन्नति के लिये अनेकों संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। इनमें बंबई का विक्टोरिया जुबली कालेज, कलकत्ता, बंबई, मद्रास, लाहौर, लखनऊ आदि के गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्ट्स प्रसिद्ध हैं। कृषि विद्या के लिए पूसा, पूना नागपुर तथा कानपुर के अतिरिक्त अब प्रायः हर एक विश्वविद्यालय की ओर से प्रबंध हो गया है। इसी तरह इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबंध भी रुड़की और शिवपुर के कालेजों में किया गया है।

संस्थाओं के अतिरिक्त देश के व्यापार एवं कला-कौशल की उन्नति क़ानून का सहारा लेकर भी की गई है। देश के व्यापार की उन्नति उसी समय हो सकती है जब हमारे देश की वस्तुएँ अन्य देशों की वस्तुओं से अच्छी और सस्ती बनें। यदि हमारे देश का बना हुआ माल विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक मूल्य में बिकेगा तो हमारी वस्तुएँ विदेशी वस्तुओं के सामने व्यापार क्षेत्र में ठहर न सकेंगी। हर एक सरकार अपने देश तथा राज्य के व्यापार एवं उद्योग की वृद्धि के लिए प्रयत्न करती है।

भारत सरकार की सबसे अधिक आमदनी आयात तथा निर्यात कर से ही है। इस टैक्स से सरकार का उद्देश्य आमदनी के अतिरिक्त देश के व्यापार एवं उद्योग की उन्नति करना भी है। भारत सरकार की नीति अँग्रेज़ी साम्राज्य के व्यापार की रक्षा करना तथा उसे प्रोत्साहन देना है। सन् १८५८ में सरकार ने अँग्रेज़ी मालपर ५ प्रतिशत तथा अन्य विदेशी माल पर १० प्रतिशत टैक्स लगाया। इसी समय से विदेश से आनेवाले माल पर टैक्स लगाने की नीति आरंभ हुई। इस नीति में समय समय पर परिवर्तन होते रहे। सन् १८८२ ईस्वी में सरकार ने नमक और शराब के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर से टैक्स उठा लिया। यह नीति अधिक दिनों तक चल न सकी। देश में असंतुष्टता के अतिरिक्त सरकारी कोष की भी हानि होने से १८९४ में पुरानी नीति का पुनः अवलंबन करना पड़ा। सन् १९२१ में एक आर्थिक कमीशन (Fiscal Commission) बनाया गया जिसने भारतीय व्यापार तथा औद्योगिक वस्तुओं की क़ानून के द्वारा रक्षा करने

की सिफ़ारिश की। सन् १९३२ में ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापार के संबंध में 'ओटावा' में एक कान्फ्रेन्स हुई। इसके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापार की उन्नति तथा रक्षा के लिए आपस में यह समझौता हुआ कि प्रत्येक उपनिवेश अन्य देशों की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्य के देशों पर कम टैक्स लगाकर सहायता करेगा।*

साम्राज्य के व्यापार की रक्षा के अतिरिक्त सरकार का कर्तव्य देश की भी उन्नति करना है। इसके लिये सरकार सार्वजनिक व्यवहार में आने वाली आवश्यक वस्तुओं पर कम टैक्स लगाकर और कुछ वस्तुओं जैसे खाद, कृषि संबंधी औज़ार, कुछ धातुएँ, चीनी मिट्टी, काग़ज़ बनाने की चीज़ें (चिथड़े आदि), रबर, हथियार, प्लेग के टीके की दवा, किताबें आदि पर टैक्स न लगाकर, आवश्यक वस्तुओं का मूल्य कम करने में सहायता पहुँचाती है। इसके विपरीत ऐश और आराम की वस्तुओं पर अधिक टैक्स लगाया जाता है। देश की औद्योगिक उन्नति में दो प्रकार से सरकार हाथ बँटाती है। एक तो देश के बने हुए माल की प्रतिद्वंदी वस्तुओं पर कुछ समय के लिये टैक्स बढ़ाकर, जिससे देश उन वर्गों में उन्नति करके अन्य देशों से मुक़ाबला करने के लिये समर्थ हो जाय, और दूसरा देश की औद्योगिक परिस्थिति की वृद्धि या निर्माण के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनका मूल्य कम करने का प्रयत्न कर देश की औद्योगिक उन्नति में सहायता करती है। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए सरकार आयात निर्यात कर स्थिर करती है। आजकल व्यापार के लिए भारत सरकार का अलग विभाग है। इसी तरह उद्योग और धंधों के लिये भी भारत सरकार ने अलग विभाग स्थापित किया है।

---

*हाल ही में भारतीय व्यवस्थापिका ने ओटावा समझौते को रद्द करने का प्रस्ताव पास किया है।

औद्योगिक उन्नति—भारतवर्ष कृषिप्रधान देश होते हुए भी आजकल संसार के प्रथम ८ औद्योगिक देशों में माना जाता है। देश के औद्योगिक (Industrial) इतिहास की ओर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि भारत का उद्योग धीरे धीरे उन्नति करता ही रहा।

सन् १८५६ ई० में बंबई में कपड़े का प्रथम कारखाना खुला। कुछ ही वर्षों में (सन् १८७७) इनकी संख्या ५१ हो गई। यह संख्या बढ़ते बढ़ते सन् १८९० में १३७; सन् १९०० में १९३; सन् १९१० में २६३; सन् २२ में २९८ और सन् २८ में ३३५ पहुँच गई। आजकल भारतवर्ष में कपड़े के कारखानों की संख्या ३६० से अधिक है, जिनमें लगभग ५ लाख श्रमजीवी कार्य करते हैं। कपड़ों के कारखाने अधिकतर बंबई, अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर, मद्रास, कनानोर, कलकत्ता, दिल्ली तथा अकोला आदि में हैं। इनमें कोट, कमीज़, के कपड़े तथा चादर, धोतियाँ आदि बनती हैं। सूती कपड़ों के अतिरिक्त इन कारखानों में रेशमी कपड़े भी बनाये जाते हैं। ऊनी कपड़ों की अधिक खपत न होने के कारण देश में ऊनी कपड़ों के कारखाने बहुत कम संख्या में हैं। इनके मुख्य स्थान कानपुर, बंबई, लुधियाना, और धारीवाल हैं। काश्मीर में पट्टू और पश्मीना अच्छा होता है। काश्मीर के बेलबूटों का काम तथा शालदुशाले आदि सैकड़ों वर्षों से संसार भर में प्रसिद्ध हैं। यह काम काश्मीर में प्रायः हाथ से ही किया जाता है।

बंगाल प्रान्त में जूट अधिकता से होता है। बंगाल में जूट (सन) का पहला कारखाना सन् १८५५ में खुला था। जूट का व्यापार बढ़ता ही गया अतः इसके कारखाने बढ़ते बढ़ते आजकल १०० के लगभग हो गये हैं। यह व्यापार प्रायः विदेशियों के ही हाथ में है। सन् १९३३ में लगभग ३१ करोड़ का जूट विदेश भेजा गया।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में लोहे के कारखाने भी स्थापित हुए। सन् १९०७ में जमशेदपुर में टाटा आयरन वर्क्स की स्थापना हुई। इसकी

अच्छी उन्नति होती रही और आज यह एशिया में सबसे बड़ा लोहे का कारख़ाना समझा जाता है। इसमें रेल की पटरियों तथा फ़ौलाद की अन्य वस्तुओं को बनाने के सिवा गंधक, शोरे आदि का तेज़ाब भी अधिकता से तैयार होता है।

चमड़े के कारख़ाने कानपुर, आगरा, बंबई और कलकत्ते आदि में हैं। इनमें चमड़े के बक्स, जूते आदि तथा अन्य अनेकों वस्तुएँ अच्छी बनती हैं। अलीगढ़ में चाक़ू, ताले आदि, मेरठ में दरी कैंची आदि; कलकत्ते में साबुन, तेल, दवाइयाँ आदि अच्छी तैयार होती हैं। आजकल शक्कर के कारख़ाने भी देश में अधिकता से हो गये हैं। इनकी अधिकता यू० पी०, पंजाब और बिहार में है। भारतवर्ष में शक्कर अच्छी तैयार होने लगी है पर फिर भी इसे जावा का मुक़ाबला करने में कठिनाई पड़ रही है। अल्युमिनियम के कारख़ाने कलकत्ता और बनारस में हैं। चीनी मिट्टी के बर्तन आदि भी यहाँ अच्छे बनने लगे हैं। इनके कारख़ाने अधिकतर कलकत्ता, जबलपुर और ग्वालियर में हैं। सिमेंट चूना आदि के कारख़ाने भी प्रतिदिन उन्नति कर रहे हैं। इनके प्रधान कारख़ाने कटनी, जबलपुर, मैहर आदि स्थानों में हैं। बड़े कारख़ानों के सिवा देश भर में अनेकों घरेलू धंधे तथा अन्य छोटे छोटे कारख़ाने भी हैं। बनारस, मुर्शिदाबाद, गुजरात, बिलासपुर, रायपुर आदि में रेशम के कपड़े तैयार होते हैं। बनारस में रेशम के अतिरिक्त पीतल तथा ताँबे आदि के बर्तन, गोटा-किनारी, खिलौने, तमाखू आदि तैयार होती है। मद्रास और कलकत्ते में पेंसिल, क़लमें आदि, लखनऊ, कलकत्ते और सियालकोट में क्रिकेट, हाकी आदि खेलकूद के सामान अच्छे बनते हैं।

प्रान्तीय सरकारें भी देश की औद्योगिक परिस्थिति की उन्नति का प्रयत्न कर रही हैं। देशी कला-कौशल को उत्साहित करने के लिये प्रदर्शनियों आदि का सरकारी की ओर से आयोजन भी होता है। प्रान्तीय सर-कारें हस्तकला के विद्यालयों की मदद करती हैं। केन्द्रीय सरकार भी

इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। कुछ वर्षों मे रेल की पटरियों का ठेका टाटा आयरन वर्क्स को दे दिया गया है। इसी प्रकार कई तरह से देश के उद्योग धंधों को उन्नति करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

स्वदेशी के प्रचार होने के कारण देश की हस्तकला में पुनः कुछ उन्नति होने लगी है। आजकल देश भर में खादी के कपड़े अच्छे बनाये जाते हैं। बीड़ी के अतिरिक्त देश में सिगरेट आदि के भी अनेकों कारखाने हो गये हैं। धीरे धीरे देश स्वावलंबी हो रहा है और आशा की जाती है कि भविष्य में पुनः भारतवर्ष अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के अतिरिक्त अन्य देशों को भी सहायता दे सकेगा।

कोआपरेटिव आन्दोलन

भारत में ७० प्रतिशत से अधिक जन संख्या कृषि के ऊपर निर्भर है। पानी कम या अधिक बरसने या पाला पड़ जाने से कृषि को अधिक हानि होती है। इस कारण अनेकों दुर्भिक्ष भी पड़ते हैं। किसानों को अपना धंधा चलाने के लिये प्रायः सदैव ऋण लेना पड़ता है। ग़रीब किसान अपने खेत, बैल आदि गिरवी रख कर महाजनों से रुपया उधार लेते हैं जिसपर उन्हें अधिक ब्याज देना पड़ता है। किसानों की दुर्दिन में सहायता करने के ही अभिप्राय से जनता और सरकार ने समय समय पर कई प्रयत्न किये। इनकी सहायता के लिये ही कोआपरेटिव आन्दोलन हुआ और कोआपरेटिव सोसाइटियाँ हर जगह खोली गईं।

प्रारम्भिक इतिहास—यूरोप में कोआपरेटिव संस्थाएँ बहुत समय से थीं। १९वीं शताब्दी के अंतिम काल में स्वर्गीय रानाडे तथा सर वेडरबर्न ने किसानों की सहायता के लिये बैंक खोलने का विचार सरकार के सम्मुख रक्खा। लार्ड रिपिन ने तो इसे मान लिया किंतु भारत सचिव ने इसके लिये अनुमति न दी। इसके पश्चात् यह आन्दोलन बढ़ता ही गया। कुछ

वर्षों के उपरांत मद्रास की सरकार ने भी इसके लिये सिफ़ारिश की। जनता तथा सरकारी कर्मचारियों के आग्रह से लार्ड कर्जन ने एक जांच कमेटी नियुक्त की जिसकी सिफ़ारिश तथा रिपोर्ट के आधार पर 'को आपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी एक्ट' सन् १९०४ में पास हुआ।

इस एक्ट के अनुसार किसी भी जगह के कम से कम दस व्यक्ति अपनी उन्नति तथा सहायता के लिये कोआपरेटिव सोसाइटी बना सकते थे। इस संस्था का अभिप्राय अपने सदस्यों से या अन्य व्यक्तियों से रुपया जमा करना था जिससे दुर्दिन में यह रुपया कम व्याज पर उधार दिया जा सके। प्रत्येक प्रान्त में सरकार की ओर से इन संस्थाओं के निरीक्षण, नियंत्रण एवं प्रचार के लिये एक आफ़िसर नियुक्त किया गया जिसे 'रजिस्ट्रार आफ कोआपरेटिव सोसाइटीज़' कहते हैं। रजिस्ट्रार का कर्तव्य इन संस्थाओं के हिसाब किताब की भी जाँच करना था। इस प्रकार भारतवर्ष ने कोआपरेटिव संस्थाएँ खोलने का प्रबंध कर सरकार ने ग़रीब किसानों की सहायता करने का प्रयत्न किया।

इन संस्थाओं के संबंध में समय समय पर और भी एक्ट पास हुए। सन् १९१२ में 'कोआपरेटिव सोसाइटी एक्ट' पास हुआ जिसके अनुसार १९०४ का एक्ट रद्द कर दिया गया। अब उधार देने के अतिरिक्त और भी अभिप्राय के लिए कोआपरेटिव सोसाइटियाँ स्थापित करने का विधान बनाया गया।

कोआपरेटिव सोसाइटी मुख्यतः दो प्रकार की हैं। एक तो किसानों की जो सन् १९०४ के एक्ट के अनुसार बनी थीं और जिन्हें 'एग्रिकल्चरल क्रेडिट सोसाइटी' कहते हैं। और दूसरी ग़ैर एग्रिकल्चरल क्रेडिट सोसाइटियाँ।

एग्रिकलचरल क्रेडिट कोआपरेटिव सोसाइटी—किसानों की एग्रिकल्चरल सोसाइटियाँ प्रायः हर एक ग्राम में हैं। प्रत्येक प्रान्त में इनके भिन्न भिन्न नियमादि हैं। कहीं तो इनसे लाभ उठाने के लिए इनका

सदस्य होना अनिवार्य है और कहीं नहीं। सदस्य बनने के लिये कुछ थोड़ी सी निश्चित फ़ीस देनी पड़ती है। इस प्रकार प्रत्येक सोसाइटी ने कुछ रुपया सदस्यों से एकत्रित हो जाता है। इनकी सहायता के लिए प्रत्येक प्रान्तीय सरकार हर वर्ष कुछ रुपया अलग रखती जाती है, जो आवश्यकतानुसार ऋण के रूप में दिया जाता है। प्रत्येक संस्था सेंट्रल बैंक के अंतर्गत कर दी गई है और इसी बैंक के द्वारा ये व्यापार आदि करती है।

संगठन तथा प्रबंध—प्रत्येक सोसाइटी का एक मंत्री होता है जिसका कर्तव्य हिसाब आदि रखना है। इसके लिये प्रायः उसी ग्राम के किसी उपयुक्त व्यक्ति को ही मंत्री बनाते हैं। कई प्रान्तों में हिसाब रखने की शिक्षा देने का प्रबंध भी किया गया है। प्रत्येक सोसाइटी के प्रबंध के लिये ५ से ९ व्यक्तियों की एक समिति होती है जिसका सभापति ग्राम का ही कोई प्रभावशाली व्यक्ति होता है। नवीन सदस्य भरती करना, रुपया जमा करना, कर्ज़ देना आदि सब प्रबंध यही समिति करती है। प्रायः प्रतिवर्ष सब सदस्यों की एक सभा होती है जिसमें साल भर का हिसाब पास किया जाता है। लाभ का रुपया, रिज़र्व फ़ंड में जमा कर दिया जाता है। यह रुपया केवल रजिस्ट्रार की ही अनुमति से निश्चित कार्यों के लिये नियमानुसार व्यय किया जाता है।

अन्य कोआपरेटिव संस्थाएँ—किसानों के अतिरिक्त सरकारी कर्मचारी, मजदूर, व्यापारिक वर्ग आदि ने भी कोआपरेटिव संस्थायें हर जगह स्थापित की हैं। इनका भी उद्देश्य आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों या संस्थाओं को कम सूद पर नियमानुसार ऋण देकर सहायता पहुँचाना है। देश में उद्योग (Industry) की वृद्धि होने से मज़दूरों की बहुत बड़ी संख्या उत्पन्न हो गई है। कोआपरेटिव सोसाइटियों से इन्हें भी बहुत लाभ होता है। इसके द्वारा इन्हें अपनी आर्थिक स्थिति को सँभालने तथा उन्नति करने में बड़ी

सहायता मिलती है। इन सोसाइटियों की ज़िम्मेदारी प्रायः निश्चित रहती है।

इस प्रकार आजकल देश भर में अनेकों छोटी छोटी कोआपरेटिव संस्थाएँ खुल गई हैं। कुछ वर्ष पूर्व केवल ग़ैर एग्रिकल्चरल क्रेडिट सोसाइटियों की संख्या लगभग ४५०० थी। इनमें से लगभग ६५० खरीदने और बेचने के उद्देश्य से, लगभग १२०० पैदावारी तथा बेचने के उद्देश्य से और शेष अन्य कार्यों के लिये थीं। किसानों ने भी ऋण के अतिरिक्त पैदावार, बेचने, ख़रीदने आदि अन्य कार्यों के लिये अनेकों सोसाइटियाँ स्थापित कर ली हैं।

कोआपरेटिव आन्दोलन के सिद्धांत यद्यपि उत्तम है किन्तु भारत में इसका विशेष संतोषजनक परिणाम नहीं जान पड़ता। सरकार की ओर से इसे सफल बनाने के अनेकों प्रयत्न किये जा रहे हैं। देश भर में कोआपरेटिव सोसाइटियाँ फैली हुई हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में यह आन्दोलन अपने उच्च सिद्धांतों के समान सफलता भी प्राप्त कर लेगा।

ग्यारहवाँ अध्याय

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट

तहसील आदि के शासन करने के विधानों के सिवा कुछ ऐसी संस्थाएँ भी स्थापित की गई हैं जिनके सदस्य उसी स्थल के होते हैं जिन पर कि वे अनुशासन करती हैं, और जो निर्दिष्ट कामों का प्रबंध करती हैं। ऐसी संस्थाएँ हैं, म्यूनिसिपेलिटी, जिला बोर्ड, लोकल बोर्ड और ग्राम पंचायतें। इन सब संस्थाओं की गणना लोकल गवर्नमेंट के अन्दर की जाती है। पहले इन संस्थाओं का निरीक्षण ज़िला के अफ़सरों के हाथ में था और इनके सदस्यों में अधिकतर सरकार के नामज़द किए हुए सदस्य होते थे। पहले इनको लोकल गवर्नमेंट कहते थे किन्तु जब इनका प्रबन्ध जनता के चुने हुए ग़ैर सरकारी सदस्यों के हाथ में दे दिया गया और इनका संचालन और निरीक्षण ग़ैर सरकारी व्यक्तियों के सुपुर्द हो गया तब से इस विधान के लिए 'लोकल सेल्फ़-गवर्नमेन्ट' का प्रयोग होने लगा है।

स्थानीय शासन के लिए प्राचीन भारत में जनपद नागरिक समितियाँ और ग्राम संस्थाएँ आदि के होने का प्रमाण मिलता है और कभी कभी उनके संगठन एवं कार्यक्रम की झलक दिखाई देती है किन्तु उनका क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। इन्हीं संस्थाओं की बदौलत देश अनेक विप्लवों, राज्य परिवर्तनों और राजनीतिक अशान्ति को झेल ले गया। जब अँग्रेज़ भारत में आये उस समय ग्राम संस्थाओं में कुछ न कुछ जीवन संचरित था यद्यपि वे ग्राम के अधिकारियों के हाथ में पड़कर क्षीण सी हो गई थीं।

कम्पनी के राज्यत्व काल में इन संस्थाओं को पुनरुज्जीवित करने की कोई चेष्टा नहीं की गई। किन्तु उस समय कम्पनी अवश्य ही विलायती ढाँचे पर नगर शासन का कुछ संगठन करती रही। सुभीते के लिए हम इन संस्थाओं का वर्णन नागरिक शासन (Municipal Government) से ही आरम्भ करना उचित समझते हैं।

आजकल जिस प्रकार का संगठन म्युनिसिपैलिटियों का है उसका आरंभ सन् १६८७ से होता है। उस साल इंग्लैण्ड के राजा जेम्स द्वितीय ने मद्रास शहर में एक "कारपोरेशन" (नागरिक संघ) और एक "मेयर की कोर्ट" स्थापित करने का अधिकार दे दिया। तदनुसार वहां लन्दन की नागरिक सभा के ढंग पर एक संस्था क़ायम की गई जिसको नगर हाल, जेल, नाली और स्कूल बनाने के लिए टैक्स क़ायम करने का अधिकार दिया गया। इसके मुख्य पदाधिकारी मेयर, आल्डरमैन आदि थे। लोगों ने टैक्स देने का विरोध किया। इस संस्था की प्रार्थनानुसार उसको सड़कों की सफ़ाई के लिए कुछ वस्तुओं पर चुंगी वसूल करने का अधिकार मिला। सन् १७२६ में बंवई और कलकत्ता में भी मे"मेयर कोर्ट" मदरास के ढांचे पर क़ायम की गई। इस समय "मेयर" की अदालतों का अधिकतर न्याय करना ही कर्तव्य था।

सबसे पहले सन् १७९३ में गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया कि वे कलकत्ता, बंबई और मदरास में "जस्टिस आव् द पीस" (Justice of the peace) नियुक्त करें और जो कम्पनी के कर्मचारियों और यूरोपियनों में से लिए जायँ। न्याय करने के अलावा इन लोगों का यह भी कर्तव्य निश्चित हुआ कि वे सफ़ाई, नगर में पहरे, सड़कों की मरम्मत का प्रबंध करें। इन कामों के लिए उनको मकानों और ज़मीन पर कर लगाने का अधिकार दिया गया।

सन् १८४० और १८५७ के बीच में नागरिक संस्था का और भी विकास हुआ। इसमें चुनाव के सिद्धांत का भी सूत्रपात कर दिया गया

था किन्तु वह गड़बड़ हो गया। सन् १८६१ के पश्चात् प्रान्तिक सभाओं ने अपनी अपनी मति और आवश्यकताओं के अनुसार म्यूनिसिपल गवर्नमेंट का संगठन आरम्भ कर दिया। तब ही से प्रत्येक सूबे के नियमों मे विभिन्नता प्रकट होने लगी।

कलकत्ता, मद्रास और बंबई के अलावा म्यूनिसिपेलिटी क़ायम करने का अधिकार बंगाल को सन् १८४२ में ही मिला था किन्तु टैक्स के भय से लोगों ने उसे कहीं क़ायम न किया। अतएव सन् १८५० में एक एक्ट द्वारा सारे ब्रिटिश इन्डिया में म्यूनिसिपेलिटी क़ायम करने की आज्ञा दे दी गई और म्यूनिसिपेलिटी का अप्रत्यक्ष कर लगाने के भी कुछ अधिकार दे दिये गए। इससे N.W.P. (आगरा सूबा) और बंबई के सूबों ने लाभ उठाया; किन्तु मद्रास और बंगाल के सूबे अचल और निश्चेष्ट रहे। सन् १८६३ में जब सफ़ाई के कमीशन ने रिपोर्ट पेश की तब लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। फल यह हुआ कि सन् १८६४ से १८६८ के बीच में हर सूबे मे म्यूनिसिपेल्टियाँ सूबे की काउन्सिलों के आदेशानुसार शीघ्रता पूर्वक खुलने लगीं। इनके सदस्य म्यूनिसिपल कमिश्नर कहे जाते थे। म्यूनिसिपेलिटियाँ ज़िला के अफ़सरों के अधीन थीं। पंजाब और सी०पी० को छोड़ कर बाक़ी सब जगहों में प्रायः ये लोग नामज़द किये जाते थे। सी०पी० को इस बात का श्रेय है कि उसने पहले ही से चुनाव के ढँग का आश्रय लिया। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास नगरों में भी चुनाव का सिद्धान्त प्रचलित था।

सन् १८७० में लार्ड मेयो ने एक प्रस्ताव प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि "शिक्षा, सफ़ाई, स्थानीय इमारतों और सड़कों के सुधार, आर्थिक सहायता देने और अस्पताल आदि के लिए जो व्यय होता है उससे यथेष्ट लाभ उठाने के लिए स्थानीय देख रेख, उत्साह और सहानुभूति की आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये म्यूनिसिपेलिटियों में हिन्दुस्थानी और यूरोपियनों के सहयोग की पहले से अधिक

आवश्यकता है। उन संगठनों द्वारा सेल्फ़ गवर्नमेंट को भी उत्तेजना मिलेगी"। इस प्रस्ताव ने हिन्दुस्थानियों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने एवं चुनाव की परिपाटी का प्रचार करने की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया। तद्नुसार प्रत्येक सूबे में म्युनिसिपेलिटियों के कर्तव्य और अधिकार बढ़ाने और उनमें चुनाव का सिद्धांत प्रचलित करने के प्रयत्न होने लगे।

उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण आदेश लार्ड रिपिन ने सन् १८८२ में प्रकाशित किया। प्रस्ताव में उन्होंने यह कहा कि "लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट का ध्येय केवल स्थानिक प्रबन्ध को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाना ही नहीं है। उसका मुख्य आशय जनता को राजनैतिक और शासनिक शिक्षा प्राप्त करने के साधन और अवसर उपस्थित करना है। उसके द्वारा बढ़ते हुए शासन के भार में जनता हाथ बँटा सकेगी और गवर्नमेंट को जनता के अनुभव और शिक्षा से लाभ उठाने का अवसर भी प्राप्त होगा। इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करने का आदेश भी उन्होंने दिया जिसका फल यह हुआ कि सन् १८८३–८४ में हर सूबे में ऐक्ट पास हुए जिनसे चुनाव की प्रथा, म्यूनिसिपेल्टियों के अधिकार उनका उत्तरदायित्व आदि की वृद्धि होने लगी। यह लहर चलती रही यहाँ तक कि बाज़ स्थानों में तो सभापति अथवा उपसभापति के भी चुनाव का विधान हो गया। यही नहीं बल्कि शहरों की म्यूनिसिपेल्टियों के अलावा अन्य स्थानों के विशेषतः देहातों और ज़िले के प्रबन्ध के लिए भी संस्थाओं का स्थापन होने लगा। तदनुसार मदरास में एक या कुछ गाँवों के लिए 'यूनियन बोर्ड', उनके ऊपर "ताल्लुका बोर्ड" और उनके भी ऊपर "ज़िला बोर्ड" बनने लगा। सी०पी० ने भी मदरास का अनुकरण किया। बम्बई में यूनियन बोर्ड तो न बने किन्तु ताल्लुका बोर्ड और ज़िला बोर्डों का संगठन हुआ। बंगाल, पंजाब और सरहद्दी सूबे में ज़िला बोर्ड खोले गये। यू०पी० में ज़िला बोर्ड और उप-ज़िला बोर्ड (Sub-District Boards) स्थापित किये गये किन्तु १९०६ में उप-ज़िला बोर्ड तोड़ दिये गये। इन संस्थाओं में भी चुनाव के सिद्धांत प्रचलित किये

गये। इतना सब होने पर भी ज़िला बोर्ड का चेयरमैन (सभापति) प्राय: ज़िला का हाकिम ही होता रहा। बहुत सी म्यूनिसिपैलिटियों में भी वही चेयरमैन होता रहा। इसका फल यह हुआ कि ये संस्थाएँ भी एक प्रकार से सरकारी संस्थायें रहीं और इनमें पूरी ज़िम्मेदारी और स्वानुकूल शासन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो सकी। उनका कर्तव्य प्रायः चेयरमैन (ज़िला अफ़सर) की हाँ में हाँ मिलाना और अनुशासन शिरोधार्य करना रहा।

यह परिस्थिति न्यूनाधिक सन् १९०८–९ तक क़ायम रही किन्तु उसके बाद से डिसेन्ट्रलाइज़ेशन कमीशन की सम्मति के अनुसार ग़ैर सरकारी चेरमैन चुनने की प्रथा एवं चुने हुए सदस्यों की संख्या की वृद्धि कुछ शीघ्रता से होने लगी। सन् १९१८ में लार्ड चेम्सफर्ड ने इस बात पर ज़ोर दिया कि इन संस्थाओं में अधिकांश संख्या चुने हुए सदस्यों की ही हो। सदस्यों को चुननेवालों (वोटरों) की संख्या भी बढ़ा दी जाय। संस्थाओं के सदस्य ही स्वयं ग़ैर सरकारी चेरमैन चुना करें। संस्थाओं को अपनी ज़िम्मेवारी पर काम करने दिया जाय और सरकारी अफ़सर जहाँ तक बन पड़े उसमें हस्तक्षेप न करें। यद्यपि सन् १९०९ में डिसेन्ट्रलाइज़ेशन कमीशन ने और सन् १९१५ में गवर्नमेन्ट आव् इंडिया ने गाँवों को भी संगठित करने की अनुमति दी थी किन्तु उस पर कुछ विशेष कार्यवाही नहीं हुई। लार्ड चेम्सफर्ड ने फिर उस पर ज़ोर दिया।

मान्टेग्यू-चेम्सफर्ड सुधार के पास होने पर (१९१९) सूबे की व्यवस्थापिका सभाओं ने लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट की ओर विशेष ध्यान दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि यह विषय भी हस्तान्तरित (Transferred) विषयों में कर दिया गया और यह मिनिस्टर के सुपुर्द हुआ। प्रत्येक सूबे की व्यवस्थापिका सभा ने लार्ड चेम्सफर्ड की अनुमति के अनुसार क़ानून बना डाले और उन पर ज़ोर के साथ कार्यवाही होने लगी। अब लोकल संस्थाओं के अधिकार, उनकी ज़िम्मेदारी बढ़ा दी गई और सरकारी हाथ उनसे क़रीब क़रीब हटा लिया गया।

इस समय की परिस्थिति का सुबोध वर्णन करने के लिये यह उचित ज्ञान पड़ता है कि लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट के अन्तर्गत जो संस्थाएँ हैं उनका संगठन, अधिकार और कार्यक्रम अलाहदा अलाहदा वर्णन किया जाय। नीचे से देखते हुए ये संस्थाएँ ग्राम पंचायत, लोकल या तालुका बोर्ड, ज़िला बोर्ड, म्यूनिसिपेलिटी और कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के कारपोरेशन हैं।

(१) **ग्राम संस्थाएँ**—भारतवर्ष का लगभग $\frac{९}{१०}$ भाग ग्रामों में ही रहता है अतएव देश की वास्तविक उन्नति बिना ग्रामों की उन्नति के दु:साध्य है। यों भी शासन की जड़ ग्रामों में ही है। यद्यपि समय समय पर ग्रामों के संगठन की आवश्यकता पर कुछ अफ़सर ध्यान आकृष्ट करते रहे किन्तु विशेष प्रयत्न न किया गया। सन् १९०७ में जब रायल कमीशन आफ़ डिसेन्ट्रलाइज़ेशन (Royal Commission of Decentralization) ने इस विषय की जाँच करके अपनी रिपोर्ट में विशेष उल्लेख किया तब ग्रामों के संगठन का बाक़ायदा आरम्भ हुआ। कमीशन ने जो योजना रखी थी उसकी मुख्य बातें ये थी। पंचायत एक ग्राम की ही होनी चाहिए। ग्राम मुखिया ही उसका सभापति हो। उसके सदस्य ग्रामवासियों में से उन्हीं के द्वारा चुने जाने चाहिए। पंचायतों के अधिकार बड़ी सावधानी के साथ निर्धारित करना चाहिए। दीवानी (Civil) और फ़ौजदारी (Criminal) छोटे मामले उनके सुपुर्द किये जाने चाहिए। इसके अलावा सफ़ाई, स्कूल की इमारत की मरम्मत और छोटे सुधार के काम भी उन्हें दिये जायँ। उनके ख़र्च के लिए मालगुज़ारी का कुछ हिस्सा, माल के मुकद्दमों की फीस, काँजीहाउस की आमदनी, और कुछ विशेष सहायता देनी चाहिए। उनका नियंत्रण लोकल बोर्ड के सुपुर्द न करके ज़िला के अधिकारियों के सुपुर्द होना चाहिए। इन प्रस्तावों को गवर्नमेन्ट ने स्वीकृत कर लिया और उन पर कार्यवाही आरम्भ हो गई।

पंचायतों के पुनरुज्जीवित अथवा उनके संस्थापन में अनेक प्रकार की कठिनाइयां पड़ी। गाँवों में आपसी बैर और दलबन्दियाँ, काम चलाऊ योग्यता और न्याय प्रियता वाले व्यक्तियों की कमी, जात पाँत की विषमता, ज़मींदार की शक्ति और उसका प्रभाव आदि बातों के कारण उन्नति की प्रगति बहुत ढीली रही। इसके अलावा गाँव वाले किसी ऐसी संस्था से जिसके द्वारा किसी प्रकार के टेक्स बढ़ने की सम्भावना हो कोई सरोकार रखना नहीं चाहते। फिर भी सन् १९२७–२८ तक यू० पी० में ४५९४, बंगाल में २८७४ पंचायतें क़ायम हो गई। मद्रास, पंजाब में भी उन्नति हुई। किन्तु बम्बई सूबे में कई कारणों से यथेष्ट उन्नति न हो सकी। यू० पी० को छोड़ कर प्रायः हर जगह पंचायतों के सदस्य चुने (Elected) जाते हैं। मद्रास, बम्बई और आसाम में हर एक बालिग़ पुरुष और सी० पी० में सभी बालिग़ व्यक्ति चाहे पुरुष या स्त्री हो पंचायतों के चुनाव में वोट देने का अधिकारी है। वोट प्रायः हाथ उठा कर दी जाती है।

पंचायतों के कर्तव्य सब जगह एक से नहीं होते। किसी जगह कुछ कम और किसी जगह कुछ अधिक अधिकार आवश्यकता और पात्रता के अनुसार दे दिये जाते हैं। किन्तु मोटे तौर से उनका कर्तव्य कुओं और सफ़ाई, छोटी सड़कों, स्कूल की इमारतों और दवाख़ाना की देखरेख है। मद्रास में जंगल और सिंचाई भी उन्हीं के निरीक्षण में है। किन्हीं किन्हीं सूबों में छोटे छोटे दीवानी (Civil) और फौजदारी (Criminal) के मामले भी उन्हीं के सुपुर्द हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि पंचायतों के हाथ में जो काम हैं वे शासन के रक्षित (Reserved) और हस्तान्तरित (Transferred) विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। पंजाब की गवर्नमेन्ट ने जो पंचायत एक्ट बनाया है उसमें वहाँ की पंचायतों के संगठन, अधिकार, आमदनी आदि की पूरी व्यवस्था मिलती है। इसी प्रकार सी० पी० की गवर्नमेन्ट ने भी सन् १९२० में पंचायत एक्ट पास किया यहाँ पर उसी की मुख्य बातें संक्षेप में लिख देना उचित प्रतीत होता

है। ज़िला काउंसिल की सिफ़ारिश पर या गाँव के २० व्यक्तियों के अर्ज़ी देने पर डिप्टी कमिश्नर जाँच करने के बाद किसी गाँव में पंचायन स्थापित करने की आज्ञा देता है और उसके सदस्यों की संख्या निश्चित करता है जो प्राय: नौ से पन्द्रह तक होती है। इसमें गाँव का मुकद्दम (मुखिया) होता है और बाक़ी सदस्य उसी गाँव के रहनेवाले बालिग़ आदमियों में से (जिन पर क़ानूनी रोक नहीं हो)[1] चुने जाते हैं। ये भिन्न भिन्न जातियों से लिये जाते हैं ताकि किसी विशेष जाति का प्राधान्य न हो। ये ही अपने में से सरपंच चुनते हैं।

साधारणत: इन पंचायतों का कर्तव्य सफ़ाई, पानी की व्यवस्था, सराय, बूचड़ख़ाने आदि छोटी सड़कों की मरम्मत एवं सर्वोपयोगी कामों का प्रबन्ध करना है। इन कामों का निरीक्षण ज़िला काउंसिल करती है। इसके अलावा फौजदारी मामलों के लिए 'विलेज बेंच' और दीवानी के मामलों के लिए "विलेज कोर्ट" की स्थापना डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा से हो सकती है। इन अदालतों के सदस्य वहाँ के पंचों में से ही डिप्टी कमिश्नर नियुक्त कर देता है। इन अदालतों की निगरानी भी डिप्टी कमिश्नर करता है और उनके किये हुए फैसले भी रद्द कर सकता है और अधिकार भी कम कर सकता है। माल (Revenue) के अफ़सर को भी निगरानी रखने का अधिकार है। इन अदालतों में वकील पैरवी नहीं कर सकता।

'विलेज बेंच' के सामने छोटे मामले जैसे झगड़ा फसाद मार-पीट, ज़ुल्म, नशे में शरारत, औरत से छेड़-छाड़, गन्दे गीत गाना, बेइज़्ज़त करना

---

[1] पागल, सरकारी नौकर, सनदछिने वकील, बदचलनी के कारण बरख़ास्त, पंचायत के नौकर या ठेकेदार, छ: महीने के सजा याफ़्ता, इक्कीस वर्ष से कम, ब्रिटिश राज्य के बाहर की प्रजा होने से मनुष्य पंच नहीं चुना जा सकता।

या दस रुपये के मालियत की चोरी, बेतहाशा सवारी हाँकना जानवरों द्वारा जमीन, खेती या सड़कों को नुक़सान करना आदि फ़रियाद करने पर पेश होते हैं। बेंच प्रायः १०) तक और विशेष मामलों में २०) तक जुर्माना कर सकती है किन्तु क़ैद नहीं कर सकती।

विलेज कोर्ट को साधारणतः ५०) तक और सरकार से विशेष अधिकार मिलने पर १००) तक की मालियत के मामले ले सकती है।

उपर्युक्त कामों के करने के लिए पंचायतों को सरकार और ज़िला कौंसिल की आर्थिक सहायता कभी कभी मिलती है। किन्तु साधारणतः उनकी आमदनी फ़ौजदारी के मुक़द्दमों के जुर्माने, दीवानी के मुकद्दमों की फ़ीस एवं उन टैक्सें से होती है जिनके वसूल करने का उन्हें अधिकार हो।

(२) **जिला बोर्ड**—ऊपर लिखा जा चुका है कि लार्ड रिपन ने ज़िला बोर्ड आदि बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किया जिसके कारण प्रत्येक सूबे में कुछ न कुछ काम होने लगा। तब से दिनोंदिन यह काम बढ़ता ही गया। इस समय भारत में दो सौ के लगभग ज़िला बोर्ड हैं, ५३७ लोकल बोर्ड हैं।

लोकल बोर्ड, उप डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, और तालुका बोर्ड ज़िले के हल्के का काम देखता है जैसे कि ज़िला बोर्ड ज़िले का। सुभीते के लिए ज़िला कई हल्कों में बाँट दिया जाता है। ये संस्थायें प्रायः ज़िला बोर्ड के निरीक्षण में रहती हैं। अलबत्ता मद्रास में इनको कुछ स्वाधीनता प्राप्त है। अपने हल्के में प्रायः ये वे ही काम करती हैं जो ज़िला बोर्ड ज़िले में करता है। इनके अधिकांश सदस्य हल्के ही से चुने जाते हैं। कुछ सदस्यों को सरकार भी नामज़द करती है। सदस्यों की संख्या सरकार निर्धारित करती है। सदस्य लोग ही सभापति और उपसभापति को चुनते हैं जो प्रायः गैर सरकारी होते हैं। ज़िला बोर्ड की तरह इनका संगठन हर तीसरे वर्ष होता है। लोकल बोर्ड की अपनी आमदनी कोई नहीं होती। उनको

ज़िला बोर्ड देती है। ये बोर्ड ज़िला बोर्ड के एजेन्ट की तरह हैं अतएव इनके कर्तव्य हल्क़े के लिये वे ही होते हैं जो ज़िलाबोर्ड के। पंजाब और यू० पी० में इस प्रकार की संस्थाएँ नहीं हैं।

ज़िला बोर्ड लोकल बोर्ड के ऊपर ज़िला का कार्य करने के लिये होते है। कहीं कहीं इसको डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल भी कहते हैं। इनके सदस्य अधिकांश में लोकल बोर्डों के सदस्यों से चुने जाते हैं। कुछ ज़िले की जनता द्वारा और कुछ को सरकार नामज़द करती है। सदस्यों की संख्या सरकार निश्चित करती है। सदस्यों में से अधिकांश चुने हुए ही होते हैं। किन्तु चुननेवालों की संख्या यद्यपि समय समय पर बढ़ाई गई है किन्तु सन् १९३० तक वह जन संख्या का प्रतिशत ३·२ ही हुई। बम्बई और यू० पी० में डिस्ट्रिक्टबोर्ड के लिए एवं आसाम में लोकल बोर्ड के लिए मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि चुनने के अधिकार अलाहदा दे दिये गये हैं। अन्य सूबों में यह कमी वहाँ की सरकार नामज़द करके पूरा करती है। सभापति और उपसभापति का चुनाव सदस्य ही करते हैं। किन्तु पंजाबमें साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण जब तक कि बोर्ड स्वयं प्रार्थना नहीं करता तब तक ज़िले का हाकिम ही सभापति चुनता है।

ज़िला बोर्ड के प्रायः वे ही कर्तव्य ज़िले के लिए होते है जो म्यूनिसिपे-लिटियों के शहर के लिए। उनका कर्तव्य है कि गवर्नमेन्ट के अधीनस्थ सड़कों के अलावा अपने ज़िले में सड़कें बनवायें और उनकी मरम्मत करें: शिक्षा के विशेषतः प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार का प्रयत्न स्कूल आदि खोल कर और मास्टरों को ट्रेनिंग दे कर करें। मनुष्यों और जानवरों के लिए अस्पताल का प्रबन्ध करें, छूत के रोगों को फैलने से रोकें, सफाई का पानी निकालने के लिए नालों आदि का प्रबन्ध करें. दुर्भिक्ष निवारण के प्रयत्न करें: बाज़ारों. हाटों. मेलों, प्रदर्शनियों. विश्राम गृहों, घाटों, काँजीहाउसों आदि का प्रबन्ध और निरीक्षण करें; और पीने के पानी का भी सुभीता आदि करें। मद्रास प्रान्त में बोर्डों को छोटी रेलें निकालने

और प्रबन्ध करने का अधिकार है। तंजोर बोर्ड इस प्रकार की रेल १३८ मील तक चलाता है।

इन सब कामों के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को बहुत से कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता है। इसीलिए गवर्नमेन्ट इनको धन देती है और कर लेने के भी कुछ अधिकार दिये हैं। गवर्नमेन्ट की आज्ञानुसार बोर्ड स्कूलों में फ़ीस, विवाह की फ़ीस, मेलों, नुमाइशों आदि में कर, नदी, तालाब घाट, सड़क आदि पर महसूल, काँजीहाउस से प्राप्त जुर्माने, प्रत्येक घर पर टैक्स, आदि वसूल करती है। ज़िले की मालगुज़ारी में से फ़ी रुपया एक आना इसको मिलता है। ये साधन सब सूबों में एक से नहीं। कहीं कहीं कुछ हेर फेर भी रहता है। यह सब रुपया ज़िला बोर्ड के फ़ंड में रहता है। बोर्ड प्रतिवर्ष अपने आय-व्यय का चिट्ठा तैयार करता है जिसका निरीक्षण ज़िले का हाकिम करता है। बोर्ड की कार्यवाही निर्दिष्ट नियमों के अनुसार होती है। वह लिपिबद्ध कर ली जाती है और समय समय पर जनता को सूचित करने के लिए प्रकाशित कर दी जाती है। ज़िला का हाकिम और कमिश्नर भी बोर्ड के काम का निरीक्षण करते हैं। वह आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप भी कर सकता है। यदि भीषण गोल-माल हो तो सरकार बोर्ड को बदल कर उसके संचालन का भार अपने हाथ में ले सकती है। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। सरकार की यही नीति है कि वह इन संस्थाओं में जहाँ तक हो सके हस्तक्षेप न करे, केवल दूर से ही निरीक्षण करती रहे।

(३) **नगरों का प्रबन्ध** (Municipal Government)—नगरों का प्रबन्ध करने के लिए जो संस्थाएँ हैं वे सुभीते के लिए दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं। पहले में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के कारपोरेशन हैं। इनका संगठन और नगरों के संगठन से भिन्न और कुछ विशेषता रखता है। दूसरे में अन्य नगरों की म्यूनिसिपेलिटियाँ हैं।

सन् १८५६ में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के कारपोरेशन एक ही ढंग के थे किन्तु उसके बाद वे अपने अपने ढंग पर चलने लगे। इनमें सदस्यों की संख्या एक सी नहीं। बम्बई में १०६, कलकत्ता में ९८, और मद्रास में ६१ है जिनमें से बहुत बड़ा अंश चुने हुए सदस्यों का होता है। नामज़द किये हुए सदस्यों की संख्या बहुत कम है। चुनाव में भी नगर के रहनेवालों में से पाँच (मद्रास) से दस (बम्बई) प्रतिशत भाग लेते हैं। इन नगरों में विशेषता यह है कि चुनाव का अधिकार नगर के हल्कों (Wards) को ही नहीं किन्तु अन्य व्यापारिक आदि संस्थाओं को भी है। बम्बई में तो मज़दूरों की ओर से भी प्रतिनिधि चुने जाते हैं। इन नगरों में से सिर्फ़ कलकत्ता में मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि अलग चुनने का अधिकार है। कलकत्ते का कारपोरेशन अपना मेयर (सभापति) और एक्ज़िक्यूटिव आफ़िसर स्वयं चुनता है। मद्रास में एक्ज़िक्यूटिव अफ़सर की नियुक्ति सूबे की सरकार करती है। बम्बई में एक प्रकार का समझौता सा है कि उसका सभापति क्रमशः हिन्दू, मुसल्मान, यूरोपियन और पारसी हो।

कारपोरेशनों को अधिकार और उनको स्वतंत्रता अधिक मिली है। यद्यपि सूबे की सरकार ने अपने हाथ में कर्मचारियों की नियुक्ति, ठेकों का वितरण, हिसाब किताब की जाँच, और कर्ज़ लेने आदि के निरीक्षण का अधिकार अपने हाथ में रख लिया है किन्तु उसका प्रयोग बहुत आवश्यकता पड़ने पर ही करती है। कारपोरेशनों की आमदनी भी अच्छी है। कलकत्ता की दो करोड़ और बम्बई की तीन करोड़ है।

लार्ड मेयो और लार्ड रिपन के समय से म्युनिसिपेलिटियों की उन्नति शीघ्रता पूर्वक होने लगी। जिस स्थान की जन संख्या पाँच हज़ार से अधिक हो वहाँ म्यूनिसिपेल्टिटी सरकार की आज्ञा मिलने पर खोली जा सकती है। इस समय भारत में म्युनिसिपेलिटियों की संख्या पौने आठ सौ के लगभग है। इन के सदस्य अधिकतर नगरवासियों द्वारा चुने जाते हैं

किन्तु थोड़े से नामजद सदस्य भी होते हैं। बिहार उड़ीसा में जनता द्वारा चुने हुए सदस्य कुल संख्या के ४/५ और बंगाल में ३/४ हैं। और सूबों में इन्हीं दो अंकों के भीतर न्यूनाधिक होते हैं। ग्यारह में से दस म्युनिसिपैलिटियाँ स्वयं अपने चेयरमैन चुनती हैं। ऐसी थोड़ी ही सी हैं जिनका चेयरमैन नामजद या विशेष पदाधिकारी होता है। सदस्यों के चुनाव करने के नियम सूबे की सरकार बनाती है। इनमें साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा भी प्रचलित कर दी गई है। आजकल सदस्यों को चुननेवालों की संख्या बढ़ाने के उपाय किये जा रहे हैं। इस समय म्युनिसिपैलिटी के क्षेत्र में रहनेवालों में से सौ में केवल चौदह वोट देने के अधिकारी हैं।

म्युनिसिपैलिटी के सदस्य सभापति (चेयरमैन) और उपसभापति का चुनाव करते हैं।

म्यूनिसिपैलिटियों के मुख्य कर्तव्य हर जगह प्रायः एक से हैं। नगर की सड़कों और पुल आदि को बनवाना और मरम्मत करना, सड़कों पर रोशनी करना, म्युनिसिपैलिटी की इमारतें बनवाना और मरम्मत कराना रोगियों के लिए दवा-दारू में सहायता करना, टीका लगाने का प्रबन्ध, छूत के रोगों को फैलने से रोकने के उपाय, सफ़ाई रखने के लिए प्रयत्न, पीने के लिए स्वच्छ जल का प्रबन्ध, पेय और खाद्य पदार्थों की पवित्रता की रक्षा, प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए प्रबन्ध करना, पुस्तकालय वाचनालय, अजायब घर, नुमायश आदि खोल कर जनता के शिक्षा और विनोद के साधन उपस्थित करना, व्यायाम, खेल कूद, हवाखोरी और सैर के भी साधन संस्थाएँ, बगीचे, पार्क आदि बनवा कर उपस्थित करना और इसी प्रकार के अन्य कामों का करना म्यूनिसिपैलिटी के कर्तव्य हैं। शहर के अन्दर दुकानें, मकान आदि बिना म्युनिसिपैलिटी की आज्ञा के नहीं बनाये जा सकते।

उपर्युक्त कामों में काफ़ी धन और अनेक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। अतएव सरकार ने म्यूनिसिपैलिटियों को कुछ साधन निश्चित

कर दिये हैं जिनसे उनको धन प्राप्त होता है। वे घरों, ज़मीन, बाजारों, व्यापारियों, रोज़गार-धन्धों, विनोदागारों, और आने जाने के साधनों पर कर लगा सकते हैं। इनके अलावा उनको पीने के पानी देने, चुंगी, मल मूत्रादि हटाने का ठेका आदि देने में भी अच्छी आमदनी हो जाती है। शिक्षा आदि की सुविधा प्रदान करने के लिए भी वे विशेष टैक्स लगा सकते हैं। सब मिला कर भारत में म्यूनिसिपेल्टियों और कारपोरेशनों की आमदनी चौदह करोड़ से अधिक है जिसका अधिकांश टैक्स से आता है। म्यूनिसिपेलिटी का ख़र्च सिर्फ़ अपनी आमदनी से पूरा नहीं चलता इसलिए सरकार भी उनके सूबे की आमदनी से अत्यावश्यक अथवा भारी कामों के लिए आर्थिक सहायता अथवा कर्ज़ देती है। कभी कभी कारपोरेशन और म्यूनिसिपेलिटी खुद जनता, व्यक्ति अथवा संस्था से भी कर्ज़ ले लेती हैं।

डिस्ट्रिक्टबोर्ड, व कारपोरेशन की तरह म्यूनिसिपेल्टिी कार्य-संचालन के लिए अपनी छोटी छोटी कमेटियाँ बना लेती है। इन कमेटियों के सदस्यों की संख्या थोड़ी होती है। हर एक कमेटी का चेयरमैन भी चुन देती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, बाज़ार, इमारतों, ज़मीन, चुंगी, आर्थिक विषयों आदि के लिए प्रायः ऐसी कमेटियाँ बना ली जाती हैं। उनकी कोई संख्या निश्चित नहीं है। जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ती है वहाँ वैसी कमेटी बना ली जाती है।

म्यूनिसिपेल्टियों आदि का चुनाव प्रायः तीन वर्ष के बाद होता है। सभापति उपसभापति और सदस्य आते जाते रहते हैं। इसलिए कार्य-संचालन के लिए स्थायी कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। बिना कारण विशेष के स्थायी कर्मचारियों को वे बरख़ास्त नहीं करतीं और सरकार भी इस बात की निगरानी रखती है कि वे ईर्ष्या, द्वेष अथवा लोभ वश ऐसा न करने पावें। कहीं कहीं स्थायी कर्मचारियों की नियुक्ति भी निर्दिष्ट काल के लिए की जाती है। कहीं कहीं उनकी नियुक्ति में सर-

कारी आज्ञा प्राप्त करने का भी विधान है। किन्तु सरकार की नीति है कि जब तक अधिकार का विशेष दुरुपयोग न हो तब तक वह उन्हें अपने मतानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता दे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन संस्थाओं में काम बहुमत से और निर्दिष्ट विधि के अनुसार होता है । चेयरमैन का कर्तव्य है कि वह देखता रहे कि काम क़ानून के अनुसार होता है या नहीं । यदि कहीं गोलमाल हो तो वह रोक सकता है।

म्युनिसिपैलिटियों का निरीक्षण सरकार दूर से करती रहती है। उनके आय व्यय, कार्यों की देख भाल कर सकती है, उचित परामर्श दे सकती और घोर आवश्यकता पड़ने पर उनमें रद्द बदल कर सकती है। कुछ कामों में कलक्टर आदि की आज्ञा या मंजूरी लेना भी म्यूनिसिपैलिटियों के लिए आवश्यक है। यदि लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट की संस्थाएँ अपने अधिकारों का स्पष्ट दुरुपयोग करें तो सरकार उनसे प्रबन्ध छीन कर अपने हाथ में ले सकती है और जब उचित समझे फिर वापस कर सकती है।

नगरों के सुधार के लिए म्यूनिसिपैलिटियों के अलावा बड़े शहरों में इम्प्रूवमेन्टट्रस्ट भी स्थापित कर दिये गये है। ये म्यूनिसिपैलिटी से स्वतंत्र किन्तु सरकार की निरीक्षणता में शहर की रचना में सुधार करते हैं। इनके सदस्य और पदाधिकारी प्रायः गवर्नमेन्ट ही नियुक्त करती है। ये अपनी योजनाएँ गवर्नमेंट के सम्मुख पेश करते हैं और उससे आज्ञा लेकर उनको कार्यरूप में परिणत करते हैं। इनके द्वारा बड़े शहरों की शोभा, स्वास्थ्य और रचना में उन्नति हो रही है।

जहाँ पाँच हज़ार से कम जन संख्या होती है और आवश्यकता या उत्साह प्रतीत होता है उस बस्ती को सरकार नोटिफाइड एरिया (Notified Area) घोषित कर देती है । अपने परिमित क्षेत्र में वे न्यूनाधिक वे ही काम करती हैं जो म्यूनिसिपैलिटियों के होते हैं। उनका कार्यक्षेत्र और अधिकार भी कुछ कम होते है ।

बारहवाँ अध्याय

देशी रियासतें

भारत के मानचित्र देखने से यह स्पष्ट ज्ञात पड़ता है कि इसका बहुत सा भाग आज दिन भी ब्रिटिश इण्डिया से बाहर है जहां राजे और नवाब अपने अपने ढंग से राज्य करते हैं। रजवाड़ों के अधिकार में भारत-भूमि का २/५ अथवा लगभग आधा हिस्सा है इसमें लगभग आठ करोड़ के प्रजा रहती है। "देशी रियासत" शब्द से कानूनी दृष्टि से देश का वह विभाग माना जाता है जहां पर कि भारत सरकार स्वयं शासन नहीं करती और जहां शासन करने का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति अथवा संस्था को है। ब्रिटिश इण्डिया में पार्लमेन्ट प्रदत्त क़ानूनों के अनुसार शासन होता है किन्तु देशी रियासत में वहां के राजा के बनाये कानून चलते हैं।

यद्यपि रजवाड़े के अन्दर राजा के अधिकार बहुत हैं और एक प्रकार से वहां वह स्वतंत्र है किन्तु यह नहीं कहा जाता कि वह पूर्ण रूप से अथवा वस्तुतः स्वतंत्र है। इसका कारण यह है कि इसमें पूर्ण स्वतंत्रता के कई लक्षणों का अभाव है। उसको अन्य रियासतों या राज्यों से सन्धि अथवा विग्रह करने का या युद्ध छेड़ देने का अधिकार नहीं है। वह अपनी सैनिक शक्ति अपनी इच्छानुकूल नहीं बढ़ा सकता। किन्हीं दशाओं में उनके कामों की निगरानी ब्रिटिश सरकार करती है और आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप ही नहीं वरन् शासन को भी अपने हाथ में ले सकती है। इन्हीं कारणों से देशी रियासतों अथवा राजाओं का पूर्ण 'स्वामित्व' नहीं

माना जा सकता। उनकी स्वतंत्रता संकुचित अर्थ में ही मानी जानी चाहिए।

छोटी बड़ी मिला कर देशी रियासतों की संख्या ५६२ है। इनमें से आजकल १०८ बड़ी और बाक़ी छोटी मानी जाती हैं। आमदनी की दृष्टि से हैदराबाद, मैसूर, ग्वालियर, बड़ोदा, ट्रावंकोर, काश्मीर, इन्दौर, जयपुर क्रमानुसार बड़ी रियासतें हैं। कुल रियासतों में से २३५ ऐसी हैं जिनका विशेष सम्मान करने के लिए सरकार तोपों की सलामी देती है। ऐसी रियासतों को "सलामी रियासत (Salute States) कहते हैं। बाकी बची हुई रियासतों का इस प्रकार विशेष सम्मान नहीं होता।

देशी रियासतों का सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार के साथ एक ही साथ नहीं हुआ अतएव उनकी सन्धि, सनद और सम्बन्ध भी एक ही ढंग के नहीं हैं। इन सम्बन्धों के समझने के लिए ब्रिटिश राज्य के इतिहास का कुछ ज्ञान आवश्यक है। ब्रिटिश सरकार अपने उत्थान काल से प्रौढ़ता काल तक पहुँचने में विभिन्न परिस्थितियों से गुज़री। जिस परिस्थिति में जिन रियासतों से उसका सम्बन्ध जुड़ गया उसकी छाप उस सम्बन्ध पर पड़ गई। इसी कारण से ब्रिटिश सरकार और देशी रियासतों के सम्बन्ध विविध प्रकार के दिखाई पड़ते हैं।

उपर्युक्त कथन को संक्षिप्त उदाहरण देकर स्पष्ट करना अनुचित न होगा। पाठक उस समय की कल्पना करें जब कि कम्पनी की शक्ति मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में ही परिमित थी। उस समय देशी रियासतें प्राय: स्वतंत्र थीं। उस समय कम्पनी का व्यवहार स्वतंत्र रियासतों से था। अतएव उस समय की सन्धियों और सम्बन्धों में देशी रियासतों की स्वतंत्रता का सिक्का अच्छी तरह जमा दिखाई पड़ता है। यद्यपि प्लासी (१७५७) और बक्सर के युद्ध (१७६४) के पश्चात् कम्पनी की नीति, शक्ति और परिस्थिति में परिवर्तन होने लगा था किन्तु वेलज़ली के समय तक प्राय: देशी रजवाड़ों के मामलों में यथा संभव किसी भाँति के हस्तक्षेप

करने की नीति कम्पनी की न थी। इस समय कम्पनी का सम्बन्ध रियासतों के साथ बराबरी का था। इस काल की रियासतों में हैदराबाद ट्रावंकोर, मैसूर और बड़ोदा प्रमुख और अभी तक जीवित हैं

किन्तु जब लार्ड वेलज़ली आये तब उन्होंने सहायक प्रथा (Subsidiary Alliance) की नई तरकीब निकाली जिससे अनेक रियासतों को उन्होंने धीरे धीरे इस बात पर मजबूर करना शुरू किया कि वे कम्पनी की सेना अपने राज्य में रखें, किसी योरोपियन को राज्य में राजनैतिक या सैनिक काम के लिए घुसने न दें और दूसरे रजवाड़ों के साथ कम्पनी की सरकार द्वारा ही व्यवहार करें। इसके समय से देशी रियासतों की स्वतंत्रता में बन्धन लग गये और ब्रिटिश सरकार के आधिपत्य का युग आरंभ हो गया। इस समय की सन्धियों में अन्तर्राष्ट्रीय इसी सिद्धान्त की छाप दिखाई पड़ती है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कुछ निर्दिष्ट मामलों को छोड़ कर देशी रजवाड़ों के आन्तरिक शासन आदि में हस्तक्षेप करने का उसका ध्येय था।

लार्ड हेस्टिंग्स के शासन-काल में एक नई व्यवस्था दिखाई पड़ने लगी। सन् १८१३ के बाद कम्पनी की हस्तक्षेप न करनेवाली नीति में स्पष्टतया परिवर्तन होने लगा। इस समय परिस्थिति भी बदल गई थी। शाह आलम जिसे क्लाइव ने सम्राट् माना था मर चुका था (१८०३) और कम्पनी अब अपने ऊपर किसी भारतीय व्यक्ति अथवा संस्था को मानने के लिए तैयार न थी। यही नहीं सन् १८१३ में पेशवाई का एक प्रकार से अन्त हो गया। अभी तक पेशवा मराठों का अधिपति था किन्तु अब उसके न रहने से मराठे नेता स्वतंत्र हो गये थे। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेज़ ही सबसे प्रबल थे। देश की राजनैतिक उथल-पुथल और मराठे, पिंडारी आदि लोगों की निरंकुशता और लूट-मार से व्याकुल होकर कमज़ोर रियासतें अँग्रेज़ी सरकार की शरण लेने पर बाधित हुईं। अतएव इस समय की सन्धियों में अँग्रेज़ों के आधिपत्य का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

यह भविष्य में बढ़ता गया। इस काल की रियासतों में राजपूताना, सेंट्रल इण्डिया और काठियावाड़ की अधिकांश रियासतों के अलावा ग्वालियर, इन्दौर, कोल्हापुर आदि थीं। सतलज के पूर्व की पंजाबी रियासतें भी इसी समय की है।

जब लार्ड डलहौज़ी आये तब उन्होंने उस भाव को जो धीरे धीरे बढ़ रहा था स्पष्ट कर दिया कि कम्पनी का कर्तव्य है कि वह देशी राज्यों की प्रजा की अत्याचार और अनाचार से रक्षा करे और उनको भी वेही लाभ सुलभ करने की चेष्टा करे जो कि कम्पनी की प्रजा को प्राप्त हैं। इस शुभ कार्य के संपादन में यदि सरकार को अधिक हस्तक्षेप अथवा देशी शासन के उलट देने की भी आवश्यकता पड़े तो अपना कर्तव्य समझ कर वह उससे विचलित न हो। इस समय के संबंधों में इसी सिद्धांत की छटा दिखाई देती है। इस सिद्धांत से रजवाड़े काँप उठे।

डलहौज़ी के बाद ग़दर हुआ। यद्यपि कई रजवाड़ों ने सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाये किन्तु अधिकांश रजवाड़ों ने सरकार की सहायता की। ग़दर शान्त होने पर महाराणी की सान्त्वनादायिनी घोषणा हुई जिसमें एक तो यह बात स्पष्ट हो गई कि ब्रिटन की मुकुटधारिणी (सम्राज्ञी) भारत के स्वामित्व की मूर्ति और प्रमुख शक्ति है और आधिपतित्व उसका ही है। सब रजवाड़ों पर उसी का छत्र है। दूसरी बात यह स्पष्ट हुई कि सम्राज्ञी की नीति है कि वह रियासतें न छीनेगी और राजाओं के स्वत्वों और मान-मर्यादा का आदर करेगी। किन्तु इन्हीं बातों के साथ यह भी आपने घोषित किया कि वे उन सन्धियों और सम्बन्धों का जो कि कम्पनी ने देशी राज्यों के साथ कर लिये है रक्षा और आदर करेंगी।

सारांश यह कि ग़दर के पहले कम्पनी का जिस रजवाड़े से जैसा सम्बन्ध था वैसा ही क़ायम रहा। नई बात केवल इतनी हुई कि नई सरकार ने अपने आधिपतित्व और स्वामित्व की घोषणा करते हुए रियासत छीनने वाली नीति का परित्याग करने का वचन दे दिया। ग़दर के बाद से गवर्नमेंट

और देशी रियासतों में पारस्परिक सहयोग का भाव बढ़ता गया जिसमें आगे चलकर दोनों को लाभ हुआ।

उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकालना न चाहिए कि एक काल में जो सन्धियाँ की गई अथवा सम्बन्ध जोड़े गये वे सब एक ही से थे। यद्यपि मोटे तौर पर यह ठीक है किन्तु प्रत्येक रियासत की परिस्थिति और शक्ति का विचार करके सन्धियों और शर्तों में अनेक भेद भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए ग्वालियर, इन्दौर और नेपाल से प्रायः एक ही काल में सन्धियाँ की गईं किन्तु उनकी शर्तों में बड़ा भेद पाया जाता है। लगभग चालीस रियासतें हैं जिनका ब्रिटिश सरकार के साथ संबन्ध सन्धियों (Treaties) के द्वारा स्थापित है। ये रियासतें बड़ी हैं। अधिकांश रियासतों का सम्बन्ध उन सनदों पर अवलम्बित है जो सरकार ने उनको दी हैं। इनमें सरकार का आधिपत्य स्वतः सिद्ध है। बाकी रियासतों का अस्तित्व सरकार ने किसी न किसी रूप से स्वीकृत कर लिया है।

देशी रियासतें, क्षेत्रफल और जन संख्या की दृष्टि से भी अनेक आकार और प्रकार की हैं। कोई रियासत जैसे हैदराबाद इतनी बड़ी है जितना कि ग्रेटब्रिटेन और उसकी जनसंख्या भी पुर्तगाल अथवा आस्ट्रिया की जनसंख्या से दूनी है। उसकी आमदनी साढ़े छः करोड़ साल है। किन्तु कोई रियासतें बहुत छोटी हैं जिनका क्षेत्रफल कुछ ही मीलों का ही नहीं वरन् कुछ एकड़ों का ही है। उदाहरण के लिए राजपूताना की लावा रियासत जिसका क्षेत्रफल उन्नीस वर्ग मील का ही है। काठियावाड़ में इससे भी छोटी रियासतें हैं। गुजरात और काठियावाड में छोटी रियासतें बहुत हैं। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि उन दो प्रान्तों से ही ५६२ रियासतों में से २८६ हैं। इतनी छोटी रियासतों के होने का मुख्य कारण सरकार की नीति थी। बड़ी रियासतों द्वारा हड़प करने से बचाने के लिए उसने उनको अपनी ओर से निर्भय दान और स्थिरता प्रदान कर दी।

जिस प्रकार आर्थिक और भौमिक असमानता रियासतों में है उसी प्रकार शासन की भी विभिन्नता है। रियासतों का शासन भिन्न श्रेणियों और अवस्थाओं का है। कहीं कहीं पर तो वही, पुराना ढँग चल रहा है जो भारत के इतिहास के मध्य काल में था। और कहीं आधुनिक शासन-विधान का विकसित रूप दिखाई देता है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार के निरीक्षण, शिक्षा के प्रचार, देश में राजनैतिक जाग्रति, प्रेस और आवागमन की सुलभता के प्रभाव से देशी रजवाड़ों में सुधार और उन्नति हो रही है। इस समय भी तीस रियासतों ने व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित कर दी हैं यद्यपि इनके अधिकार अधिकांश में परामर्श देने का ही है। चालीस रियासतों ने हाईकोर्ट क़ायम कर दिये हैं। चौंतीस ने न्याय और शासन विभागों को अलहदा अलहदा कर दिया है। इसी प्रकार शिक्षा, आर्थिक संगठन आदि बातों में उन्होंने ब्रिटिश परिपाटी का अनुकरण करना आरंभ कर दिया है। किन्हीं किन्हीं बातों में जैसे शिक्षा और सामाजिक सुधार में एक दो रियासतें तो ब्रिटिश इंडिया से भी आगे बढ़ गई हैं।

रियासतों की प्रजा और वहाँ के राजा का धर्म भी कहीं कहीं भिन्न है। उदाहरण के लिए काश्मीर को लीजिए। वहाँ का राजा हिन्दू धर्म का अनुयायी है किन्तु वहाँ की प्रजा अधिकांश में मुसलमान है। अब यदि हैदराबाद को लीजिए तो वहाँ का निज़ाम मुसलमान किन्तु प्रजा अधिकांश हिन्दू धर्मावलंबी है। इस विभिन्नता के कारण समय समय पर कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं किन्तु वे अभी तक दुस्तर नहीं प्रतीत हुई।

अपनी रियासत के भीतरी मामलों का नियंत्रण और संचालन करने का अधिकार वहाँ के अधीश (राजा) को है। प्रत्येक रियासत अपने उपयुक्त क़ानून बनाती और उन्हें चालू करती है। वह खुद मालगुज़ारी और कर निश्चित करती और अपनी आमदनी को अपनी इच्छानुकूल व्यय करती, अपने राज्य के अन्दर पुलिस आदि शान्ति स्थापन के प्रबन्ध करती है और प्रजा तथा रियासत की उन्नति के साधन पैदा करती है। अनेक

रियासतें ताँबे के सिक्के ढालती हैं और किसी अवसर विशेष पर चाँदी या सोने के भी ढाल सकती हैं। चाँदी के सिक्कों को साधारणतया ढालने का अधिकार भी कुछ रियासतों को प्राप्त है।

बड़ी रियासतों में प्रायः ब्रिटिश सरकार का रेज़ीडेन्ट रहता है। बाज़ रियासतें एजेन्ट की निगरानी में होती हैं। कुछ रियासतों का सम्बन्ध सूबे की सरकार से होता है। जो रियासतें बहुत छोटी हैं उनकी निगरानी चीफ़ कमिश्नर, कमिश्नर और कलक्टर तक के सुपुर्द होती है। रियासतों में सबसे प्रमुख नेपाल है। यद्यपि बाहरी राज्यों से इसका स्वतंत्र संबंध नहीं हो सकता; और उसे यह अधिकार ब्रिटिश सरकार के द्वारा ही करना पड़ता है, किन्तु अन्य बातों में वह पूर्ण स्वतंत्र है। दूसरी विशेषता यह है कि इस राज्य में ब्रिटिश सरकार की ओर से राजदूत (Envoy) रहता है। नेपाल की ओर से भी देहली और ल्हासा में प्रतिनिधि रहते हैं। उससे चीन की भी मित्रता स्वीकृत है। नेपाल के बाद हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा और काश्मीर चार बड़ी रियासतें हैं। इनका सम्बन्ध नेपाल के समान स्वतंत्र तो नहीं किन्तु अन्य देशी रियासतों की अपेक्षा अधिक है। इनमें से प्रत्येक में एक रेज़ीडेन्ट भारत सरकार की ओर से निरीक्षण के लिए रहता है। ये रियासतें सीधे भारत की सरकार से व्यवहार करती हैं। कुछ रियासतें हैं जिनको निरीक्षणार्थ सरकार ने एजेन्सियों में संगठित कर दिया है। (१) 'राजपूताना एजेन्सी' के अंतर्गत अनेक रियासतें हैं जिनमें उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, धौलपुर, भरतपुर, अलवर, बूँदी, कोटा, झालावाड़ आदि मुख्य हैं। इस एजेन्सी की रियासतों में से उदयपुर और जयपुर में रेज़ीडेन्ट रहते हैं। शेष रियासतें चार श्रेणियों में विभक्त हैं—पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और टोंक और हडौती। चारों में एक एक पोलिटिकल एजेन्ट रहता है। राजपूताना एजेंसी का मुख्य निरीक्षक गवर्नर जनरल का प्रतिनिधि (Agent to Governor General) होता है। (२)

दूसरी एजेन्सी मध्य भारत की है (Central India Agency) जिसके अन्तर्गत इन्दौर, भूपाल, ग्वालियर, रीवाँ, ओरछा, दतिया, धार आदि रियासतें हैं। इनमें से ग्वालियर में तो रेज़ीडेन्ट रहता है, किन्तु भूपाल, बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड में एक एक पोलिटिकल एजेन्ट है। समस्त एजेन्सी का निरीक्षण Agent to Governor General करता है। (३) तीसरी एजेन्सी पश्चिमी भारत की है जिसका निर्माण सन् १९२४ में किया गया। इससे पहले ये रियासतें बम्बई की सरकार के निरीक्षण में थीं। इस एजेंसी की मुख्य रियासतें भावलनगर, गोडल, जूनागढ़, राधनपुर, कच्छ, ध्रागध्रा, नवानगर आदि हैं। इनका निरीक्षण Resident of the First Class and Agent to the Governor General in the States of Western India करता है। इसके अलावा वहाँ एक जुडीशियल कमिश्नर भी है।

पश्चिमोत्तर प्रदेशों के लिए भी दो एजेंन्सियाँ हैं। बलूचिस्तान एजेन्सी जिनमें क़लात और उसकी करद छोटी रियासत लसबेल है। इसका निरीक्षण गवर्नर जनरल का एजेन्ट करता है। (२) इसी प्रकार पश्चिमोत्तर प्रान्त की तीन रियासतें दीर, चित्राल और अम्ब एक श्रेणी में करके एक पोलिटिकल एजेन्ट के निरीक्षण में रख दी गई ह। मद्रास सूवे के अन्तर्गत केवल पाँच रियासतें हैं। जिनमें ट्रावंकोर सबसे बड़ी और कोचीन और पट्टुकोटूइ गणनीय हैं। इनमें से भारत सरकार की ओर से सन् १९२३ मे Agent to the Governor General और कहीं कहीं Assistant Agent to G. G. नियुक्त हैं। इसी प्रकार पंजाब की तेरह रियासतें जैसे पटियाला, बहावलपुर, नाभा, फरीदकोट, कपूरथला, झींद, मालेरकोटला और मंडी भी एक पोलिटिकल एजेन्ट के निरीक्षण में कर दी गई है।

उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त अन्य जो रियासतें हैं वे अपने अपने प्रान्त की सरकार के द्वारा निरीक्षित होती हैं। इस विषय में प्रान्त की सरकार

ही गवर्नर जनरल की ओर से प्रतिनिधि मान ली गई है। गवर्नर की अध्यक्षता में यू०पी० में रामपुर, बनारस और टिहरी; बिहार-उड़ीसा में सन्थाल परगने में खरसवाँ आदि और उड़ीसा की २४ रियासतों में मयूर भंज आदि हैं। इनका निरीक्षक Political Agent and Commissioner कहलाता है। बंगाल में कूच बिहार और त्रिपुर हैं। इनका निरीक्षक रीजन्सी और त्रिपुर का कलक्टर है। सी० पी० में १५ करद रियासतें हैं, जिनमें राजनांद गाँव, बस्तर और सरगुजा, रायगढ़ और खैरागढ़ मुख्य हैं।

बम्बई सूबे में रियासतों की संख्या सबसे अधिक है। वहाँ १५१ रियासतें हैं। रियासतों के सम्बन्ध भी सरकार के साथ अनेक प्रकार के हैं। इतनी अधिक संख्या होने के कारण वहाँ चौदह एजेन्सियाँ क़ायम कर दी गईं हैं जिनके द्वारा सूबे की सरकार रियासतों से व्यवहार करती है। प्रत्येक एजेन्सी में एक पोलिटिकल एजेन्ट है। केवल कोल्हापुर के एजेन्ट को रज़ीडेन्ट की उपाधि है। बम्बई की मुख्य रियासतें कोल्हापुर, खेरपुर, राजपिपला, ईडर, साँगली, धरमपुर, छोटा उदयपुर इत्यादि हैं।

आसाम में मनीपुर प्रमुख रियासत है। यों तो खासी और जयन्तिया की पहाड़ियों में छोटी छोटी पचीस रियासतें हैं। इसी प्रकार बर्मा में उत्तरी शान की छः और दक्षिणी शान की ३२ रियासतें है। सन् १९२० में सूबे के लफ़्टनेन्ट गवर्नर सर रेजिनल्ड क्रेडाक की प्रेरणा से इन्होंने आपस में मिलकर एक प्रकार का फेडरेशन (Federation) स्थापित कर लिया। उस समय से सरकार का फेडरेशन और रियासतों से व्यवहार भी नये ढँग का निर्धारित हुआ।

रेज़ीडेन्ट, पोलिटिकल एजेन्ट अथवा कमिश्नर आदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों का मुख्य कर्तव्य देशी रियासतों को परामर्श देना है। इसके अलावा वे रियासतों की ज्ञातव्य बातों की रिपोर्ट भी ग० सरकार को भेजते हैं। इन्हीं अफ़सरों के द्वारा रियासतों का सरकार से व्यवहार होता है। इन्हीं के द्वारा सरकार रियासतों की निगरानी करती है।

यद्यपि रियासत की प्रजा वहाँ के शासन के अधीन है और वहाँ का ही क़ानून उन पर लागू होता है किन्तु गवर्नमेंट इस बात को देखती रहती है कि उनपर घोर अन्याय अथवा अत्याचार तो नहीं होता। अन्याय और अत्याचार पाशविक दण्ड विधान, अथवा घोर अशान्ति या कुप्रबन्ध होने पर गवर्नमेंट हस्तक्षेप करती है। ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो गई हैं जिनमें गवर्नमेंट ने या तो चेतावनी दी, या शासन राजा के हाथ से कुछ समय के लिए ले लिया। कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि राजा को गद्दी से हटा दिया और उसके स्थान में दूसरा गद्दी पर बैठा दिया। यदि राजा नाबालिग़ है तो भी जब तक वह बालिग़ न हो जाय तब तक गवर्नमेंट शासन का प्रबन्ध करती है। यदि देशी रियासत में किसी दूसरे देश का निवासी चला जाय तो उसकी भी रक्षा करने एवं उसके प्रति न्याय करने की ज़िम्मेदारी गवर्नमेंट की ही है। रियासतों में जहाँ पर ऐसी बस्तियाँ, रेज़ीडेन्सी अथवा छावनियाँ है जिनमें अँग्रेज़ यूरोपियन आदि रहते हैं वहाँ गवर्नमेन्ट अपना अधिकार रखती और क़ानून चलाती है—जैसे बंगलोर, सिकन्दराबाद, मऊ आदि। इसी प्रकार प्रायः जिस भूमिभाग से रेल होकर गुज़रती है वहाँ रेल की पटरियों, स्टेशनों आदि के पास के स्थानों पर गवर्नमेन्ट अपना क़ानून चलाती है। इसी प्रकार यदि किसी देशी रियासत का निवासी भारत में आये अथवा भारत से बाहर जाय तो उसकी भी रक्षा का भार गवर्नमेन्ट के ही ऊपर है। भारत से बाहर जाने के लिए देशी रियासत के निवासी को गवर्नमेन्ट से ही पासपोर्ट लेना पड़ता है। यह कहा जा चुका है कि देशी रियासतें किसी अन्य रियासतों या बाहरी राज्यों के साथ राजनैतिक अथवा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती हैं। अतएव यदि कोई रियासत किसी प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध अथवा शर्तें बाहरी रियासत से करना चाहे तो उसको गवर्नमेन्ट से आज्ञा लेनी पड़ती है और जिस हद्द तक गवर्नमेन्ट आज्ञा दे उसी हद्द तक वह सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। इसी प्रकार राज्यों की सीमाओं को

स्थिर करना, रेल आदि निकालने, नहर निकालने मुल्ज़िमों को पकड़ने आदि में जब एक रियासत का दूसरी रियासत से काम पड़ता है तब गवर्नमेन्ट के निश्चित विधान के अनुसार कार्यवाही हो सकती है। इस प्रकार से तथा अपने रोब दाब से गवर्नमेन्ट देशी रियासतों पर अपना प्रभाव डालती रहती है। रियासतों को भीतरी और बाहरी संकटों से बचाने का भार गवर्नमेन्ट के ही ऊपर है अतएव उसको सचेत रहने और आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप करने का अधिकार अपने हाथ में रखना अनिवार्य सा है।

देशी रियासतों को सरकार से और प्रकार की भी सहायता मिलती रहती है। देशी रियासतों की एकता और स्थिरता क़ायम रखने के लिए यह नियम गवर्नमेन्ट ने रखा है कि वह उत्तराधिकारियों में राज्य का बँटवारा होने नहीं देती। राज्य के हक़दारों के झगड़ों का निर्णय सरकार वहाँ के क़ानून और व्यवहारों के अनुकूल करके एक के ही हाथ में राज्य भार सुपुर्द कर देती है। यदि उनको आवश्यकता पड़ती है तो गवर्नमेन्ट अपने कुशल और विश्वस्त कर्मचारियों को वहाँ प्रबंध करने के लिए उधार दे देती है। गवर्नमेन्ट द्वारा देश में शान्ति, अन्य राज्यों से सम्बन्ध स्थिर करने, व्यापार की उन्नति करने से जो लाभ होते हैं उनसे भी देशी रियासतों का अनेक रूपों में उपकार होता रहता है चाहे वे अप्रत्यक्ष ही क्यों न हों। देशी रियासतों की प्रजा ब्रिटिश इंडिया में प्रायः वे ही अधिकार प्राप्त करते हैं जो कि यहाँ की प्रजा को प्राप्त हैं। शिक्षा, व्यापार, नौकरी आदि में उनको वे सब सुविधाएँ मिलती हैं जो यहाँ वालों को। दुर्भिक्ष आदि पड़ने पर रियासतों की प्रजा की रक्षा के लिए गवर्नमेन्ट अपने अनेक साधन सुलभ कर देती है। राजाओं अथवा रियासत के निवासियों को सरकार से बड़े बड़े ख़िताब भी मिलते हैं। इसके अलावा जिनीवा की लीग आफ़ नेशन्स में भी रियासतों के एक प्रतिनिधि को भारतीय प्रतिनिधियों में स्थान दिया जाता है।

जिस प्रकार देशी राज्यों को गवर्नमेन्ट से लाभ पहुँचता है उसी प्रकार

गवर्नमेन्ट को भी अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते है। ऊपर संकेत कर दिया गया है कि गदर के बाद से रियासतों और गवर्नमेन्ट में सहयोग की नीति चल रही है। जब गवर्नमेन्ट को संकट पड़ता है तब रियासतें सहर्ष हाथ बँटाने के लिए तैयार हो जाती हैं। ग़दर में, चीन के युद्ध में, मिश्र के युद्ध में, सीमा प्रान्त के युद्ध आदि में ही नहीं किन्तु सन् १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध में भी देशी रियासतों ने बड़े उत्साह से तन, मन और धन से गवर्नमेन्ट की यथाशक्ति सहायता की। इसी प्रकार जब किसी ऐसे शुभ कार्य के लिए जिसमें अधिक धन की आवश्यकता होती है और गवर्नमेन्ट अपील करती है तब देशी रियासतें आर्थिक सहायता मुक्त-हस्त होकर करती हैं। हाल ही में बिहार भूकम्प और स्वर्गीय पंचम जार्ज सम्राट् की सिल्वर जुबिली के अवसर पर वायसराय को देशी रियासतों से अच्छी आर्थिक सहायता मिली है। गवर्नमेन्ट के अलावा ब्रिटिश इंडिया की प्रजा को भी देशी रियासतों से लोकोपकारी कामों में अच्छी आर्थिक सहायता मिलती है। शिक्षा संबन्धी और धार्मिक संस्थाओं की सहायता रियासतें निरंतर कर रही हैं। देशी रियासतों की शान शौक़त से भी गवर्नमेन्ट का ठाठ अच्छा जमता है। जब भारी दरबार होते हैं और रजवाड़ों का जमघट होता है तब जो विभूति दिखाई देती है वे अधिकांश में रियासतों की ही होती हैं। उसका साधारण जनता एवं परराष्ट्रों पर जो कुछ प्रभाव पड़ता है उससे गवर्नमेन्ट को भी अप्रत्यक्ष लाभ पहुँचता है और उसकी महत्वाकांक्षा की अनिर्वचनीय तृप्ति होती है। देशी रियासतों की सम्राट्-भक्ति प्रसिद्ध और सर्वथा संतोषजनक है।

रियासतों को आन्तरिक या बाहरी आक्रमणों से रक्षा करने का भार ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के हाथ में होने के कारण उन्हें भारी क़िले बनवाने अथवा उनका जीर्णोद्धार कराने या आधुनिक ढँग की सज्जित सेना के रखने की आवश्यकता न रही और न उन्हें ऐसा करने का अधिकार ही है।

साधारण ढंग के वे उतने सिपाही रख सकते हैं जो दरबारों या जुलूसों की शोभा बढ़ाने के लिए अथवा पुलिस कार्य के सम्पादन के लिए आवश्यक हों। कुछ रियासतों से कंपनी के राजत्व काल में सन्धि द्वारा यह शर्त हुई थी कि वे सहायक सेना (Subsidiary Force) अपनी रियासतों में रखा करें। अतएव वे सेना रखती थीं। किन्तु बीसवीं शताब्दी में युद्ध के ढँग बदल जाने के कारण पुराने ढँग की सेनायें बेकार हो गयीं। उनका संगठन नये ढँग से करने की आवश्यकता पड़ गई। अतएव उन सेनाओं का जो साम्राज्य की सहायता के लिए थीं पुनः संगठन किया गया। ये सेनाएँ "इम्पीरियल ट्रूप्स" (अर्थात् साम्राज्य की सेना) कहलाती हैं। इनकी कुल संख्या ३६, १२१ के लगभग है।* इनके प्रबन्ध का निरीक्षण ब्रिटिश अफ़सर करते हैं ताकि वे वैसी ही सुसज्जित और सुसंगठित रहें जैसी कि ब्रिटिश सरकार की सेना रहती है। किन्तु ये सेनाएँ रियासत की ही है। वहीं की प्रजा से इनमें सैनिक भर्ती किये जाते हैं और उनका ख़र्च भी रियासत ही उठाती है। इस प्रकार की फ़ौजें हैदराबाद, मैसूर, काश्मीर, राजपूताने की कई रियासतों में एवं बम्बई और पंजाब की कुछ रियासतों में हैं। इम्पीरियल ट्रूप्स के अलावा अन्य प्रकार की भी कुछ रियासत की सेना है।

ऊपर की गई विवेचना से यह ज्ञात होगा कि रियासतों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं एवं ब्रिटिश इण्डिया से भी उनके सम्बन्धों का क्षेत्र संकुचित है। इस परिस्थिति का निर्वाह अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में भले ही सम्भव हो किन्तु रेल, तार, मोटर आदि आवागमन के साधनों की वृद्धि, डाकखानों, समाचार पत्रों, प्रेस आदि के द्वारा प्राप्त

---

*इसका विस्तृत हाल 'भारतीय सेना' शीर्षक सातवें अध्याय में देखिये।

साधनों के कारण एवं भारतीय एकता के विचारों के प्रचार, शिक्षा आदि कारणों से दिनों दिन रियासतों का आपस में एवं ब्रिटिश इण्डिया के साथ सम्बन्ध बढ़ता और गहरा होता जाता है। यूरोपीय युद्ध के वातावरण में इसका अनुभव और भी अधिक हो गया। गवर्नमेन्ट को भी यह अनुभव हो रहा था कि कुछ ऐसे मामले पैदा हो जाते हैं कि जिनका सम्बन्ध किसी रियासत विशेष से ही नहीं वरन् सब रियासतों से व्यापक रूप में होता है। यही अनुभव रियासतों को भी होने लगा और वे समझने लगे कि व्यापक विषयों में यदि देशी रियासतें समिष्ट रूप से काम कर सकें तो उनके हित का उचित साधन हो सकेगा।

भारत की गवर्नमेन्ट इस प्रकार की आवश्यकता लार्ड लिटन के समय से ही अनुभव करने लगी थी। उन्होंने "इम्पीरियल प्रिवी काउन्सिल" नामक संस्था की कल्पना की थी किन्तु वह व्यावहारिक रूप में संगठित न हो सकी। लार्ड कर्ज़न ने "काउन्सिल आफ़ रूलिंग प्रिंसेस" और लार्ड मिन्टो ने इम्पीरियल एडवाइज़री काउन्सिल' की कल्पनाएँ की किन्तु वे कार्य रूप में न आ सकी। लार्ड हार्डिंज़ और चेम्सफ़र्ड ने राजाओं की कान्फ्रेंस की जिनसे उपर्युक्त भावनाओं और विचारों की पुष्टि हुई। अन्त में मोन्टेग्यू चेम्सफर्ड की योजना के अनुसार सन् १९२१ में "चेम्बर आफ़ प्रिन्सेज़" (नरेन्द्र मण्डल) की स्थापना हो गई।

चेम्बर आफ़ प्रिन्सेज़ के सदस्यों की संख्या एक सौ बीस है जिनमें १०८ रियासतों से प्रत्येक का एक एक प्रतिनिधि है और १२७ छोटी रियासतों की ओर से कुल मिला कर बारह निर्वाचित सदस्य हैं। चेम्बर आफ़ प्रिंसेज़ का सभापति वाइसराय है। सदस्यों में से एक चान्सलर और एक प्रो-चान्सलर सदस्यों द्वारा चुन लिये जाते हैं।

चेम्बर आफ़ प्रिंसेज की बैठक साल में एक बार देहली में होती है। नरेन्द्र मण्डल विचार करने और परामर्श देने के लिए ही है न कि क़ानून बनाने अथवा शासन नियंत्रण के लिए। अतएव इसके द्वारा किसी रिया-

मन की प्राप्त स्वतंत्रता या अधिकारों में हस्तक्षेप की कोई सम्भावना नहीं। इस बात को पहले ही से स्पष्ट कर दिया गया था कि इस संस्था में सन्धियों, रियासतों के आन्तरिक मामलों उनके अधिकारों तथा मान-मर्यादा आदि पर बहस न होगी। इसी प्रकार चेम्बर की स्थापना से रियासतों का गवर्नमेन्ट से जो सम्बन्ध चला आता है उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न होगा। यदि चेम्बर कोई परामर्श दे तो उसका प्रभाव रियासत की स्वतंत्रता एवं अधिकारों पर कुछ भी न होगा। मतलब यह कि नरेन्द्र मण्डल केवल व्यापक प्रश्नों पर विचार करने की सभा है जिससे उन उन प्रश्नों की विवेचना हो जाय, रियासतों के प्रतिनिधि विचारों का आदान प्रदान कर सकें और उनके भाव और विचार गवर्नमेन्ट को स्पष्ट रूप से मालूम हो जाया करें।

नरेन्द्र मण्डल की एक स्थायी कमेटी (Standing Committee) है जिसमें सात सदस्य होते हैं। इसका काम यह है कि वह उन मामलों पर जो वाइसराय उनसे पूछे अपना परामर्श दे। इसके अलावा वह वाइसराय के सम्मुख विचारार्थ ऐसे मामले भी रखती है जिनका सम्बन्ध रियासतों से व्यापक रूप से हो या जिनका रियासतों और ब्रिटिश इंडिया से समान सम्बन्ध रहता हो।

यों तो रियासतों और ब्रिटिश इंडिया के सम्बन्ध का अनुभव बहुत ही जाता था किन्तु जब साइमन कमीशन ने दौरा करके भारत के लिए सुधार पर विचार करना आरम्भ किया तब यह स्पष्ट प्रतीत हो गया कि ब्रिटिश इंडिया और रियासतों का सम्बन्ध इतना गहरा है कि एक का प्रश्न उठाते ही दूसरे का प्रश्न स्वयं उठ खड़ा होता है। अतएव आगामी सुधारों की आयोजना पर विचार करने के लिए रियासतों के प्रतिनिधियों की अनिवार्य आवश्यकता रही। तदनुसार गोलमेज़ कान्फ्रेंसों में रियासत के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। अनेक वादविवाद के बाद देशी रियासतों तथा ब्रिटिश भारत ...

'फ़ेडरेशन' बनने का विधान हुआ जो सन् १९३५ के एक्ट के रूप में उपस्थित हुआ।

जो देशी रियासतें भारतीय फ़ेडरेशन में शामिल होना चाहती हैं उन्हें सम्राट से इस आशय की प्रार्थना करनी होगी। यह लिखा जा चुका है कि देशी रियासतों तथा ब्रिटिश गवर्नमेंट के संबंध, सम्राट् एवं देशी नरेशों के बीच स्थित संधि द्वारा संचालित है। फ़ेडरेशन में शामिल होने के लिये प्रार्थना करने के पूर्व देशी नरेशों को ये संधियाँ रद्द करने की प्रार्थना करनी होगी। तब ये भारतीय फ़ेडरेशन में शामिल हो सकेंगे।

नये विधान के अनुसार समस्त फ़ेडरेशन से संबंध रखने वाले विषयों के लिये क़ानून बनाने का अधिकार फ़ेडरल व्यवस्थापिका को ही रहेगा। वह जो क़ानून बनायेगी वह प्रत्येक सूबे के अलावा उन देशी रियासतों के लिये भी लागू होगा जो फ़ेडरेशन में आ चुके होंगे। इन क़ानूनों को कार्यान्वित करने का अधिकार भी फ़ेडरल सरकार को ही होगा। किन्तु एक्ट के अनुसार सूबों की सरकार या देशी नरेशों को अपने राज्य में उन क़ानूनों को कार्यान्वित करने का अधिकार दिया जा सकता है। गवर्नर जनरल को इसमें निरीक्षण का पूरा अधिकार रहेगा; अतः यदि किसी सूबे या देशी रियासत ने उन क़ानूनों को भली भाँति कार्यान्वित नहीं किया तो गवर्नर जनरल उसके नाम आदेश जारी कर सकेगा।

विधान के अनुसार देशी नरेशों के लिये यह आवश्यक होगा कि वे अपने अधिकार का उपयोग इस प्रकार करें कि फ़ेडरल क़ानून के अनुसार कार्य होने में बाधक न हों। पिछले अध्यायों में लिखा जा चुका है कि फ़ेडरल व्यवस्थापिका के दोनों चेंबर्स में भारतीय देशी रियासतों के प्रतिनिधि निश्चित संख्या में जायेंगे जो समस्त देश के अतिरिक्त अपनी रियासतों के हितों की रक्षा करेंगे। देशी राज्य के किसी क्षेत्र में फ़ेडरल अधिकारियों की शासन संबंधी अधिकार सीमा के विषय में यदि कोई झगड़ा उपस्थित होगा तो उसका निर्णय 'फ़ेडरल कोर्ट' करेगी।

इस प्रकार नये विधान द्वारा रियासती भारत और ब्रिटिश भारत पहियों के चक्र के समान एक ही धुरे पर चलने लगेंगे जिससे आशा की जाती है कि देश उन्नति के प्रशस्त मार्ग पर अपूर्व प्राप्त गौरव और शक्ति संचय कर सकेगा। ब्रिटिश भारत और रियासती भारत के निवासियों में संसर्ग बढ़ जावेगा तथा भारत के समस्त निवासी एकता एवं भारतीय गौरव के सूत्र में संवद्ध हो और भी निकट आ जावेंगे।
